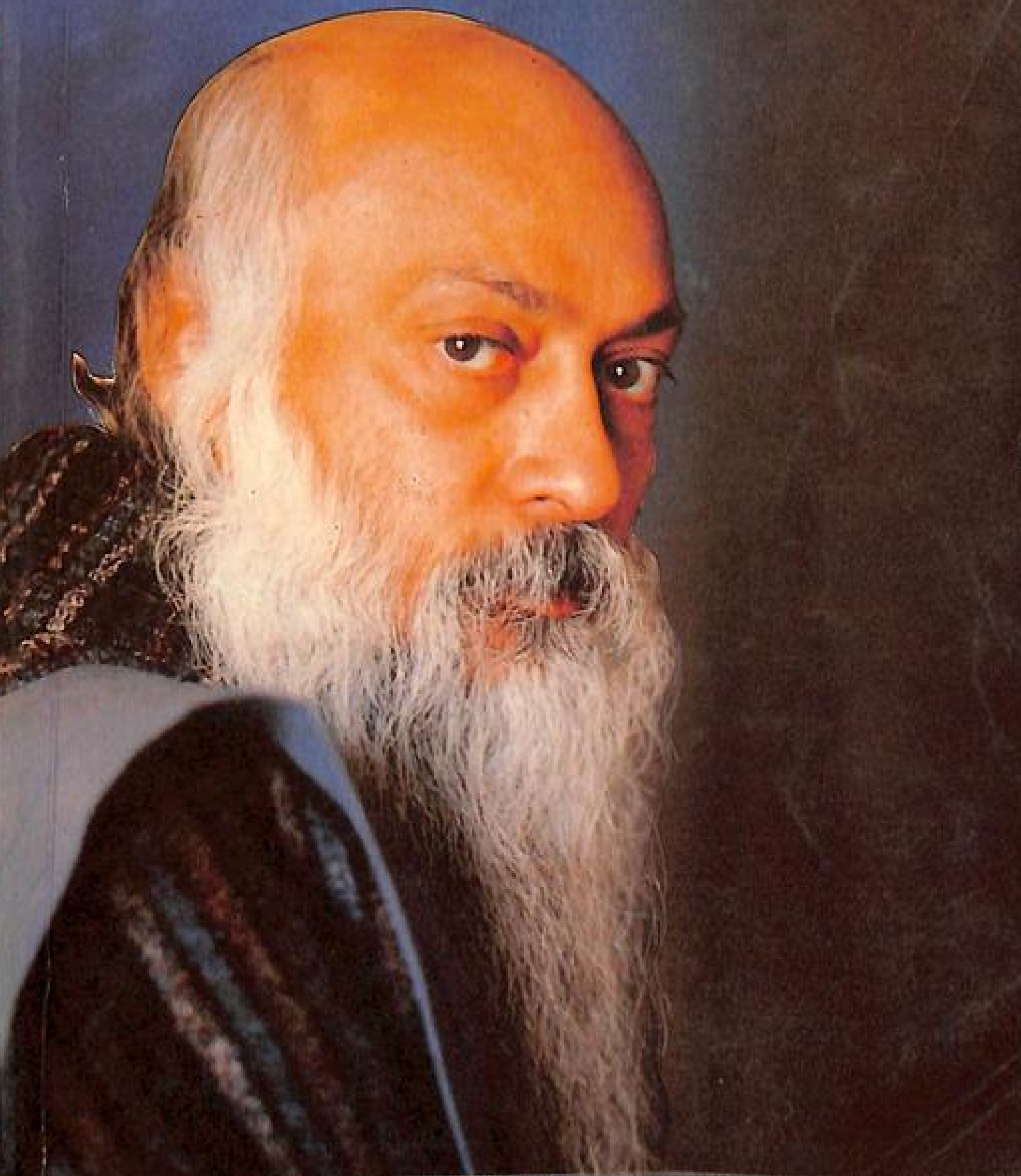
ओशो

भक्तिः परम क्रान्ति



भगवान श्री रजनीश
अब केवल 'ओशो' नाम से जाने जाते हैं।
ओशो के अनुसार उनका नाम
विलियम जेम्स के शब्द 'ओशनिक' से लिया गया है,
जिसका अभिप्राय है सागर में विलीन हो जाना।
'ओशनिक' से अनुभूति की व्याख्या तो होती है,
लेकिन वे कहते हैं कि अनुभोक्ता के संबंध में क्या?
उसके लिए हम 'ओशो' शब्द का प्रयोग करते हैं।
बाद में उन्हें पता चला कि ऐतिहासिक रूप से सुदूर
पूर्व में भी 'ओशो' शब्द प्रयुक्त होता रहा है,
जिसका अभिप्राय है : भगवत्ता को उपलब्ध व्यक्ति,
जिस पर आकाश फूलों की वर्षा करता है।

ओशो

भक्ति: परम क्रांति

संपादन : स्वामी योग प्रताप भारती

डिजाइन/संयोजन : स्वामी अमानो सुरधाम

प्रूफ रीडिंग : स्वामी शांति त्योहार

फोटोटाइपसेटिंग : ताओ पब्लिशिंग प्रा. लि.
50, कोरेगांव पार्क, पूना-1

प्रकाशक : डायमंड पाकेट बुक्स प्रा. लि.
एक्स-30, ओखला इंडस्ट्रियल एरिया, फेज-2, नई दिल्ली-20

वितरक : पंजाबी पुस्तक भंडार
257, दरीबा कलां, दिल्ली-6

मुद्रक : आदर्श प्रिंटर्स, नवीन शाहदरा, दिल्ली-32

संस्करण : 1996

मूल्य : रु.[redacted].00

मूल पुस्तक 'अथातो भक्ति जिज्ञासा-भाग 1' से

कापीराइट : ओशो इंटरनेशनल फाउंडेशन

सर्वाधिकार सुरक्षित

भूमिका

आज के वैज्ञानिक जीवन में भक्ति की बात करना कुछ अटपटा-सा प्रतीत होता है—लेकिन गहराई से देखेंगे तो यह स्पष्ट हो जाएगा कि आज के मशीनी माहौल में भक्ति सर्वाधिक प्रासंगिक है। इक्कीसवीं सदी में प्रवेश कर रहे हमारे समाज को वैज्ञानिक विकास की चकाचौंध तो खूब मिली है, खूब सुख-सुविधाएं मिली हैं—लेकिन एक अति गंभीर हादसा भी घटित हुआ है, वह यह कि इन सुख-सुविधाओं का सदुपयोग करने वाला व्यक्ति निष्प्राण हो गया है। उसके जीवन में रसधार नहीं है। वह आत्मवान नहीं है। वस्तुओं के अंबार में व्यक्ति स्वयं गायब हो गया है, या मात्र एक वस्तु हो गया है। वैज्ञानिक उपकरणों के शोरगुल में जीवन का अंतर्संगीत खो गया है।

भक्ति जीवन का अंतर्संगीत है। भक्ति एक सेतु है व्यक्ति और अस्तित्व के बीच—एक संगीतमय सेतु! भक्ति जीवन की लयबद्धता है। भक्ति एक परम स्वीकृति है कि मैं यद्यपि एक लहर हूं तथापि सागर से पृथक नहीं हूं; भक्ति एक बोध है कि मैं सागर ही हूं। यह परम बोध जीवन का परम आनंद है। और यह बोध कोई तपश्चर्या, कोई प्रयास, कोई साधना नहीं है—यह तो स्मरण मात्र है। ओशो कहते हैं : भक्ति का जीवन उत्सव का जीवन है, साधना का जीवन नहीं। प्रयास नहीं—प्रसाद।

भक्ति की इस स्थिति में ओशो कहते हैं : उस घड़ी में सारे जगत का ऐश्वर्य तुम्हारा है—सारी गरिमा, सारा गौरव, सारा वैभव। चांद-तारे तुम्हारे हैं। सूरज और पृथ्वी तुम्हारी है। वृक्ष और पशु-पक्षी तुम्हारे हैं।

आइए, भक्ति के इस हरे-भरे रसमय मार्ग पर विचरण करें।

स्वामी चैतन्य कीर्ति
संपादक : ओशो टाइम्स इंटरनेशनल

अनुक्रम

प्रवचन 1

भक्ति आत्यंतिक क्रांति है

सूत्र

ब्रह्मकांडं तु भक्तौ तस्यानुज्ञानाय सामान्यात् ।।२६।।

बुद्धिहेतुप्रवृत्तिराविशुद्धेरवघातवत् ।।२७।।

तदङ्गानाञ्च ।।२८।।

तामैश्वर्य्यपदां काश्यपः परत्वात् ।।२९।।

आत्मैकपरां बादरायणः ।।३०।।

मनुष्य का अस्तित्व तीन तलों में विभाजित है—शरीर, बुद्धि, हृदय। या दूसरी तरह से कहें तो कर्म, विचार और भाव। इन तीनों तलों से स्वयं की यात्रा हो सकती है। स्थूलतम यात्रा होगी कर्मवाद की। इसलिए धर्म के जगत में कर्मकांड स्थूलतम प्रक्रिया है। दूसरा द्वार होगा ज्ञान का, विचार का, चिंतन-मनन। दूसरा द्वार पहले से ज्यादा सूक्ष्म है। दूसरे द्वार का नाम है—ज्ञानयोग। तीसरा द्वार सूक्ष्मातिसूक्ष्म है—भाव का, प्रीति का, प्रार्थना का। उस तीसरे द्वार का नाम भक्तियोग है।

कर्म से भी लोग पहुंचते हैं। लेकिन बड़ी लंबी यात्रा है। ज्ञान से भी लोग पहुंचते हैं। पर यात्रा संक्षिप्त नहीं है। बहुत सीढ़ियां पार करनी पड़ती हैं। पहले से कम, लेकिन तीसरे की दृष्टि में बहुत ज्यादा। भक्ति छलांग है। सीढ़ियां भी नहीं हैं, दूरी भी नहीं है। भक्ति एक क्षण में घट सकती है! भक्ति तत्क्षण घट सकती है। भक्ति केवल भाव की बात है। इधर भाव, उधर रूपांतरण। कर्म में तो कुछ करना होगा, विचार में कुछ सोचना होगा, भक्ति में न सोचना है, न करना है, होना है। इसलिए भक्ति को सर्वश्रेष्ठ कहा है। आज के सूत्रों में इसी की चर्चा है। शांडिल्य कहते हैं—

ब्रह्माकांडं तु भक्तौ तस्य अनुज्ञानाया सामान्यात्।

'भक्ति के प्रतिपादन के लिए ब्रह्म विषय के उत्तरकांड से ज्ञानकांड की सामान्यता दिखायी गयी है।' शांडिल्य कहते हैं—वेदों में पहले क्रियाकांड है, कर्मवाद है; फिर दूसरे चरण में ब्रह्मज्ञान की बात है, ज्ञानवाद है; और फिर अंतिम चरण में ईश्वर की चर्चा है, भक्ति और भाव की बात है। जैसे वृक्ष है, तो कर्म; फिर फूल लगे, तो ज्ञान; और फिर सुवास उड़ी तो भक्ति। सुवास अंत में है।

जो व्यक्ति वृक्ष को ही पूजता रह गया, वह अटक गया। जिसने फूल को ही सब कुछ मान लिया, उसे अभी परम की प्राप्ति नहीं हुई। जो सुवास के साथ एक हो

गया, वही स्वतंत्र है। वृक्ष की तो देह है, जड़ देह है। फूल की देह है—उतनी जड़ नहीं, ज्यादा सूक्ष्म तरंगों से निर्मित है, ज्यादा रंगीन है, ज्यादा माधुर्य से भरी है, फिर भी देह तो देह है। वृक्ष की छाल जैसी खुरदुरी नहीं, रेशम जैसी चिकनी है, पर देह तो देह है, रूप तो रूप है, आकार आकार है। आकार से बंधन तो पड़ता ही है। फिर चाहे पत्थर की लकीर खींचो, चाहे फूलों की एक लकीर बनाओ, रेखा बनती है तो विभाजन हो जाता है। फूल भी अभी दूर है। सुवास एक हो गयी। सुवास ने देह छोड़ दी। सुवास से मेरा प्रयोजन है—स्थूलता समग्र रूप से विनष्ट हो गयी। इसलिए सुवास को तुम देख नहीं सकते, अनुभव कर सकते हो। पकड़ नहीं सकते, मुट्ठी नहीं बांध सकते, अनुभव कर सकते हो। सुवास आकाश के साथ एक हो गयी। ऐसी भक्ति है। भक्ति आत्यंतिक क्रांति है।

शांडिल्य कहते हैं—इसलिए वेदों में भक्ति की चर्चा अंत में आयी है। अंत में ही आ सकती है। लेकिन इधर कोई दो-तीन सौ वर्षों से इस देश में कुछ लोगों ने बड़ी मूढ़तापूर्ण बात फैला रखी है। उन्होंने यह फैला रखा है कि कलियुग में तो भक्ति ही काम की है! जैसे कि भक्ति निकृष्टतम है। उन्होंने यह बात चला रखी है कि कलियुग में और सब मार्ग तो संभव नहीं हैं, वे तो सतयुग में संभव थे, जब लोग महान थे, जब लोग शुद्ध और सात्विक थे, जब लोगों के जीवन में प्रामाणिकता थी, सचाई थी; जब पृथ्वी पर मनुष्य मनुष्य जैसा नहीं, देवता जैसा चलता था, तब संभव था ज्ञान। अब तो कलियुग है, काले दिन आ गये, अमावस की रात है, पापियों का फैलाव है, सब तरफ पाप है, पुण्य की कहीं कोई खबर नहीं, इस अंधेरे युग में; इस काली रात्रि में तो जो निकृष्टतम है वही संभव हो सकता है, वह है भक्ति। यह तो बात उल्टी हो गयी। जितना सात्विक व्यक्ति हो, उतनी भक्ति संभव होती है। जितना असात्विक व्यक्ति हो, उतना कर्मकांड संभव होता है। भक्ति तो सुगंध है। भक्ति तो परा है। इसलिए यह कहना कि इस निकृष्ट युग में भक्ति ही एकमात्र उपाय है—इस कारण कहना क्योंकि आदमी पतित हो गया है और पतित आदमी और कुछ कर नहीं सकता—बुनियादी रूप से गलत बात है, सौ प्रतिशत गलत बात है।

खयाल रहे, आदमी पतित नहीं हुआ है, आदमी रोज विकासमान है। इसलिए भक्ति संभव है। मैं भी तुम से कहता हूं कि आज भक्ति संभव है, लेकिन कारण यह नहीं है कि आज अमावस की रात है, कारण यह है कि आज पूर्णिमा है। मैं भी यही कहता हूं कि आज भक्ति के सिवाय और कुछ काम नहीं आएगा, क्योंकि आदमी प्रौढ़ हुआ है; उठ चुका क्रियाकांडों से। आज क्रियाकांड पर किसका भरोसा है? आज अगर कहीं यज्ञ होता हो तो सिवाय मूढ़ों के और कौन इकट्ठा होता है? जो आज के नहीं हैं, वे इकट्ठे होते हैं। जिन्हें कब्रों में होना चाहिए था, वे इकट्ठे होते हैं। जो दो हजार-तीन हजार साल पुरानी खोपड़ी लिये बैठे हैं, वे इकट्ठे होते हैं। आज की दुनिया में कौन सोचता है कि यज्ञ करने से और पानी गिरेगा! कहां हैं इंद्र? कहां हैं तुम्हारे देवता? गये सब! जो तुमने बचपन में सोची थीं परियों की कथाएं, उनका अब कोई मूल्य नहीं रहा। वे बचपन के हिस्से थे, बच्चों की कहानियां थीं।

बच्चों को कहानियां बतानी हों तो भूत-प्रेत, और परी, और अप्सराएं, और स्वर्ग, और देवी-देवता, इनकी बात करनी पड़ती है। तो ही बच्चे उत्सुक होते हैं। बच्चे यथार्थ में उत्सुक नहीं होते, बच्चे सपनों में उत्सुक होते हैं। बच्चे सपनों में जीते हैं। अभी बच्चों के जीवन में सपने और यथार्थ का कोई भेद पैदा नहीं होता। तुमने अक्सर देखा होगा, छोटा बच्चा सुबह नींद से उठता है और रोने लगता है। और मां परेशान होती है कि किसलिए, अभी तो कुछ हुआ भी नहीं! एकदम नींद खुलते से ही रोने लगता है, वह कहता है—मेरा खिलौना कहां है? उसने सपने में एक खिलौना देखा था, वह अपना खिलौना मांग रहा है। अभी सपने में और सत्य में फर्क नहीं है। अभी धुंधली है चेतना। अभी बुद्धि जाग्रत नहीं है।

मैं तुम से यह कहना चाहता हूं कि आज भक्ति ही काम आएगी; क्योंकि आदमी प्रौढ़ हुआ है; आदमी की चेतना ज्यादा सजग हुई है। दुनिया में जो अधर्म दिखायी पड़ता है वह इसलिए नहीं कि आदमी पतित हो गया है, बल्कि इसलिए कि धर्म के पुराने ढंग आदमी के काम के नहीं रह गये हैं, और तुम उन्हीं ढंगों को थोपे चले जाते हो। जैसे कि कोई जवान हो गया है और तुम उसे बचपन का पाजामा पहना रहे हो, वह फेंकता है पाजामा, वह भागता है कि यह तुम क्या कर रहे हो? पाजामे के खिलाफ नहीं है वह, लेकिन जरा उसकी तरफ भी तो देखो। अब वह छोटा बच्चा नहीं रहा। अब तुम यह जो छोटा पाजामा उसे पहना रहे हो, तुम उसकी मखौल उड़वाओगे। तुम बाजार में उसकी हंसी करवाओगे। उसके योग्य पाजामा चाहिए।

आज का मनुष्य अधार्मिक नहीं है। सच तो यह है कि आज का मनुष्य जितना धार्मिक हो सकता है उतना कभी और किसी समय का मनुष्य नहीं हो सकता था। लेकिन पुराना धर्म काम न आएगा। बचकानी बातें काम न आएंगी। अब धर्म को भी प्रौढ़ होना पड़ेगा। कसूर उनका है जो धर्म को प्रौढ़ नहीं होने दे रहे हैं। आदमी तो धार्मिक होने को उत्सुक है, लेकिन उसके योग्य धर्म चाहिए। आदमी ने समझो कि कार बना ली और तुम बैलगाड़ी लिए उसके द्वार पर खड़े हो, और तुम कहते हो—बैलगाड़ी में बैठो; क्या तुम्हारी यात्रा में उत्सुकता नहीं रही? क्या तीर्थयात्रा को न चलोगे? और अगर वह आदमी तुम्हारी बैलगाड़ी में नहीं बैठता है तो तुम कहते हो—अब कोई तीर्थयात्रा पर जाने को उत्सुक नहीं है। तीर्थयात्रा पर लोग अब भी जाना चाहते हैं—कौन नहीं जाना चाहता? सारा जीवन तीर्थयात्रा है। परमात्मा को लोग आज भी खोज रहे हैं। ऐसा कोई मनुष्य ही नहीं जो परमात्मा को न खोज रहा हो। लेकिन अब रास्ते, ढंग बदले हैं। बैलगाड़ी पर कोई सवार नहीं होना चाहता। और तीर्थयात्रा का मतलब अब कुंभ जाना नहीं हो सकता। अब तो कुंभ का गहरा अर्थ खोजना होगा।

कुंभ शब्द जानते हैं कहां से बना? घड़े से बना। कुंभ कहते हैं घड़े को। पूरे भरे घड़े को कुंभ कहते हैं। अब कोई कुंभ के मेले पर नहीं जाना चाहता है, अब तो अपने भीतर के सूने घड़े को भरना चाहता है, कुंभ बनाना चाहता है। अब तो लबालब भीतर भरना चाहता है। अब बाहर की गंगा-यमुना और सरस्वतियों में उलझने का

कोई रस नहीं है किसी को, अब तो चाहता है कि भीतर। और ये तीन ही भीतर की नदियां हैं—कर्म, ज्ञान, भक्ति।

तुमने देखा, प्रयाग में जाते हो, दो नदियां दिखायी पड़ती हैं—यमुना और गंगा—सरस्वती अदृश्य है। ऐसी ही भक्ति है। कर्मकांड दिखायी पड़ता है। कोई आदमी बैठा है हवन बनाये, अग्नि में आहुति डालता हुआ, शोरगुल मचा रहा है, दिखता है। कोई आदमी बड़े सोच-विचार में पड़ा है, माथे पर पड़े बल तो कम से कम दिखायी पड़ते हैं।

तुम ने रोदिन का प्रसिद्ध मूर्ति का चित्र देखा होगा—विचारक अपनी ठुड्डी से हाथ लगाए, आंख बंद किये, सिर पर बल डाले, रोदिन का विचारक बैठा है। सोच-विचार सिर पर बल ले आता है, चिंता ले आता है। चिंता और चिंतन में बहुत फर्क थोड़े ही है, एक ही शब्द से बने हैं। जहां चिंतन है, वहां चिंता है। लेकिन भक्त को कहां पहचानोगे? भक्त की दशा बड़ी गहन है। भक्त तो भाव है। इसलिए भक्ति को सरस्वती कहा है। वह दिखायी नहीं पड़ती—सुवास। फूल तक दिखायी पड़ती है बात, सुवास में अदृश्य हो जाती है। ऐसी भक्ति है।

आज भी आदमी परमात्मा को खोजना चाहता है, ज्यादा खोजना चाहता है जितना पहले खोजना चाहता था—और ठीक कारणों से खोजना चाहता है, पुराने लोगों ने गलत कारणों से खोजा था। पुराने आदमी के कारण गलत ही हो सकते थे। बीमारी थी, इसलिए खोजा था, क्योंकि औषधि नहीं मिलती थी। आज हमने औषधियां बहुत खोज ली हैं, अब हम परमात्मा को चिकित्सक की तरह नहीं खोजते। जरूरत नहीं है, चिकित्सक हम ने पैदा कर लिये हैं। आदमी परमात्मा को खोजता था—वर्षा करो, धूप पड़ रही है, खेत सूखे जा रहे हैं। अब वैज्ञानिक देशों में वर्षा आदमी के हाथ में हो गयी है, हम जहां चाहेंगे वहां करवा लेंगे, जब चाहेंगे तब करवा लेंगे। अब इंद्र को कष्ट देने की कोई जरूरत नहीं। आदमी प्रार्थना करता था—मेरी उम्र बड़ी करो, मैं खूब जीऊं। आज उम्र आदमी के हाथ में है। जो बातें आदमी परमात्मा से मांगता था, वे आदमी के हाथ में आ गयीं। लेकिन परमात्मा से उम्र मांगनी, वैभव मांगना, संपदा मांगनी, स्वास्थ्य मांगना गलत कारण से परमात्मा की तरफ जाना है। परमात्मा की तरफ तो वही जाता है जो सिर्फ परमात्मा को मांगता है। परमात्मा के अतिरिक्त कुछ भी मांगा, तो उसका मतलब है तुम परमात्मा का उपयोग कर रहे हो। परमात्मा में तुम्हारा रस नहीं है; परमात्मा के द्वारा तुम्हें धन मिल सकता है तो चलो, परमात्मा की पूजा-प्रार्थना कर लेते हो; यह खुशामद से ज्यादा नहीं, यह स्तुति है।

यह आकस्मिक नहीं है कि इस देश में इतने खुशामदी हैं। यह देश सदियों से खुशामद करता रहा है। भगवान की खुशामद करता रहा है, राजा-महाराजाओं की खुशामद करता रहा, अब वह दो कौड़ी के राजनीतिज्ञों की खुशामद कर रहा है। खुशामद की आदत पड़ गयी है। वह कहीं भी थाल सजाये तैयार है स्वागत करने को! वह किसी के भी चरणों में गिरने को राजी है, नाक रगड़ने को राजी है! रिश्वत देने को राजी है, क्योंकि वह सदा से रिश्वत देता रहा है। यह भारतीय चरित्र हो गया।

लोग कहते हैं—भारत में इतनी रिश्वत क्यों है? यह कोई नयी बात नहीं है। तुम जब जाते हो हनुमान जी के मंदिर में और कह आते हो—लड़के को पास करवा देना तो नारियल चढ़ाऊंगा, तुम क्या समझते हो क्या दे रहे हो? पांच आने का नारियल—वह भी तुम सड़ा-गला बाजार से खरीदकर लाओगे, सस्ते से सस्ता—तुम हनुमान जी को रिश्वत दे रहे हो। ये सारी की सारी गलत वृत्तियां धर्म के नाम से प्रचलित थीं। ये समाप्त हो गयीं, यह अच्छा हुआ। जाल छूटा इन बीमारियों से। अब आदमी अगर खोजेगा तो परमात्मा के लिए ही खोजेगा।

इसलिए मैं कहता हूं, जब समाज समृद्ध होता है तो परमात्मा की सच्ची तलाश शुरू होती है। क्योंकि समृद्ध आदमी के पास वह सब है जिसको लोग अतीत में परमात्मा से मांगते रहे थे। सब है उसके पास और फिर भी वह नहीं है। सब है और सब खाली है। धन की राशि लग गयी है और भीतर गहरी निर्धनता है। हाथ में बड़ी शक्ति है और भीतर प्राण कंप रहे हैं; भीतर बड़ी कमजोरी है। यह सदी परमात्मा को ठीक कारणों से खोजना चाहती है। कोई अधार्मिक नहीं हो गया है, धर्म काम के नहीं रह गये हैं। धर्म के ढंग ओछे पड़ गये, पुराने पड़ गये। धर्म के ढंग आज के विकसित आदमी के अनुकूल नहीं हैं।

मैं भी तुमसे कहता हूं: भक्ति आज के अनुकूल है, लेकिन मेरा हेतु, मेरा कारण अलग। दूसरों ने तुमसे कहा भक्ति आज के लायक है, क्योंकि तुम इतने पतित हो और कुछ तुम्हारे लायक हो भी नहीं सकता। मैं तुमसे कहना चाहता हूं, भक्ति तुम्हारे लायक है, क्योंकि तुम पहली दफे प्रौढ़ हुए हो। मनुष्य जाति पहली दफा जवान हुई है। बचपन के धुंधले दिन गये, प्रौढ़ मस्तिष्क पैदा हुआ है। इसलिए भक्ति काम की है। शांडिल्य से मैं राजी हूं, क्योंकि शांडिल्य कहते हैं—भक्ति सर्वोपरि है।

बुद्धि हेतुःप्रवृत्तिःअविशुद्धेः अवधावत्।

'जब तक धान पर छिलका रहता है तभी तक धान को उद्‌कल और मूसल द्वारा कूटा जाता है। इसी प्रकार बुद्धि संबंधी प्रवृत्तियां तभी तक रहती हैं जब तक चित्त शुद्ध नहीं हो जाता है।'

शांडिल्य कहते हैं—भक्ति के लिए कोई साधन आवश्यक नहीं है, सिर्फ भाव। भक्ति के लिए कोई सीढ़ियां नहीं हैं, सिर्फ छलांग का साहस—कहें दुस्साहस। अपने को छोड़कर परमात्मा में गिरने की हिम्मत। जैसे नदी सागर में गिरती है। जब नदी सागर में गिरती है तो झिझकती होगी, जरूर झिझकती होगी, क्योंकि अब तक जो थी अब नहीं रह जाएगी। वे कूल-किनारे जिन में बही, वे पर्वत शृंखलाएं जिन में जन्मी, वे मैदान जिन से गुजरी, वे लोग, वे वृक्ष, वे मौसम, वे सुंदर सुबहें और सुंदर सांझें, और न मालूम कितने गीत, और गांव-गांव के गीत, और गांव-गांव की धुनें, वे सब याद आती होंगी; सारा अतीत रोकता होगा नदी को कि ठहर जा, क्यों मिटी जाती है? फिर तू तू नहीं रह जाएगी। तेरा तादात्म्य खो जाएगा। तू अपने किनारे मत छोड़, क्योंकि किनारों में ही तेरा अस्तित्व है, तेरा तादात्म्य है, तेरा होना है, तेरी परिभाषा है—तू गंगा है, कि सिंधु है, कि तू नर्मदा है—सागर में गिरकर न तू गंगा रह जाएगी, न सिंधु रह

जाएगी, न नर्मदा रह जाएगी। सागर में गिरते ही तू नहीं हो जाएगी, रुक जा, ठहर जा, पीछे लौटकर देख, तेरा अपना एक अतीत है, तेरी अपनी एक विशिष्टता है, तेरा अपना एक कुल है, अपना एक गौरव है, हिमालय में जन्मी तू, याद कर कितने-कितने लोगों ने राह में तेरी पूजा की, याद कर कितने दीये तुझ में छोड़े गये और कितने फूल तुझ पर गिराये गये, याद कर; याद कर लोग कितने आनंदित थे; याद कर वे प्रसन्न चेहरे, याद कर वे धन्यवाद और कृतज्ञता के भाव जो तुझे अर्पित किये गये और आज तू मिटने चली है इस खारे सागर में! पीने योग्य भी न रह जाएगी। फिर कोई फूल न चढ़ाएगा। फिर घाट न बनेंगे तेरे किनारे पर, तीर्थ न उमगेंगे तेरे किनारे पर, मेले न भरेंगे तेरे किनारे पर, फिर तेरा कोई किनारा नहीं, फिर तू नहीं, रुक जा।

अगर नदी सोचती, तो ऐसा होता। आदमी सोचता है, इसलिए ऐसा होता है। परमात्मा में छलांग लगानी, अपने को खोना है। सिर्फ थोड़े से दुस्साहसी लोग कर सकते हैं। फिर मैं तुम्हें याद दिलाऊं, जिनको तुम धार्मिक कहते हो, अक्सर कायर और कमजोर लोग होते हैं। उनके कारण धर्म डूबता और बदनाम होता है। जिनको तुम धार्मिक कहते हो—मंदिरों, मस्जिदों, गुरुद्वारों में बैठे हुए लोग, अक्सर कंपे हुए लोग हैं; हाथ-पैर कंप रहे हैं उनके, घबड़ाहट में घुटने टेक दिये हैं उन्होंने।

धर्म उनके जीवन में वस्तुतः पैदा होता है जो निर्भीक हैं, जो अभय हैं; जो परमात्मा से भयभीत होकर प्रार्थना नहीं करते, जो परमात्मा के प्रेम में पड़ते हैं, तब प्रार्थना करते हैं।

दोनों में भेद समझ लेना, बड़ा भेद है, जहर-अमृत का भेद है, जीवन-मृत्यु का भेद है।

एक आदमी भय से भी प्रेम कर सकता है। मगर वह प्रेम किस मतलब का होगा? तुम किसी की छाती पर तलवार लिए खड़े हो और कहते हो मुझे प्रेम करो; करेगा; क्योंकि तुम्हारी तलवार देख रहा है। तुम्हारी आंखों में दानव देख रहा है, करेगा, झुकेगा, तुम्हारे हाथ चूमेगा, तुम्हारे पैर चूमेगा, और कहेगा कि मैं तुम्हें प्रेम करता हूं, सिर्फ तुम्हीं को प्रेम करता हूं, तुम्हारे लिए जी रहा हूं, तुम्हारे लिए जीऊंगा। और भीतर? भीतर इसके ठीक विपरीत बात होगी कि अगर यह तलवार कभी मेरे हाथ में पड़ जाए और कभी तुम्हें सोते में पा लूं तो तुम्हें मजा चखा दूं? तो तुम्हें बता दूं यह प्रेम का अर्थ क्या है! तो तुम्हें झुका दूं अपने चरणों में इसी तलवार के सहारे! जहां भय है, वहां घृणा पैदा होती है, प्रेम पैदा नहीं होता। चूंकि दुनिया के धर्मों ने लोगों को ईश्वर भीरु बनाया, इसका अंतिम परिणाम यह हुआ कि लोग ईश्वर के दुश्मन हो गये। सारी दुनिया की भाषाओं में ऐसे शब्द हैं—ईश्वर भीरु, गाड फियरिंग—इससे ज्यादा कुरूप शब्द नहीं हो सकते।

महात्मा गांधी ने कहा—मैं किसी से नहीं डरता, सिर्फ ईश्वर से डरता हूं। मैं तुमसे कहता हूं—और सबसे डरना, ईश्वर से मत डरना। ईश्वर से डरे तो कभी संबंध ही नहीं हो पाएगा। ईश्वर से डरोगे, तो फिर जुड़ोगे कैसे? भय से कहीं कोई संबंध बनता है। भय तो विषाक्त कर देता है। भय नहीं, ईश्वर और तुम्हारे बीच प्रेम

की तरंग चाहिए। प्रेमी एक-दूसरे में डूबने को आतुर होते हैं। भक्त भय से पैदा नहीं होता। और जो भय से पैदा होता हो, जान लेना वह भक्त नहीं है। वह सिर्फ भयभीत है। इसी भयभीतता के कारण दुनिया में धर्म कम दिखायी पड़ता है, क्योंकि सदियों तक आदमी को भयभीत किया गया। इसका इकट्ठा परिणाम यह हुआ कि फ्रेड्रिक नीत्शे जैसे विचारक ने घोषणा की कि ईश्वर मर गया है। और इतना ही नहीं कि उसने यह कहा ईश्वर मर गया है, उसने यह भी कहा कि और ठीक से समझ लो कि कैसे मरा? हमने उसे मारा है। हमने उसकी हत्या की है। करनी ही पड़ी। क्योंकि हमारी छाती पर उसका बोझ भारी हो गया था। नीत्शे ने कहा—गाड इज डेड एंड नाउ मैन इज़ फ्री। ईश्वर खतम हुआ और अब आदमी स्वतंत्र है। झंझट मिटी। अब तुम मुक्त हो, अब तुम मुक्त भाव से जीओ, अब किसी मंदिर और मस्जिद में जाकर प्रार्थना करने की, घुटने टेकने की जरूरत नहीं।

यह नीत्शे का वचन कहां से आया? यह उन पादरी, पुरोहितों, पंडितों के कारण आया जिन्होंने सदियों-सदियों तक तुम्हें सिखाया—ईश्वर से डरो, घबड़ाओ। और घबड़ाने के लिए कितने-कितने आयोजन किये—नर्क बनाया, नर्क की बड़ी बेहूदी कल्पनाएं बनायीं कि तुम्हें सड़ाया जाएगा। स्वभावतः आदमी के मन में ईश्वर के प्रति प्रेम की जगह घृणा का भाव पैदा होता रहा। ऊपर-ऊपर पूजा चलती रही, भीतर-भीतर घाव बड़ा होता रहा, मवाद इकट्ठी होती रही। आखिर हर चीज की एक सीमा होती है। इस प्रौढ़ सदी ने आकर ईश्वर को इनकार कर दिया।

तुलसीदास ने कहा, भय बिन होय न प्रीति। इससे ज्यादा गलत बात कभी किसी आदमी ने नहीं कही। कहते हैं, भय के बिना प्रीति नहीं होती। तो तुलसीदास को प्रीति नहीं हुई फिर। क्योंकि भय से तो प्रीति होती ही नहीं। तुमने कभी किसी को प्रेम किया है भय के कारण? तुम बदला लेना चाहते हो। छोटा बच्चा स्कूल जाता है, शिक्षक को नमस्कार भी करता है, जयरामजी भी करता है—भय के कारण, वह शिक्षक के हाथ में जो छड़ी देखता है—लेकिन तुमने देखा, यह छोटा बच्चा भी बदला लेता है; जब शिक्षक तख्ते पर कुछ लिखता होता है, पीठ इसकी तरफ होती है, तब वह मुंह बिचका देता है। छोटा बच्चा भी बदला ले लेता है। वह भी कुछ शरारत कर देता है, मौका पाकर स्याही छिड़क देता है, या उसकी कुर्सी पर कांटे रख जाता है। वह क्या कर रहा है? वह इतना ही कर रहा है कि आखिर मैं भी आदमी हूं, छोटा ही सही, मगर यह बेंत तो मुझे मत दिखाओ। और इस घबड़ाहट में मुझ से अगर तुमने नमस्कार ली, तो मैं नमस्कार का बदला लूंगा। इसलिए छोटे बच्चे अपने शिक्षकों की मजाक उड़ाते हुए बाहर मिलेंगे। वह सिर्फ बदला है। वह सिर्फ संतुलन है। छोटे से छोटे बच्चे बाहर बैठकर क्या बात करते हैं? स्कूल से छूटते ही क्या बात करते हैं? शिक्षकों की मजाक उड़ते हैं। क्यों? नहीं तो उनके ऊपर बड़ी ग्लानि का भाव हो जाएगा कि हम में इतनी भी सामर्थ्य नहीं है कि हम थोड़ा बदला लें। अपमान करना चाहते हैं शिक्षक का वे, सम्मान नहीं। क्योंकि शिक्षक जबर्दस्ती सम्मान करवा रहा है।

पुरानी बाइबिल में ईश्वर कहता है कि मैं खतरनाक ईश्वर हूं, मैं बहुत क्रोधी

ईश्वर हूं, अगर तुमने मेरी न सुनी तो तुम्हें नष्ट कर दूंगा। यह जिन पंडितों-पुरोहितों ने कहलवाया, उन्हीं ने नीत्शे का वचन बन सके एक दिन इसकी आयोजना की। तुम जरा लौटकर देखो धर्म के इतिहास में तो तुम पाओगे सबसे पहले जो ईश्वर आया, वह घबड़ाने वाला ईश्वर था, डराने वाला ईश्वर था। फिर जब आदमी थोड़ा प्रौढ़ हुआ, तो हमने ईश्वर की शक्ल बदली; क्योंकि वह घबड़ाने वाला ईश्वर कुरूप मालूम होने लगा। मूसा का ईश्वर कहता है कि मैं बहुत खतरनाक हूं, मैं बहुत ईर्ष्यालु हूं अगर मेरी नहीं मानी, अगर मेरी आज्ञा का उल्लंघन किया, तो तुम्हें जला डालूंगा, नष्ट कर दूंगा, नर्कों में सड़ाऊंगा। जीसस का ईश्वर कहता है—मैं प्रेम हूं। मूसा और ईसा के बीच क्रांति हो गयी। धर्म थोड़ा प्रौढ़ हुआ। दो-ढाई हजार साल का फासला हो गया। बुद्ध ने तो ईश्वर को समाप्त ही कर दिया, विदा कर दिया।

बुद्ध ने कहा—ईश्वर की मौजूदगी से ही भय पैदा होता है। इतना बड़ा है कि आदमी डरता है और सिकुड़ जाता है। डरने और सिकुड़ने के कारण प्रार्थना पैंदा नहीं होती, ईश्वर को विदा ही कर दो। प्रेम करने वाला ईश्वर भी आखिर रहेगा तो। और हम से विराट, महाशक्तिशाली, सर्वज्ञाता, झंझट रहेगी उसकी मौजूदगी में। वह कितना ही कहे, मैं तुम्हें प्रेम करता हूं, लेकिन वह इतना बड़ा है और हम इतने छोटे हैं! बुद्ध ने कहा इसे जाने दो, प्रार्थना काफी है, ध्यान काफी है, ईश्वर की कोई जरूरत नहीं है। जहां प्रार्थना है, वहां परमात्मा का अनुभव आ ही जाएगा। यह धर्म ने और भी ऊंची उड़ान ली। यह धर्म का विकास है। जैसे-जैसे भय हमने छोड़ा, वैसे-वैसे हम धार्मिक होने में सफल हुए।

लेकिन जब तक बुद्धि है, जब तक विचार है, तब तक अशुद्धि रहेगी। शांडिल्य कहते हैं, भाव तो परम शुद्धि है। वहां तो शुद्ध करने को कुछ भी नहीं बचता, भाव यानी शुद्धि। वहां तो आदमी छलांग लगा लेता है। इसलिए भक्ति में कोई साधन नहीं है—न श्रवण, न मनन, न निदिध्यासन; भक्ति में कोई साधन नहीं है—न योग, न तप, न विराग; भक्ति में कोई साधन नहीं है, भक्ति तो शुद्ध साध्य है।

लेकिन आदमी का शरीर है, शरीर में बड़ी अशुद्धियां हैं, तो योग की जरूरत है, तो व्यायाम की जरूरत है। तो शरीर को शुद्ध करने के उपाय हैं, देह शुद्धि की विधियां हैं—वही योग है। फिर कुछ लोग ऐसे पागल हैं कि उसी में लगे रह जाते हैं, वह देह शुद्धि ही करते रहते हैं जिंदगी भर। वे भूल ही जाते हैं कि देह शुद्धि किसलिए कर रहे थे। जैसे कोई अपने घर को साफ करने में लग जाए, क्योंकि साफ न करेंगे तो रहेंगे कैसे घर में, और फिर भूल ही जाए कि रहना भी है, और साफ ही करता रहे।

मैं एक घर में कुछ दिनों तक रहा। महिला बिलकुल पागल थी सफाई के लिए। वह इतनी पागल थी कि अपने पति को भी सोफे पर बैठने नहीं देती थी—सलवट पड़ जाए—बच्चों को कमरों में घुसने नहीं देती थी। घर बड़ा था, लेकिन सफाई के कारण सबको रहना पड़ता था एक कोने में ही, घर के एक कमरे में ही, बाकी तो सब साफ-सुथरा रहता, दर्पण की तरह चमकता रहता। कुछ दिन मैं घर में मेहमान था, मैंने उस महिला से पूछा कि घर तो तेरा मुझे पसंद आया, मगर यह घर

म्यूजियम है, यह रहने योग्य नहीं, क्योंकि यहां सब डरे हुए हैं—तेरा पति डरा है, तेरे बच्चे डरे हैं कि कहीं किसी चीज में कुछ खरोंच न लग जाए। कोई चलता-फिरता नहीं ठीक से, हिलता-डुलता नहीं ठीक से, तूने सबको घबड़ा रखा है, कोई कचरा भीतर न ले आए, तो सब इस तरह रह रहे हैं जैसे किसी दूसरे के घर में रह रहे हों और चोर की तरह रह रहे हैं। यह सफाई किसलिए है? आदमी सफाई करता है कि वहां रहे। रहेगा तो थोड़ी गंदगी होगी, तो फिर सफाई। मगर सिर्फ सफाई ही करते रहो और रहना भूल जाओ—ऐसे बहुत योगी तुम्हें इस देश में मिलेंगे जो दिन-रात आसन-व्यायाम-उपवास करने में लगे हैं और यह भूल ही गये कि यह सिर्फ घर की सफाई है। इसमें रहोगे कब? रहोगे कैसे?

इस से कुछ ऊपर जाते हैं, वे लोग बुद्धि की सफाई में लगते हैं। मगर वह भी सफाई है। उसी की सफाई में जीवन मत गंवा देना। बहुत लोग विचारक होकर ही नष्ट हो जाते हैं। विचार से कभी कुछ मिलता नहीं, कोई निष्पत्ति नहीं आती हाथ में। विचार थोथी यात्रा है, शब्द ही शब्द हैं वहां। रोटी शब्द से पेट तो नहीं भरता। कितना ही सोचो रोटी शब्द पर, तो भी पेट नहीं भरता। एक रूखी-सूखी रोटी भी बेहतर है। तुम्हारे कितने ही सुंदर विचार हों रोटी के संबंध में, उन से एक रूखी-सूखी रोटी बेहतर है। और तुम परमात्मा के संबंध में लाख सोचो, उसका कोई मूल्य नहीं है।

परमात्मा के संबंध में सोचना परमात्मा को जानना नहीं है। जानना और सोचना अलग-अलग बातें हैं। जानना तो तब होता है, जब सोचना रुकता है। जब तक सोचना चलता है तब तक जानना नहीं होता; क्योंकि सोचने वाला आदमी सोचने में उलझा रहता है, जानने की फुर्सत कहां, सुविधा कहां, अवकाश कहां? जो आदमी फूल के संबंध में सोच रहा है, वह फूल के सौंदर्य को जी ही नहीं पाता। कोई पक्षी गीत गाता है और जो आदमी पक्षी के इस गीत के संबंध में विचार करने लगता है—इसका ध्वनि-शास्त्र क्या है, इसकी उत्पत्ति कैसे है, इस पक्षी का कंठ कैसा होगा, उसके कंठ का यंत्र कैसा है; ध्वनि को पैदा करने वाली ध्वनि की संभावना, ध्वनि का अर्थ—इस सब में जो पड़ गया, वह व्यक्ति पक्षी के गीत के आनंद को अनुभव नहीं कर पाएगा। वह पक्षी के गीत को जानने से रह जाएगा। ऐसा ही समझो कि तुम्हें एक सुंदर कविता दी गयी और तुम इस उलझन में पड़ गये कि इसकी व्याकरण क्या है? शब्दों का जमाव कैसा है? शैली कौन सी है? नयी है कि पुरानी, आधुनिक है कि प्राचीन? फिर छंद के नियम पाले गये हैं या नहीं? मात्राएं सब अपनी जगह हैं या नहीं? अगर तुम इस सब में पड़ गये, तो एक बात पक्की है कि तुम बहुत कुछ कविता के संबंध में जान लोगे, लेकिन कविता को जानने से वंचित रह जाओगे। या ऐसा समझो कि तुमने वीणा को बजते देखा और तुम वीणा खोलकर बैठ गये और देखा कि तार कहां बने हैं, जापान में कि जर्मनी में, लकड़ी कहां से लायी गयी? यह यंत्र बना कैसे है जिसमें इतना माधुर्यपूर्ण संगीत पैदा होता है? तुम वीणा के संबंध में बहुत कुछ जान लोगे, लेकिन संगीत के संबंध में कुछ भी न जान पाओगे।

प्रेम के संबंध में सोचने वाले लोग प्रेम से वंचित रह जाते हैं। यह दुर्भाग्य है,

मगर ऐसा है। ईश्वर के संबंध में जो लोग जीवनभर विचार करते हैं, वे ईश्वर को जानने से वंचित रह जाते हैं।

भक्ति इन सब बातों की तरफ इशारा करती है। भक्ति बड़ी क्रांतिकारी दृष्टि है। भक्ति कहती है—शरीर की शुद्धि ठीक, अपनी जगह ठीक, लेकिन उसी में उलझ मत जाना। उसका मूल्य बहुत कम है। और विचार की प्रक्रियाएं भी सुंदर हैं, लेकिन उन्हीं में भटक मत जाना, अन्यथा वे महाजंगल सिद्ध होंगी और तुम उन्हीं में भटकते रह जाओगे। पहेलियों पर पहेलियां उठती जाएंगी, तुम कभी उस जंगल के बाहर न आओगे।

शरीर से पार जाना है, और मन से भी पार जाना है। हृदय में आरोपित करना है जीवन-चेतना को। हृदय में जड़ें जमानी हैं। भाव में डुबकी लेनी है। जो भाव तक उठ पाता है, वह श्रेष्ठतम है इस जगत में, क्योंकि वही परमात्मा को जान पाता है, जी पाता है, हो पाता है। बुद्धि मलिन है; चंचलता है बहुत, अस्थिरता है बहुत, विचार ही विचार की इतनी तरंगें हैं जैसे झील पर बहुत तरंगें हों और चांद का प्रतिबिंब न बने, और बने भी तो ऐसा लगे जैसे चांदी बिखरी है, चांद को चांद की तरह देखना असंभव हो। तो बुद्धि के लिए शुद्ध होने की प्रक्रियाएं, वही ध्यान है। वही अवधान है।

जो सदियों-सदियों में खोजे गये मार्ग हैं, वे बुद्धि को शुद्ध करने के मार्ग हैं। कैसे बुद्धि एकाग्र हो, कैसे बुद्धि निर्विकार हो, कैसे बुद्धि शांत हो, कैसे विचार शांत हों, यह ज्ञानयोग का मार्ग है। लेकिन भक्तियोग एक अपूर्व कदम है, भक्तियोग यह कहती है—बुद्धि को छोड़ो उसकी जगह, उसमें उलझो मत; तुम बुद्धि को दरकिनार रख सकते हो और आगे बढ़ जा सकते हो। बुद्धि इतना समय खराब करने योग्य नहीं है। और एक बार उलझे तो बाहर निकलना मुश्किल हो जाएगा। बुद्धि में उठने दो तरंगें, तुम बुद्धि की तरंगों को बिठालने में उतनी चिंता मत करो, तुम बुद्धि पर ज्यादा ध्यान ही मत दो, उपेक्षा करो; उठने दो बुद्धि में तरंगें, तुम तो परमात्मा में सीधी छलांग लगाओ।

फर्क समझना।

ज्ञानी कहता है—जब तक बुद्धि शुद्ध न होगी, तब तक परमात्मा आएगा नहीं। भक्त कहता है—जब तक परमात्मा न आए, तब तक बुद्धि शुद्ध कैसे होगी? ज्ञानी कहता है—पहले मैं शुद्ध कर लूं बुद्धि को, तभी परमात्मा आ सकता है, क्योंकि वह शुद्ध में ही आएगा। भक्त कहता है—उसकी मौजूदगी में ही शुद्धि फलित होती है, उसके बिना कोई शुद्धि नहीं है। उसके बिना कौन शुद्ध करेगा? तुम्हीं करोगे न! तुम ही अशुद्ध हो, तुम कैसे शुद्ध करोगे? कौन शुद्ध कर रहा है? बुद्धि ही बुद्धि को शुद्ध कर रही है। बुद्धि ही शुद्धि के उपाय खोज रही है, वही बुद्धि जो अशुद्ध है। अशुद्ध बुद्धि से शुद्धि के उपाय खोजे जा रहे हैं, वे सब उपाय अशुद्ध होंगे। इसमें एक बड़ी भ्रमणा हो जाएगी।

भक्त कहता है—स्वीकार करो कि बुद्धि अशुद्ध है, स्वीकार करो कि मैं अशुद्ध हूं और फिर भी पुकारो उसे कि मैं अशुद्ध हूं भला, तेरा हूं; बुरा हूं भला, तेरा

हूं; जैसा हूं, स्वीकार कर, अंगीकार कर, मुझ पर उतर। मैं अपनी धूल खुद न झाड़ पाऊंगा, तेरी वर्षा हो तो मेरी धूल बह जाएगी, मैं शुद्ध हो जाऊंगा। तू आ, तेरे आते ही रोशनी आ जाएगी। तेरी रोशनी में सब निखर जाएगा, सब साफ हो जाएगा, तू आ। तेरी अग्नि मुझ पर बरसे तो जो कूड़ा-कर्कट है, अपने से जल जाएगा, सोना ही बचेगा। आग में बिना डाले सोना निखरेगा कैसे? और भगवान में गुजरे बिना भक्त निखरेगा कैसे?

इसलिए भक्ति की दृष्टि को समझ लेना।

उसकी दृष्टि यही है कि उसकी मौजूदगी में सब फलित हो जाता है। हम उसे बुला लें, तो सब हो जाएगा। हमारे किये कुछ भी नहीं हो सकता है। हमारे किये पर हमारे हाथ की छाप होगी—हमारे हाथ गंदे हैं। हमारे किये पर हमारे विचार का अंकन होगा—हमारे विचार गंदे हैं। हम तो जो भी करेंगे उसमें गंदगी आ जाएगी। हम गंदे हैं, हमारा अहंकार गंदा है; यह मैं-भाव तो गंदगी का मूल है। तो भक्त कहता है—यह हमारे बस की बात नहीं है; हम अवश हैं, हम असहाय हैं; हम रो सकते हैं, हम पुकार सकते हैं, हम विह्वल हो सकते हैं, आना तुझे पड़ेगा। और परमात्मा आता है। परमात्मा की कोई शर्त नहीं कि तुम जब शुद्ध होओगे तभी आऊंगा। यह शर्त तुम्हारे अहंकार ने ही लगा रखी है। यह शर्त तुम्हारे ही अहंकार की है।

यह ऐसा है जैसे बच्चा मल-मूत्र कर लिया है और अपने झूले में मल-मूत्र में दबा पड़ा है, और सोचता है कि जब तक शुद्ध न हो जाऊं तब तक मां को कैसे बुलाऊं? पहले शुद्ध तो हो लूं? ऐसे में कहीं मां को बुलाना होता है? ऐसे में कहीं मां आएगी? लेकिन यह बच्चा शुद्ध होगा कैसे? यह शुद्ध होने की अगर थोड़ी चेष्टा करेगा तो और गंदगी में दब जाएगा। वह जो गंदगी अभी शायद इतनी फैली भी न हो, इसकी शुद्ध करने की चेष्टा में और बुरी तरह फैल जाएगी। नहीं, यह बच्चे को इस सब की चिंता नहीं आती। यह रोने लगता है, यह पुकारने लगता है, मां दौड़ी चली आती है।

भक्ति का सूत्र, मौलिक सूत्र यही है कि तुम्हारी पुकार परमात्मा को ले आती है। तुम एक बार पुकारो तो! तुम आसन-व्यायाम करो, तुम श्रवण-मनन-निदिध्यासन करो, तुम सब तरह से अपने को शुद्ध करो, फिर बुलाओगे, इसमें भी अस्मिता है कि मैं जब शुद्ध हो जाऊंगा तब बुलाऊंगा—लेकिन मैं जब शुद्ध हो जाऊंगा, तब! तुमने शर्तें बना रखी हैं अपने ऊपर। तुम शुद्ध हो पाओगे? इस देह को कितना ही शुद्ध करो, यह रोज अशुद्ध हो जाएगी। फिर भोजन करोगे, फिर अशुद्ध हो जाएगी। इसमें तो खून रहेगा और बहेगा। इसमें तो जीवाणु मरेंगे और जीएंगे। यह देह तुम कितनी ही शुद्ध करो—योगी कितनी ही देह की चिंता में लगा रहे, तुम सोचते हो योगी की देह कुछ भोगी से ज्यादा शुद्ध हो जाती है? शायद थोड़ी कम बीमारियां आती होंगी; लेकिन मौत तो फिर भी आती है। शायद थोड़े ज्यादा दिन जिंदा रह जाता होगा; लेकिन ज्यादा दिन जिंदा रहे कि कम, इससे क्या फर्क पड़ता है। योगी की देह भी सड़ेगी, उस से भी दुर्गंध उठेगी। सब जप-तप व्यर्थ श्रम हुए।

और तुम सोचते हो जो बहुत ज्यादा चित्त को एकाग्र करने बैठे रहते हैं, इनका चित्त शांत हो जाता है? सच तो यह है, उल्टा अशांत हो जाता है। तुम्हारे घर में अगर एक आदमी को भी यह सनक सवार हो जाए कि चित्त एकाग्र करना है, तो वह खुद तो अशांत हो ही जाता है, पूरे घर को भी अशांत कर देता है। क्योंकि जरा कोई हिल नहीं सकता, लोग बोल नहीं सकते, बच्चे शोरगुल नहीं मचा सकते। पत्नी को बर्तन भी चौके में सम्हालकर रखने होते हैं—कोई आवाज न हो जाए, क्योंकि पतिदेवता ध्यान कर रहे हैं, उनका ध्यान अगर खंडित हो जाए—और वह बिलकुल तैयार ही बैठे हैं कि कोई बहाना मिल जाए; खंडित तो हो ही रहा है, किसी बिना बहाने के भी हो रहा है, लेकिन बिना बहाने के वह किस पर टूटें? अगर पत्नी का बर्तन गिर जाए हाथ से, तो वह निकलकर अभी पूजागृह के बाहर आ जाएं कि भ्रष्ट कर दिया मेरा ध्यान, अशांति पैदा कर दी! कोई बच्चा चिल्ला दे, तो उनको मौका मिले, वह बाहर आ जाएं। वे तैयार ही बैठे हैं, वे उबल ही रहे हैं भीतर, भाप इकट्ठी हो रही है।

तुमने देखा नहीं, जितने लोग ध्यान इत्यादि में बहुत उत्सुक हो जाते हैं, उतने ही ज्यादा अशांत चित्त हो जाते हैं, उतने ही क्रोधी हो जाते हैं। एक आदमी घर में धार्मिक हो जाए, तो समझो घर में एक उपद्रव हो गया। वह क्रोधी हो जाता है। वह माला फेरता रहता है और चारों तरफ देखता रहता है कि सारा संसार उसके अनुकूल चल रहा है कि नहीं! जब मैं माला फेर रहा हूं, तो कुत्ते क्यों भूंक रहे हैं? जब मै माला फेर रहा हूं, तो बच्चे क्यों शोरगुल कर रहे हैं? जब मैं माला फेर रहा हूं, तो कोई गीत क्यों गा रहा है? जैसे सारी दुनिया तुम्हारे साथ माला फेरने का निर्णय किये बैठी है।

नहीं, यह चित्त को शांत करने वाले लोग चित्त को शांत नहीं कर पाते। चित्त को शांत कर पाते हैं वे लोग, जो चित्त के ऊपर है उसको बुलाते, जो उसे पुकारते; जो कहते हैं, मैं तो ऐसा हूं, बुरा-भला तुम्हारा हूं, तुम आओ, मुझे निखारो, मुझे पखारो, मुझे ले चलो, मैं तो अंधा हूं, मेरा हाथ गहो।

भक्त कहता है—मैं अपने से कुछ न कर पाऊंगा, तुम कुछ करो। यही समर्पण है। इसी समर्पण में शांति है, शुद्धि है।

शांडिल्य कहते हैं—

बुद्धि हेतुः प्रवृत्तिः अविशुद्धेः अवधावत्।

'जब तक धान पर छिलका रहता है तभी तक धान को मूसल द्वारा कूटा जाता है।' जब धान का छिलका उतर जाता है, तो फिर उसे कोई नहीं कूटता। क्या छिलका है जिसकी वजह से तुम्हें अशुद्धि हो रही है और शुद्ध नहीं हो पा रहे हो? अहंकार छिलका है। अहंकार ने तुम्हारी आत्मा को घेरा है। जब तक अहंकार है, तब तक बहुत कूटे जाओगे। जिस दिन अहंकार नहीं रहा, उस दिन कूटने की कोई जरूरत नहीं रह जाएगी। इसलिए भक्त कहता है—न तो कोई योग है, न कोई ध्यान है, सिर्फ शरणागति। अहंकार को छोड़ दो तो धान ने अपना छिलका छोड़ दिया, फिर कूटने की कोई जरूरत नहीं रही।

ये जिनको तुम तपस्वी कहते हो, ये क्या कर रहे हैं? ये मूसल से अपने को

कूट रहे हैं। तुम्हें इन पर दया भी आती है, सम्मान भी आता है कि बिचारे कितना कष्ट उठा रहे हैं! इनका कष्ट देखकर तुम इनके चरण छूने भी जाते हो, आदर देने भी जाते हो। मगर ये व्यर्थ कष्ट उठा रहे हैं, और इनके कष्ट उठाने से छिलका कटता नहीं। मजा यह है, यह कोई साधारण धान नहीं है कि मूसल से कूटा और छिलका निकल जाए। यह आदमी है, आदमी बड़ी उलझी हुई धान है। जितना कूटो, छिलका और चिपकता है। तो तुम अपने त्यागियों में जितना अहंकार पाओगे, उतना भोगियों में नहीं होता।

जो आदमी शराबघर जाता है रोज, वह विनम्र होता है। विनम्र इसलिए होता है कि अहंकार करने का है ही क्या? हमेशा सिर झुकाए रहता है, कहता है—हां, पापी हूं, क्षुद्र हूं, तुच्छ हूं, किसी योग्य नहीं हूं, आपके सामने आंख भी उठाऊं इस योग्य भी नहीं हूं, यह विनम्र होता है। लेकिन जो आदमी रोज मंदिर जाता है, छाती अकड़ जाती है, उसकी रीढ़ एकदम सीधी हो जाती है, वह अकड़कर चलता है, वह चारों तरफ देखकर चलता है कि देखो मैं मंदिर गया, देखो मैं मंदिर से आ रहा हूं, और तुम सब पापी क्या कर रहे हो? जिसने एकाध दिन उपवास कर लिया, वह दूसरे दिन बाजार में इस तरह घूमता है जैसे उसने कोई संपदा इकट्ठी कर ली। जरा सा किसी ने त्याग कर दिया, कुछ दान दे दिया कि उसका अहंकार बढ़ा।

तुम अपने योगियों को, अपने महात्माओं को जितने अहंकार से भरा हुआ पाओगे उतने तुम साधारणजनों को न पाओगे। तुम्हारे साधारणजन ज्यादा धार्मिक हैं। मैं दोनों से परिचित हूं। जिसको तुम साधारणजन कहते हो, वह परमात्मा के ज्यादा करीब मालूम पड़ता है। तुम्हारा महात्मा तो भयंकर अहंकार से ग्रस्त है। यह धान ऐसी है आदमी की, इसको मूसल से कूटो तो छिलका और चिपक जाता है। अगर बहुत कूटो तो धान तो समाप्त हो जाती है, छिलका ही छिलका रह जाता है। छोछा अहंकार।

शांडिल्य कहते हैं—'इसी प्रकार बुद्धि संबंधी प्रवृत्तियां तभी तक रहती हैं, जब तक चित्त शुद्ध नहीं हो पाता।' लेकिन चित्त शुद्ध कैसे होगा? शुद्ध कौन करेगा? इसको मैं फिर दोहरा दूं, शुद्ध कौन करेगा? तुम शुद्ध करोगे, तुम्हीं तो अशुद्ध हो। यह ऐसे ही है, जैसे कोई आदमी अपने ही पेट को खोल ले और आपरेशन करे। कितना ही बड़ा सर्जन हो, अपना ही पेट नहीं खोलेगा। कितना ही बड़ा, कितना ही कुशल सर्जन हो और हजारों लोगों की अपेंडिक्स निकाली हो, तो भी अपनी अपेंडिक्स नहीं निकालेगा। क्योंकि वह प्रक्रिया तो घातक है। किसी को पुकारना पड़ेगा। और जब पुकारना ही हो, तो परमात्मा से छोटे को क्यों पुकारना? छोटे से क्यों राजी होना?

उस महाचिकित्सक को बुलाओ, उस परमवैद्य को उतरने दो, उसकी मौजूदगी तुम्हें स्वस्थ कर जाएगी, तुम्हारे घाव भर जाएगी। जो गलत है, ले जाएगी, जो सही है, दे जाएगी।

इसलिए शांडिल्य कहते हैं कि भक्त को इन सब बातों में नहीं पड़ने की जरूरत है।

त्यागियों को बड़ी हैरानी होती है भक्तों को देखकर, क्योंकि उनको लगता है भक्त तो भोगी जैसे हैं। क्योंकि भक्त नाचता, गाता, आनंदित रहता है। यह अस्तित्व भगवान से भरा है, इसलिए उल्लसित रहता है, उदास नहीं रहता। भक्त उदास नहीं होता, यह उसके स्वास्थ्य का लक्षण है। उसके चेहरे पर मुस्कुराहट होती है। यह परमात्मा से भरा हुआ जगत, यहां मुस्कुराओगे नहीं तो कहां मुस्कुराओगे! भक्त उदास नहीं है, क्योंकि अपने चेहरे पर चिंता का कोई कारण ही नहीं है, सब उस पर छोड़ दिया है, अब वह जाने। जो चांद-तारे चला रहा है, वह मुझे एक छोटे से आदमी को न चला पाएगा? भक्त कहता है—जो इतने विराट की लीला के पीछे छिपा है, वह मुझे छोटे से क्षणभंगुर के पीछे भी चला लेगा। उसके हाथों में मैं सुरक्षित हूं। भक्त आनंदित होता है, प्रफुल्लित होता है, प्रसन्नचित्त होता है। जैसे-जैसे भक्ति की गहराई बढ़ती है, वैसे-वैसे उसका भोग गहन होता है। यहां भोगने को ही है, त्यागने को क्या है, क्योंकि सब तरफ परमात्मा है। जो भी तुमने त्यागा, वह परमात्मा को ही त्यागा। जितना तुमने त्यागा, उतना परमात्मा तुमने त्यागा। यहां सभी परमात्मा है। कुछ भी त्यागने को नहीं है। हर भोग में परमात्मा को खोज लेना, हर भोग में भगवान को खोज लेना। तपस्वी कहता है—भोजन करना, लेकिन स्वाद मत लेना। भक्त कहता है—अन्नं ब्रह्म। भक्त कहता है—अन्न तो ब्रह्म है। इतना स्वाद लेना कि अन्न तो भूल ही जाए, भगवान का स्वाद आ जाए। ये बड़ी भिन्न दृष्टियां हैं। ये बड़े महत्वपूर्ण बिंदु हैं।

त्यागी भागता है स्त्री से, पुरुष से, डर लगता है उसे—त्यागी सदा डरा हुआ है—और जितना भागता है, उतना डर बढ़ता है। भक्त तो प्रेम में लवलीन होता है, वह कहता है, सब भक्ति के ही रूप हैं। बाप और बेटे के बीच जो घटता है, वह भक्ति का ही रूप है। और पति-पत्नी के बीच जो घटता है, वह भी भक्ति का ही रूप है। गुरु-शिष्य के बीच जो घटता है, वह भी भक्ति का ही रूप है। परम भक्तियां ये नहीं हैं, बड़ी धूलमिश्रित भक्तियां हैं, मगर हैं तो भक्तियां ही।

कभी-कभी किसी क्षण में, जिसे तुमने प्रेम किया है उसमें परमात्मा की झलक निश्चित मिलती है, नहीं तो प्रेम ही नहीं किया होता—प्रेम ही हम परमात्मा को करते हैं, झलक उसकी कहीं भी मिली हो। झलक ही मिलती है; खो-खो जाती है, फिर अंधेरा घना होता जाता है; इस से क्या फर्क पड़ता है? भक्त कहता है—इस तरह प्रेम करना कि जहां तुम्हारा प्रेम हो, वहीं से प्रार्थना का अनुभव शुरू हो जाए। पत्नी इस तरह चाही जा सकती है कि पत्नी परमात्मा की मौजूदगी बन जाए। पति इस तरह चाहा जा सकता है, पति के साथ इस तरह की लीनता हो सकती है कि पति के साथ, उसका संग प्रार्थना की झलक लाने लगे। मां अपने बेटे को इस भांति चाह सकती है कि हर बेटा कृष्ण बन जाए। भक्त कहता है—जीवन को रूपांतरण करना, त्यागना नहीं। आंख खोलकर ठीक से देखना है, यहां सब तरफ भगवान छिपा है, उसे पुकारना है।

तत् अंगानान् च।

यह बड़ी क्रांति का सूत्र है। उसके अंगसमूहों की भी आवश्यकता नहीं है।

भक्त को तपश्चर्या, योग इत्यादि के अंगसमूहों की कोई आवश्यकता नहीं है—तत् अंगानान् च। कोई योग, कोई विधि-विधान, कोई निधि, कोई निषेध, भक्त को कुछ भी जरूरत नहीं है। भक्ति काफी है। सीढ़ियां नहीं हैं भक्ति में।

'तत् अंगानान् च'। अंगसमूहों की आवश्यकता भक्ति को नहीं है। योग में अष्टांग है—अंग। बुद्ध ने भी अष्टांगिक मार्ग कहा है—अंग। भक्ति में कोई अंग नहीं है। भक्ति समग्र है, पूरी-पूरी है। चाहो तो ले लो पूरी, चाहो तो न लो। टुकड़ों में बंटी हुई नहीं है। ऐसा नहीं है कि थोड़ा लिया, फिर थोड़ा लिया, फिर थोड़ा लिया; जिसे लेना है, उसे पूरा। भक्ति अखंड है। उसमें अंग नहीं हैं, खंड नहीं हैं। इसका परम अर्थ होता है कि भक्त सब विधि-निषेधों से मुक्त। जिसको अष्टावक्र ने कहा है—स्वच्छंदता, वह भक्त की परमदशा है। भक्त स्वच्छंद होता है।

घबड़ा मत जाना शब्द स्वच्छंद से; क्योंकि तुमने उसका जो अर्थ सुना है, वह गलत है। तुमने स्वच्छंद से अर्थ समझ लिया—उच्छृंखल। तुमने स्वच्छंद का अर्थ समझ लिया है—जो कुछ भी करता है, उलटा-सीधा। नहीं, स्वच्छंद का वह अर्थ नहीं है। स्वच्छंद का अर्थ होता है—जो भीतर के छंद से जीता है, स्वयं के छंद से जीता है। जिसके ऊपर बाहर से विधि-निषेध नहीं आते। जो शास्त्रों में देख-देखकर नहीं चलता। जिसके पास बाहर के कोई नक्शे नहीं हैं, जो अंतर्ज्योति से चलता है। प्रभु को पुकार लिया है, अब प्रभु उसके भीतर नाच रहा है, वह उसी नाच में मस्त है, वह उसी मस्ती में चलता है। अब उस पर कोई विधि-विधान नहीं लगते। अब उस पर छोटी-छोटी बातें मर्यादा की लागू नहीं होतीं। इसलिए तो मीरा कहती है—लोक-लाज खोयी।

लोक-लाज अंधे आदमियों के लिए व्यवस्थाएं हैं। जिसको आंख मिल गयी, वह लोक-लाज की चिंता नहीं करता। ऐसा समझो कि एक अंधा आदमी एक लकड़ी को लेकर चलता है, टटोल-टटोलकर। फिर उसकी आंख ठीक हो गयी, तो वह लकड़ी को फेंक देता है, अब लकड़ी किसलिए? अब वह स्वच्छंद हो जाता है। पहले लकड़ी से बंधा था, पहले एक तरह की परतंत्रता थी, लकड़ी के बिना चल ही नहीं सकता था—उठता था तो पहले पूछता था मेरी लकड़ी कहां है? एक इंच नहीं हिलता था बिना लकड़ी के, बिना लकड़ी के चलना खतरनाक था, लकड़ी ही उसकी परिपूरक आंख थी, वही आंख का काम देती थी, लेकिन अब असली आंख मिल गयी, अब आंख की जाली कट गयी, आंख खुल गयी, अब वह लकड़ी के लिए नहीं रुकता, अब लकड़ी को टटोलता भी नहीं है, अब लकड़ी को लेकर चलता भी नहीं है, अब लकड़ी की कोई जरूरत भी नहीं है। जिसके हाथ-पैर ठीक हो गये, वह बैसाखी लेकर तो नहीं चलता?

जगत में इतने विधि-निषेध हैं—ऐसा करो, ऐसा मत करो; यहां जाना, वहां मत जाना; इस तरह बोलना, उस तरह मत बोलना; इस तरह का व्यवहार शुभ, उस तरह का व्यवहार अशुभ; यह नीति, यह अनीति; यह चरित्र, यह दुश्चरित्रता—ये सारे जो इतने नियम हैं, ये लकड़ियां हैं। आदमी अंधा है, उसके भीतर कोई रोशनी

नहीं है, उसके पास अपनी आंख नहीं है, उसे टटोल-टटोलकर चलना पड़ता है, नहीं तो गड्ढों में गिरेगा। इतना टटोल-टटोलकर चलता है फिर भी तो गड्ढों में गिरता है, तो बिना टटोले चलेगा तो और भी ज्यादा गिरेगा। टटोल-टटोलकर भी कहां बच पाता है? कितना तुम सोचते हो कि क्रोध बुरा है और क्रोध करना नहीं है, और शास्त्र कहते हैं क्रोध मत करो, फिर भी क्रोध आता है तब आता है। गड्ढा जब आता है तो तुम चूक नहीं पाते, गिर ही जाते हो। कामवासना जब पकड़ती है तो पकड़ती है। फिर ज्वर की भांति पकड़ती है। फिर तुम्हारे हाथ के बाहर होती है। फिर तुम्हारे सब निर्णय ब्रह्मचर्य के, और तुम्हारी सारी पढ़ी-लिखी बातें दो कौड़ी की हो जाती हैं। उस प्रगाढ़ बाढ़ में सब बह जाता है—तुम्हारे सब शास्त्र, तुम्हारे सब शास्ता। लेकिन जब वासना चली जाती है, तब तुम फिर अपने शास्त्रों को सम्हालकर फिर चलने लगते हो। फिर अपनी लकड़ी उठा ली, गड्ढे से फिर निकल आए, अब तय कर लिया अब कभी न गिरेंगे, अब जरा और सम्हालकर चलेंगे, और टटोलकर चलेंगे। मगर ये लकड़ियां बहुत काम आतीं नहीं।

स्वच्छंद का अर्थ होता है—जिसको भीतर का छंद उपलब्ध हो गया, जिसको भीतर की गीतमयता उपलब्ध हो गयी, जिसको भीतर का राग सुनायी पड़ने लगा, जिसके भीतर की वीणा बज उठी। अब बाहर से उसको हिसाब नहीं लगाना पड़ता। अब तो उसकी भीतर की वीणा के जो अनुकूल है, वही शुभ है; जो अनुकूल नहीं है, वही अशुभ है। इसको हम ऐसा कहें—भक्त के अतिरिक्त और लोग सोच-सोच कर करते हैं कि क्या ठीक है और क्या गलत है। भक्त जो करता है, वही ठीक है, और भक्त जो नहीं करता, वही गलत है। भक्त ठीक ही करता है। क्योंकि भक्त ने अपने को भगवान के साथ तन्मय कर लिया।

और भी ठीक होगा यह कहना कि भक्त अब कुछ नहीं करता, जो भगवान उससे करवाता है वही करता है। भक्त ने अपने को उसके हाथ में छोड़ दिया। भक्त कहता, जो तेरी मर्जी। राम बनाना है राम बना दे, रावण बनाना है रावण बना दे, जो तेरी मर्जी। मेरी अपनी कोई मर्जी नहीं, मेरी अपनी कोई ना-मर्जी नहीं। मेरा अपना कोई निर्णय नहीं, सब निर्णय तेरे हाथ में हैं। तू जिलाए तो जीऊं, तू मारे तो मरूं। न तो जीने में मेरा कोई रस है, न मरने में मेरा कोई भय है। एक ही रस है मेरा कि तेरे हाथ मेरे हाथों को पकड़ लें, और मैं तुझ से अलग कभी भी न चलूं; तू चलाए, वैसा ही चलूं। ऐसी भगवान में तल्लीनता की दशा में स्वच्छंदता अपने आप पैदा हो जाती है। स्वच्छंदता के लिए जो शब्द उपयोग किया है शास्त्रों में, वह है परमहंस।

इसलिए भक्त पर कोई नियम लागू नहीं होता। तुम्हारी सामान्य नैतिकताएं-अनैतिकताएं लागू नहीं होतीं। मैं यह नहीं कह रहा हूं कि तुम अपनी सामान्य नैतिकता और अनैतिकता को छोड़ देना, मैं यह कह रहा हूं कि जब तुम भक्त होओगे तो वे छूट ही जाती हैं, वे बच नहीं सकतीं। भक्त का व्यक्तित्व बड़ा विद्रोही होता है, क्योंकि चरित्र मुक्त होता है।

तुमने देखा, राम की कथा को हम कहते हैं—राम चरित्र मानस। कृष्ण की

कथा को नहीं कहते। कृष्ण की कथा को कहते हैं—कृष्ण-लीला। चरित्र जरा ठीक नहीं है वहां कहना। कृष्ण में चरित्र जैसा कुछ भी नहीं है। राम में चरित्र ही चरित्र है, लीला जैसा कुछ भी नहीं है। राम सत्पुरुष हैं, सच्चरित्र। मर्यादापुरुषोत्तम—क्या करना है, खूब सोच-सोचकर फूंक-फूंककर कदम रखते हैं। जो करना चाहिए, वही करते हैं। जो नहीं करना चाहिए, कभी नहीं करते। एक धोबी भी छोटी सी बात उठा देता है, दो कौड़ी की बात, लेकिन राम की मर्यादा ऐसी है कि वह सीता को त्याग देते हैं। एक भी आदमी ने अगर संदेह उठा दिया, तो उनके चरित्र को लांछन लगता है।

पिता आज्ञा दे देते हैं—और पिता ने आज्ञा कोई बहुत सोच-समझ में नहीं दी थी। दशरथ कोई बहुत चरित्र के व्यक्ति मालूम नहीं होते हैं। बुढ़ापे में विवाह कर लिया था उस नवयुवती से। अक्सर जब कोई बूढ़ा आदमी विवाह करता है, तो झंझटें होती हैं। बूढ़ा आदमी विवाह करता है तो जो नयी युवती को ले आया है पत्नी बनाकर, उसकी हर बात माननी पड़ती है। अब और तो कुछ कर भी नहीं सकता, जवानी तो है नहीं उंसके पास कि प्रेम से आपूर कर दे इस युवती को। अब इसका प्रेम तो भर नहीं सकता, इसलिए यह परोक्ष रूप से और भी कुछ मांगे तो वह भर देता है—हीरे-जवाहरात खरीद लाता है, कार खरीद देता है, बड़ा मकान बना देता है, ये परिपूर्तियां हैं—जवानी तो है नहीं।

तो दशरथ ने बुढ़ापे में विवाह किया। इस नयी युवती ने वचन ले लिया कि मैं जो कहूंगी, वही तुम्हें मानना पड़ेगा। एक वचन मेरा पूरा करना पड़ेगा। अब यह बड़ी क्षुद्र सी बात थी। लेकिन उसने कहा कि राम को वनवास भेज दो चौदह वर्ष के लिए, क्योंकि उसके बेटे को राज्य मिले। यह अनैतिक बात थी, नियम के अनुकूल नहीं थी। राम मानते ऐसा आवश्यक नहीं था। राम कह सकते थे, यह बात ही गलत है, गलत के सामने मैं न झुकूंगा; मगर राम हैं मर्यादापुरुषोत्तम, गलत-सही का सवाल नहीं, पिता की आज्ञा पिता की आज्ञा है।

ऐसा नहीं है कि राम को न दिखा होगा कि गलत है, दिखा होगा, लेकिन वे मर्यादा से चलेंगे, वे नियम के अनुकूल होंगे, वे लकीर के फकीर होंगे; जैसा है, जैसा होना चाहिए, जो विधि कहती है, विधान कहता है, संस्कार कहते हैं, उस से रत्तीभर यहां-वहां नहीं होंगे। उनके जीवन में चरित्र है, कृष्ण के जीवन में लीला है।

लीला का अर्थ होता है—कोई नियम नहीं है। इसलिए कृष्ण क्या करेंगे, उसकी पहले से भविष्यवाणी नहीं की जा सकती। कृष्ण बेबूझ रहेंगे। कुछ भी कर सकते हैं, दिये गये वचन भी भंग कर सकते हैं। क्योंकि कृष्ण जो कह रहे हैं, वह इस क्षण के लिए लागू है, कल के लिए नहीं। इमर्सन का बड़ा प्रसिद्ध वचन है कि जो आज तुम्हारे भीतर से कहा जाए, कहना, और जो कल तुम्हारे भीतर से कहना चाहे, कल जो कहना चाहे, वह कल होने देना। बाधा मत बनने देना। यह मत सोचना कल कि मैंने बीते कल ऐसा कहा था, अब मैं ऐसा कैसे कहूं? प्रत्येक क्षण को उसकी समग्रता में जीना।

लीला का अर्थ होता है—जीवन में असंगति होगी। तो कृष्ण ने कह दिया था

युद्ध में शस्त्र न उठाऊंगा, और फिर उठा लिया। राम से ऐसी अपेक्षा नहीं हो सकती। राम नैतिक पुरुष हैं। कृष्ण धार्मिक पुरुष हैं। कृष्ण परमहंस हैं। कृष्ण उस जगह हैं, जहां परमात्मा के साथ एकलयता हो गयी है, स्वच्छंद हैं। अपने को मिटा ही दिया है। अब जो परमात्मा की मर्जी। उस क्षण उसकी मर्जी थी कि वचन दिया कि युद्ध में शस्त्र न उठाऊंगा, और अब उसकी मर्जी है कि उठाना चाहता है, तो मैं कौन हूं बीच में बाधा डालने वाला? मैं कैसे कहूं कि मर्यादा उल्लंघित होती है; कि मेरा दिया हुआ वचन खंडित होगा, मेरे अहंकार पर बदनामी आएगी। नहीं, कृष्ण तो बांस की बांसुरी हैं। कल वैसा गीत गाया था, वह कल का गीत था; आज ऐसा गीत गाते हो, यह आज का गीत है। कल के और आज के गीत में संगति होनी चाहिए, इसकी कोई अनिवार्यता नहीं। कल कल था, आज आज है।

परमहंस का अर्थ होता है—क्षण-क्षण जीएगा जो। और जिसके दो क्षणों में संगति हो भी सकती है, न भी हो। परमहंस दशा को हमने अंतिम दशा कहा है।

वह भक्त की स्थिति है।

'तत् अंगानान् च'—भक्ति के कोई अंग नहीं हैं। और भक्त को किन्हीं अंगों की कोई आवश्यकता नहीं है। भक्त भगवान से तन्मय हो जाता है। बस, यही भक्ति का सार है—तन्मयता। अब कैसी विधि, कैसा निषेध? ज्ञानी कहता है—नेति-नेति, यह भी नहीं-यह भी नहीं। भक्त कहता है—इति-इति, यह भी-यह भी। भक्त समग्र स्वीकार करता है। भक्त नहीं जानता ही नहीं। भक्त अस्तित्व के प्रति एक पूर्ण हां का भाव है—स्वीकार, परम स्वीकार। भक्त निषेध-नकार जानता ही नहीं। भक्त की भाषा में नहीं शब्द होता ही नहीं। भक्त की भाषा में एक ही शब्द होता है—हां।

मैंने सुना, एक युवती को उसके प्रेमी ने दूर से तार भेजा कि क्या तुम मुझसे विवाह करने को राजी हो? उस युवती ने जल्दी से जाकर पोस्ट आफिस में तार का उत्तर दिया—गांव की ग्रामीण युवती, उसने लिखा—हां। जिस क्लर्क को तार दिया, उसने कहा कि एक ही शब्द लिख रही हो, एक लिखो चाहे दस, दाम बराबर लगते हैं, तुम दस लिख सकती हो। तो उसने बहुत सोचा और फिर लिखा—हां, हां, हां, नौ बार हां। क्लर्क ने गिनती की, उसने कहा एक बार और लिख सकती हो। उसने कहा, लिख तो सकती हूं, मगर जरा ज्यादा हो जाएगा। नौ हां काफी नहीं हैं? असल में एक ही हां में सब हां समा जाते हैं, नौ लिखो, कि दस लिखो, कि हजार लिखो, कि करोड़ लिखो, कोई फर्क नहीं पड़ता। एक ही हां में सब समा जाते हैं। एक ही न में सारी न समा जाती है, एक ही हां में सारे हां समा जाते हैं। भक्त एक बार हां कह देता है, फिर हां जीता है। फिर न नहीं उठाता। इति-इति, यह भी-यह भी, सब परमात्मा है। यहां-यहां, अब-अभी, भक्त की यह उदघोषणा है।

ताम् ऐश्वर्यपदाम्: परत्वात्।

'विभिन्नता के कारण आचार्य कश्यप ऋषि ने इसको ऐश्वर्यपदा कहकर वर्णन किया है।'

कश्यप परमभक्त हुए। भक्तों की परंपरा में प्रथम भक्त हुए। उन्होंने इस

अवस्था को ऐश्वर्यपदा कहा है। शांडिल्य उनका उल्लेख करते हैं। ऐश्वर्यपदा क्यों? क्योंकि इसी हां में सारा ऐश्वर्य है, क्योंकि इस हां में स्वयं ईश्वर है। तुमने खयाल किया, ईश्वर और ऐश्वर्य शब्द एक ही शब्द के रूप हैं। ऐश्वर्य से ही ईश्वर बना है। जिसके साथ जुड़ जाने से ऐश्वर्य मिलता है, वह ईश्वर। जिसके साथ न जुड़े तो दरिद्रता बनी रहती है; चाहे लाख धन इकट्ठा करो। कितना ही पद, कितना ही धन, सारी पृथ्वी पर साम्राज्य फैला दो, लेकिन जब तक ईश्वर न जुड़े तब तक दीनता और दरिद्रता बनी रहती है, तब तक आदमी भिखारी होता है। तुम्हारे सिकंदर, तुम्हारे नेपोलियन, सब भिखारी हैं। भिखारी की तरह ही जीते हैं और भिखारी की तरह ही मरते हैं। उनके भिक्षापात्र तुमसे बड़े हैं जरूर, बस इतना ही फर्क है। राह के किनारे जो भिखारी भीख मांगता है, उसका भिक्षापात्र छोटा है। सिकंदर जो भीख मांगता है, उसका भिक्षापात्र बड़ा है। राह के भिखारी का भिक्षापात्र गरीब है, सिकंदर का भिक्षापात्र हीरे-जवाहरातों से जड़ा है, मगर भिक्षापात्र भिक्षापात्र है। दोनों मांग रहे हैं, और दोनों गरीब हैं।

सिकंदर जब मरा, तो उसने कहा कि मेरे दोनों हाथ मेरी अरथी के बाहर लटके रहने देना। उसके वजीरों ने पूछा, क्यों? ऐसा कोई रिवाज नहीं। सिकंदर ने कहा—रिवाज हो या ना हो, मेरे हाथ अरथी के बाहर लटके रहें। लेकिन वजीरों ने पूछा, ऐसी बेढंगी चाह का कारण? तो सिकंदर ने कहा, मैं चाहता हूं कि लोग जब मेरी अर्थी को उठते देखें, तो गौर से देख लें कि मैं भी खाली हाथ लिये जा रहा हूं; खाली हाथ आया, खाली हाथ जा रहा हूं, मेरे हाथ भी भरे नहीं; दौड़ा बहुत, तड़फा बहुत, भिखारी का भिखारी मर रहा हूं।

चलो देर सही, लेकिन सिकंदर को समझ तो आयी। बहुत देर में आयी, मगर थोड़ी समझ की किरण तो आयी।

ईश्वर के साथ जुड़कर ही ऐश्वर्य है। इसलिए कश्यप ने कहा है—ऐश्वर्यपदा। भक्त की परमहंस दशा, उसकी स्वच्छंद दशा, फिर उसमें और ईश्वर में कोई भेद नहीं है। फिर भक्त ईश्वर है, क्योंकि भक्त ऐश्वर्य के पद पर प्रतिष्ठित हुआ। सब उसका है, इसलिए ऐश्वर्यपदा। सारा भोग उसका है, सारा सौंदर्य उसका है, सारा रंग, सारे इंद्रधनुष, सारे फूल, सारे आकाश के तारे उसके हैं; यह सारे जगत का वैविध्य उसका है; इसमें से कुछ भी उसने छोड़ा नहीं। त्यागी का ऐश्वर्य इतना बड़ा नहीं हो सकता। उसने बहुत कुछ छोड़ दिया, सिकुड़ गया—त्यागी सिकुड़ जाता है। भक्त फैलता है, विस्तीर्ण हो जाता है।

ब्रह्म शब्द का अर्थ होता है—जो फैलता चला जाए। ब्रह्म का अर्थ होता है—विस्तार। भक्त जानता है फैलने की कला। त्यागी सिकुड़ना जानता है। त्यागी कहता है, इतना और कैसे छोड़ दूं, इतना और कैसे छोड़ दूं; यह भी कैसे छूट जाए, वह भी कैसे छूट जाए। जिसको तुम संसारी कहते हो, वह कहता है—यह भी कैसे मिल जाए, वह भी कैसे मिल जाए, त्यागी उसके विपरीत है, शीर्षासन करता हुआ भोगी है। वह कहता है,यह भी कैसे छूट जाए, वह भी कैसे छूट जाए। भक्त कहता

है, न यहां कुछ छोड़ने को है, न यहां कुछ पकड़ने को है, यह सब हमारा है, हम इसके हैं, हमारे और इसके बीच कोई भेद नहीं है; छोड़कर कहां जाओगे, इकट्ठा करने की क्या जरूरत है; यह तुम्हारा है ही, इसलिए इकट्ठा मत करो; और छोड़कर कहां जाओगे, जहां भी जाओगे यह तुम्हारा ही रहेगा, इसलिए छोड़कर भी मत जाओ। न भोग, न त्याग। भक्त कहता है, सत्य देखो और ऐश्वर्य से भर जाओ। यह सब तुम्हारा है, तुम इसके हो, यहां तुम अजनबी नहीं हो, यह तुम्हारा घर है।

'ताम् ऐश्वर्यपदाम् काश्यपः परत्वात्।'

इसलिए काश्यप ने कहा कि वह दशा परम ऐश्वर्य की है, ऐश्वर्यपदा है। सीमा में दरिद्रता है, असीमा में ऐश्वर्य है। ईश्वर के साथ होकर तुम असीम हो जाते हो, फिर तुम्हें कोई सीमा नहीं बांधती—न नीति की, न धर्म की, न समाज की, न संस्कृति की, न सभ्यता की। ईश्वर के साथ होकर फिर तुम्हें कोई सीमा नहीं बांधती—हिंदू की नहीं, मुसलमान की नहीं, ईसाई की नहीं। ईश्वर के साथ होकर तुम्हें कोई सीमा नहीं बांधती—पुरुष की नहीं, स्त्री की नहीं; गोरे की नहीं, काले की नहीं; सुंदर की नहीं, असुंदर की नहीं; शिक्षित की नहीं, अशिक्षित की नहीं। ईश्वर के साथ होते ही सारी सीमाएं टूट गयीं। नदी सागर में गिरी, सब किनारे खो गये। नदी सागर में गिरी, नाम-रूप सब खो गया। नदी सागर में गिरी, सागर हो गयी। ताम् ऐश्वर्यपदाम् काश्यपः परत्वात्।

आत्मा एक पराम् बादरायणः।

'और आचार्य बादरायण ने इसी अवस्था को आत्मपर कहा है।' आत्मसाक्षात्कार की अवस्था कहा है। यह दूसरे महर्षि का उल्लेख करते हैं। दो का किया उल्लेख, क्योंकि दोनों थोड़े प्रतीक रूप हैं।

समझें।

काश्यप ने कहा—ईश्वर की अवस्था है वह, तू। और बादरायण ने कहा—मैं की अवस्था है वह, आत्मपरक, आत्मसाक्षात्कार की। ये दो शब्द समझ लेने जैसे हैं—मैं, तू। ये दो उपाय हैं प्रकट करने के।

पश्चिम के बहुत बड़े यहूदी विचारक मार्टिन बूबर ने एक किताब लिखी है—आई दाऊ, मैं-तू। किताब महत्वपूर्ण है। यहूदी भक्ति संप्रदाय का सारा सार उस में है। बूबर ने कहा है कि परमात्मा और भक्त के बीच एक संवाद चलता है, मैं-तू का संवाद। जैसे प्रेमियों के बीच चलता है मैं-तू का संवाद। मैं अकेला-अकेला रहे तो ऊब जाता है, तू की जरूरत पड़ती है; तू के बिना बेचैनी लगती है, तू के बिना खालीपन लगता है, तू के साथ भराव आता है। इसी तरह अकेला कोई मैं ही मैं को जपता रहे, तो ध्यान। बूबर कहता है—ध्यान में आदमी थोड़ा उदास हो जाएगा, अपने में बंद हो जाएगा, आत्मोन्मुख हो जाएगा, बाहर से संबंध टूट जाएगा। बूबर का कहना है—प्रार्थना ज्यादा मूल्यवान, उसमें तू मौजूद रहता है—परमात्मा। प्रार्थना में एक संवाद है, डायलाग है। काश्यप उस में से चुनते हैं—तू। काश्यप कहते हैं कि मैं तो नहीं हो गया। काश्यप बूबर से आगे जाते हैं। बूबर कहता है, मैं और तू दोनों।

इस में द्वंद्व रहेगा, इस में द्वैत रहेगा, दुई रहेगी। यहूदी भक्ति का संप्रदाय द्वैत के ऊपर नहीं उठ पाया।

काश्यप कहते हैं—तू, मैं नहीं; ईश्वर; भक्त मिट गया, बस भगवान बचा; यह अद्वैत की घोषणा हुई। लेकिन जब तक तू है, तब तक कहीं छिपे में मैं रहेगा, नहीं तो तू कौन कहेगा? तो ऊपर-ऊपर तो अद्वैत की घोषणा हुई, लेकिन भीतर-भीतर द्वैत बचा रह गया। भूमि में दब गया, भूमिगत हो गया, अंडरग्राऊंड हो गया, मगर बचा रहा। इसके विपरीत बादरायण कहते हैं—तू नहीं, मैं। अहं ब्रह्मास्मि। या जैसा मंसूर ने कहा—अनलहक, मैं हूं ईश्वर। तू नहीं है, मैं ही हूं। यह भी एक उपाय है अद्वैत की घोषणा का। लेकिन इस में भी भूल वही है। जब तक मैं हूं, तब तक तू भी छुपा रहेगा। तू के बिना मैं में कोई अर्थ नहीं होता।

लेकिन ये उपाय हैं अलग-अलग ढंग से उस परम अवस्था को प्रकट करने के। एक उपाय—मैं-तू। यहूदी फकीर, हसीद, बूबर। तू—काश्यप, सूफी फकीर जलालुद्दीन रूमी। मैं—वेदांत, बादरायण, मंसूरः अनलहक, अहं ब्रह्मास्मि। और चौथी संभावना है—न मैं-न तू; गौतम बुद्ध, झेन। ये चार संभावनाएं हैं और पांचवीं संभावना है, वह शांडिल्य की स्वयं की है। आगे के सूत्रों में हम उसकी चर्चा करेंगे।

आज इतना ही।

प्रवचन 2

भक्ति: एकमात्र धर्म

प्रश्नसार

शुभ क्या है, अशुभ क्या है?
फिर शुभाशुभ के पार क्या है?

जीवन दुख है, फिर भी आदमी जागता नहीं।
जीवन के नर्क के बावजूद आदमी जीए
किस तरह चले जाता है?

जिसे चाहो वह ठुकराता क्यों है?

ज्ञान, ध्यान और योग के मुकाबले में भक्ति अधिक
परंपराग्रस्त और रूढ़िवादी क्यों?

आपने अपने प्रेमी और प्रेयसी में भी परमात्मा ही देखने को कहा,
यह मेरी समझ में नहीं आया। शरीर के नाते-रिश्ते
व वासना के संबंधों में कहां परमात्मा!

पहला प्रश्नः शुभ क्या है और अशुभ क्या है? फिर शुभाशुभ के पार क्या है?

शुभ का कोई संबंध नीति से नहीं है। नीतियां अनेक हैं, शुभ एक है। हिंदू की नीति एक, मुसलमान की नीति दूसरी, जैन की नीति तीसरी। इसलिए नीतियां तो मान्यताएं हैं। बदलती रहती हैं। उनका कोई शाश्वत मूल्य नहीं है। जो कल अनैतिक था, आज नैतिक हो सकता है। जो आज नैतिक है, कल अनैतिक हो जाएगा।

जैसे, महाभारत युधिष्ठिर को धर्मराज कहता है, और धर्मराज जूआ खेलने में जरा भी संकोच अनुभव नहीं करते। जूआ अनैतिक नहीं था। उन दिनों जूआ नैतिक था। धर्मराज के धर्मराज होने में जूआ खेलने से कोई बाधा नहीं आती। और छोटे-मोटे जूआरी भी न रहे होंगे, सब लगा दिया—सब ही नहीं लगा दिया, पत्नी भी लगा दी। पत्नी कोई संपत्ति नहीं है, पत्नी के पास उतनी ही आत्मा है जितनी पति के पास। किसी को कोई हक नहीं है कि पत्नी को या पति को दांव पर लगा दे। दांव पर लगाने का मतलब है कि पत्नी के बेचने का हक था। इस देश में तो लोग ही कहते हैं—स्त्री-संपत्ति। यह बड़ी अनैतिक बात है आज। आज धर्मराज को धर्मराज कहना बहुत मुश्किल होगा। अगर धर्मराज धर्मराज हैं तो फिर अधर्मराज कौन? यह बात ही बेहूदी है, असंस्कृत है, पर उस दिन स्वीकार थी, कोई अड़चन न थी।

आज जो नैतिक है, कल अनैतिक हो जाएगा। नीति बदलती है। इसलिए नीति के साथ शुभ को एक मत समझ लेना। शुभ शाश्वत है। शुभ न हिंदू का, न मुसलमान का, न जैन का, न ईसाई का, शुभ तो परमात्मा से संबंधित होने का नाम है। शुभ सांसारिक धारणा नहीं है, न सामाजिक धारणा है। शुभ तो अंतस-छंद की

प्रतीति है। शांडिल्य से पूछो, या अष्टावक्र से, या मुझ से, उत्तर यही होगा कि जिस बात से तुम्हारे भीतर के छंद में सहयोग मिले, वह शुभ। और जिस बात से तुम्हारे भीतर के छंद में बाधा पड़े, वह अशुभ। जिससे तुम्हारा अंतर्संगीत बढ़े वह शुभ, जिससे तुम्हारा अंतर्संगीत छिन्न-छिन्न हो, खंडित हो, वह अशुभ। जिससे तुम समाधि के करीब आओ, वह शुभ, और जिससे तुम समाधि से दूर जाओ, वह अशुभ। कसौटी भीतर है, कसौटी बाहर नहीं है।

किसी ने पूछा है—क्या मांसाहार शुभ है, या अशुभ? कसौटी भीतर है। अगर मांसाहार से तुम्हारा ध्यान बढ़ता हो, तो शुभ है। अगर मांसाहार से ध्यान में बाधा पड़ती हो, तो अशुभ है। यह भी पूछा है कि मोहम्मद तो मांसाहार करते थे, क्राइस्ट तो मांसाहार करते थे, फिर भी समाधि को उपलब्ध हुए। तुम क्राइस्ट और मोहम्मद की चिंता मत करो; न महावीर और बुद्ध की चिंता करो; क्योंकि वे बाहर हैं; तुम अपना छंद देखो। कौन जाने महावीर पहुंचे कि नहीं पहुंचे, और कौन जाने मोहम्मद पहुंचे कि नहीं पहुंचे? वह तो मान्यता की बात है। उस के लिए और कोई प्रमाण नहीं है। वह तो विश्वास की बात है। एक बात सुनिश्चित हो सकती है कि तुम जिससे पहुंचो, वह शुभ। तुम अपने भीतर परखो। मांसाहार करते समय तुम्हारी वृत्ति वैसी ही होती है जैसी शाकाहार करते समय? यह देखो। बस वहीं परखो। बाहर से बहाने मत खोजो।

यह बहाना है। मांसाहार करना चाहते होओगे, तो बहाना खोज रहे हो कि मोहम्मद पहुंच गये, तो मैं क्यों नहीं पहुंच जाऊंगा? इस तरह अपने को समझाओ मत, परखो, प्रयोग करो। मैं प्रयोग का पक्षपाती हूं, विश्वास का नहीं। तुम्हारा जीवन ही निर्धारक होगा। तुम अगर पाओ कि मांसाहार करने के बाद चित्त शांत होता है, चित्त में उद्वेग कम हो जाते हैं, क्रोध कम हो जाता है, हिंसा कम हो जाती है, ईर्ष्या कम हो जाती है, अहंकार कम हो जाता है, तो फिक्र छोड़ो महावीरों की, और बुद्धों की, तुम मांसाहार करो। और अगर तुम पाओ कि मांसाहार करने से द्वेष बढ़ता है, घृणा बढ़ती है, वैमनस्य बढ़ता है, जीवन में उत्पन्न होता है गलत, जीवन के संबंध विषाक्त होते हैं, तो फिर फिकर छोड़ो क्राइस्ट की और मोहम्मद की, वे जानें उनका, तुम अपनी फिकर करो। तुम पाओगे कि मांसाहार करने से अड़चन आती है।

और मैं यह नहीं कहता हूं कि मांसाहार करने वाला समाधिस्थ नहीं हो सकता है। समाधिस्थ हो सकता है। लेकिन फिजूल की अड़चनें। ऐसे समझो कि कोई आदमी पहाड़ चढ़ रहा है, गले से एक पत्थर बांधे हुए है। चढ़ सकता है, कोई अड़चन नहीं है, ऐसी अड़चन नहीं है, असंभव नहीं हो गयी है बात, पत्थर बांधकर भी कोई चढ़ सकता है; लेकिन इसलिए तुम पत्थर बांधकर चढ़ो, यह तो कोई तर्क न हुआ। अपना ही बोझ चढ़ा लो तो बहुत है, पत्थर और किसलिए बांधते हो? फिर कोई चढ़ गया होगा, रहा होगा कोई राममूर्ति जैसा कि छाती पर पत्थर तुड़वा लिये होंगे। लेकिन तुम्हारे पास वैसी छाती है? पत्थर शायद ही टूटें, छाती टूट जाएगी।

फिर व्यक्ति-व्यक्ति अलग हैं। किसी के भीतर एक तत्व जाकर आनंद उत्पन्न

करता है, किसी के भीतर विषाद उत्पन्न करता है। व्यक्ति को परख भीतर से लेनी चाहिए। स्वयं के अतिरिक्त कहीं औरं कोई कसौटी नहीं है।

तुम पूछते हो—शुभ क्या है? शुभ, तुम्हारे छंद में बढ़ती जिससे हो। वही खाओ, वही पीओ, वही उठो, वही बोलो, वही चलो, जिससे तुम्हारा भीतर का छंद बढ़े। जिससे भीतर की वीणा ठीक से बजे। जिससे तुम्हारे जीवन में एक उल्हास, एक हल्कापन, जिससे तुम्हें पंख लगें और तुम उड़ सको। अष्टावक्र का शरीर आठ जगह से टेढ़ा था—इसलिए उनका नाम अष्टावक्र—तुम यह तो नहीं पूछते कि मैं भी अपने शरीर को आठ जगह से टेढ़ा करूं, क्योंकि अष्टावक्र तो पहुंच गये आठ जगह से टेढ़े थे—ऊंट जैसे रहे होंगे—इस कारण तुम अपने शरीर को आठ जगह से टेढ़ा तो न करोगे! और मैं यह नहीं कहता हूं कि अष्टावक्र नहीं पहुंचे। जरूर पहुंचे। मगर यह फिजूल झंझट किसलिए लेनी! भले-चंगे पहुंच सकते हो, तो आठ जगह से शरीर को तिरछा क्यों करना? जहां सुगमता से पहुंचा जा सके, वहां व्यर्थ की बाधाएं क्यों खड़ी करना? शराब पीने वाले भी पहुंच जाते हैं। इससे शराब पीने मत लग जाना। शराब पीने वाला पहुंचता है—शराब पीने के कारण नहीं, शराब पीने के बावजूद। मांसाहारी भी पहुंचता है—मांसाहार के कारण नहीं, मांसाहार के बावजूद। अष्टावक्र पहुंचते हैं, आठ जगह से टेढ़े होने के कारण नहीं, आठ जगह से टेढ़े होने के बावजूद। आठ जगह से टेढ़े होने के कारण तो हजार तरह की अड़चनें आती ही हैं। तुम सौभाग्यशाली हो अगर उन अड़चनों से बच जाओ। और फिर मैं दोहरा दूं कि मैं यह नहीं कह रहा हूं कि जिसने मांसाहार किया वह नहीं पहुंचा। नहीं तो राम भी नहीं पहुंचेंगे—क्षत्रिय घर में पैदा हुए थे। और रामकृष्ण भी नहीं पहुंचेंगे, क्योंकि बंगाली घर में मछली तो चलेगी! बिना मछली के कहीं बंगाली का भोजन होता है? फिर तो बहुत कम लोग पहुंचेंगे, सारी पृथ्वी तो मांसाहारियों से भरी है। लेकिन तुम सौभाग्यशाली हो अगर शाकाहारी होने की सुविधा हो। क्योंकि शाकाहार तुम्हारी देह को निर्मल रखेगा, मन को ताजा और स्वच्छ रखेगा। शाकाहार तुम्हें हल्का-फुल्का रखेगा। तुम भारी न हो जाओगे।

तुमने देखा, शाकाहारी पशु-पक्षी दिनभर भोजन करते हैं। मांसाहारी सिंह एक ही बार चौबीस घंटे में। क्यों? मांसाहार इतना भारी है कि चौबीस घंटे पचाने में लग जाते हैं। बंदर बैठा है वृक्ष पर वह शाकाहारी है, वह दिनभर चलाते ही रहता है, जो मिल जाए। क्यों? शाकाहार हल्का है। पत्थर की तरह नहीं पड़ जाता है। और देह जब भी भारी होगी, तब आकाश में उड़ना कठिन होगा। देह जब भी भारी होगी, तब ध्यान की ऊंचाइयां छूना कठिन होगा—असंभव नहीं कह रहा हूं, कठिन।

तुमने देखा नहीं, जब तुम खूब भोजन कर लेते हो तो नींद आने लगती है। उससे थोड़ा सा समझो। जब बहुत भोजन कर लिया तो नींद क्यों आती है? जाग्रत रहना कठिन हो जाता है। शरीर इतना भारी हो गया कि सोना चाहता है। बहुत भोजन कर लेने के बाद ध्यान करने नहीं बैठ सकोगे। ध्यान करोगे, झपकी खाओगे, नींद आ जाएगी। इसलिए तो लोगो ने उपवास की प्रक्रिया खोजी। हल्के पेट, खाली पेट जैसा

ध्यान लग सकता है, वैसा भरे पेट नहीं लग सकता। तुमने भी देखा है, तुमने सोचा नहीं है जीवन के बाबत, जिस दिन बिना भोजन किये रात सोओ, तुम्हें पता चल जाएगा, नींद नहीं आती; नींद मुश्किल हो जाती है। नींद के लिए भोजन जरूरी है। ध्यान तो नींद से विपरीत दशा है। ध्यान जागरण की दशा है। तो मैं तुम से यह नहीं कहता कि तुम भूखे रहो, क्योंकि ज्यादा दिन भूखे रहोगे तो घातक हो जाएगा। मैं तुम से यह भी नहीं कहता कि तुम बहुत भारी भोजन करो। मैं तुम से यही कहता हूं—सम्यक आहार। इतना करो, जिससे शरीर आनंद से चले, नाचता हुआ चले; न ज्यादा, न कम। और ध्यान रखो, क्योंकि तुम जो भी कर रहे हो उसके परिणाम हैं।

एक आदमी किसी पशु की हत्या करके भोजन कर रहा है, यह भोजन बहुत महंगा हो गया। पशु की हत्या करने में इसे कठोर तो हो ही जाना पड़ेगा। फिर चाहे कोई और इसके लिए करे, इसे पता तो है कि मेरे लिए की जा रही है। एक प्राण नष्ट किया जा रहा है, एक देह खंडित की जा रही है। तुम कर पा रहे हो, सिर्फ भोजन के लिए, और भोजन जब कि और ढंग से भी हो सकता था, अपरिहार्य नहीं थी यह हत्या, यह बचायी जा सकती थी, तो तुम कठोर हो रहे हो। अब इस कठोर हृदय में करुणा कैसे पैदा होगी? यह ऐसा ही हो गया कि झरने के मार्ग में एक चट्टान रख दी। हां, कभी-कभी झरना चट्टान को तोड़कर भी बह आता है—ऐसा ही मोहम्मद में हुआ होगा, झरना चट्टान को तोड़कर बह आया। लेकिन सदा ऐसा नहीं होगा। मोहम्मद का झरना बड़ा रहा होगा। छोटी-मोटी चट्टान की परवाह नहीं की। अब कौन जाने तुम्हारा झरना कितना बड़ा है? हो सकता है छोटा-मोटा झरना हो, पत्थर रोक ही दे सदा को। झरना बंद ही रह जाए, बहे न, सागर तक पहुंचे न, तुम्हारा जीवन व्यर्थ हो जाए।

सदा अपने भीतर जांचो, परखो, शुभ क्या है जिससे तुम्हारा जीवन-छंद सधे, जीवन-वीणा से स्वर उठें। जितने संगीतपूर्ण हो सके, तुम्हारी श्वास-प्रश्वास जितनी संगीत से भर सके, उतना शुभ। शास्त्रों से मत तौलना, अपने भीतर के संगीत से परखना। और एक बार तुम्हें यह कसौटी हाथ लग जाए, तो जल्दी ही तुम अनुभव करने लगोगे कि जीवन में क्रांति होनी शुरू हो गयी। क्योंकि जानकर कौन अपने पैर पर कुल्हाड़ी मारता है? जानकर कोई नहीं मारता। अनजाने चोट लग जाए, एक बात।

तुमने पूछा—और अशुभ क्या है? अशुभ, शुभ से जो विपरीत है, जिससे तुम्हारा छंद भंग होता है, जिससे तुम्हारे भीतर का रस छिन्न-भिन्न होता है, जिससे तुम्हारे भीतर की वीणा के तार टूट जाते हैं, वही अशुभ है। तुम देखो, किसी से झूठ बोले, झूठ बोलते ही तुम्हारे भीतर के तार संगीत पैदा नहीं करते। झूठ बोलो और तुम देखो, झूठ बोलते ही तुम सिकुड़ जाते हो; भयभीत हो जाते हो; डर जाते हो—पकड़े तो नहीं जाओगे? आज नहीं कल झूठ किसी की पकड़ में तो न आ जाएगा? फिर एक झूठ बोलो तो उस झूठ को बचाने के लिए हजार झूठ बोलने पड़ते हैं। फिर पकड़े जाने की संभावना भी बढ़ती जाती है। जितनी पकड़े जाने की संभावना बढ़ती है, उतना भय बढ़ता है। जितना भय बढ़ता है, उतना झूठ बढ़ता है। जितना झूठ बढ़ता है, और पकड़े जाने की संभावना बढ़ती है। तुम फंस गये एक जाल में। अपने ही हाथ से जाल

बुना, मकड़ी खुद ही फंस गयी अपने जाल में। फिर निकलने का रास्ता नहीं सूझता। क्योंकि इतने झूठ बोल चुके हो, अब अगर सच बोले तो सारा जीवन अस्त-व्यस्त हो जाएगा। एक और सही, एक और सही।

एक झूठ बोलो, फिर झूठ की बड़ी संताने हैं—झूठ संतान-नियमन नहीं मानता। सत्य की संतान नहीं होती। सत्य ब्रह्मचारी है। एक सत्य बोलो, पूरा हो गया—अपने में पूरा होता है, अब किसी और सहारे की जरूरत नहीं होती। और सत्य बोलकर निश्चिंत सो सकते हो, चिंता नहीं पकड़ती। सत्य की सुरक्षा नहीं करनी पड़ती। सत्य के लिए आयोजन नहीं करना पड़ता बचाने का। सत्य अपना प्रमाण है। सत्य के साथ हृदय निर्भार होता है। सत्य के साथ मन मौज में होता है। सत्य के साथ अभय होता है। और जहां अभय है, और जहां मन मुक्त है, वहां संगीत है, वहां छंद है। उसी छंद में शुभ है। अशुभ का अर्थ हुआ, ऐसा कुछ मत करो जिससे तुम सिकुड़ते हो। ऐसा कुछ मत करो जिससे तुम्हें अपने को छिपाना पड़ता है। ऐसा कुछ मत करो जिसके कारण तुम नग्न नहीं हो सकते। ऐसा कुछ मत करो जिसके कारण तुम्हें अवरोध खड़े करने पड़े। बस इतना ही ध्यान रहे।

मैं तुम्हें मूल कुंजी की बात कर रहा हूं, विस्तार की बात नहीं कर रहा हूं। मैं तुम्हें कोई गिना नहीं रहा हूं कि यह-यह बातें शुभ हैं और यह-यह बातें अशुभ हैं। क्योंकि गिनती हो नहीं सकती, जीवन विराट है बहुत बड़ा है जीवन। दस आज्ञाएं हैं यहूदियों की। मगर ऐसा मौका आ जाता है, ग्यारहवीं की जरूरत पड़ती है। तब क्या करोगे, फिर तो तुम्हीं निर्णय करोगे! दस आज्ञाओं में कहीं दुनिया समाप्त होती है? यहां रोज प्रतिपल नयी आज्ञा की जरूरत पड़ती है। इसलिए बजाय इसके कि मैं तुम्हें फेहरिस्त दूं कि यह करना शुभ है और यह करना शुभ है और यह करना शुभ नहीं है, मैं तुम्हें सिर्फ रोशनी दे रहा हूं कि यह दीया सम्हालो। इस दीये में तुम्हें जो मार्ग दिखायी पड़े, वह शुभ है, और जहां दीवाल दिखायी पड़े वहां से मत जाना—जाओगे ही क्यों? वहां सिर टूटेगा।

सदगुरुओं ने सिद्धांत नहीं दिये हैं, सदगुरुओं ने दृष्टि दी है। सिद्धांत थोड़ी दूर काम पड़ सकते हैं। ऐसा समझो एक अंधा आदमी तुम से पूछता है कि मुझे स्टेशन जाना है, कैसे जाऊं? तुम उसे सब समझा देते हो कि पहले बाएं रास्ते से चलना मील भर, फिर दाएं मुंड़ जाना, फिर मील भर चलना, फिर बाएं मुड़ जाना; तुम उसे सब समझा देते हो; फिर भी पक्का नहीं है कि अंधा पहुंच पाएगा—अंधा आखिर अंधा है। कब मील पूरा हुआ, कैसे जानेगा? आधा मील पर ही मुड़ जाए, कि डेढ़ मील तक चलता चला जाए! सदगुरु अंधे को सूचनाएं नहीं देते, सदगुरु कहते हैं—यह अंजन लो, आंख पर आंज लो, इससे तुम्हें दिखायी पड़ेगा। फिर तुम खुद ही जानोगे, राह के किनारे पत्थर लगे हैं वह इशारा बताते हैं कि स्टेशन कितनी दूर, तुम खुद ही पहुंच जाओगे। दृष्टि चाहिए।

मैं तुमसे दृष्टि की बात कर रहा हूं। तुम इस तरह से अपने जीवन की परीक्षा में लग जाओ—जो भी करते हो, इतनी ही बात सोचकर करो कि इससे मेरा संगीत

गहन होगा? बस। अगर संगीत गहन होता है, फिकर छोड़ो दुनिया के शास्त्रों की और फिकर छोड़ो दुनिया के सिद्धांतों की, उनका कोई मूल्य नहीं है; वे तुम्हारे लिए बनाये भी नहीं गये, जिनके लिए बनाये गये थे वे लोग अब हैं भी नहीं।

अब कोई वेद में जाकर अपना सिद्धांत खोजता है। वेद पांच हजार साल पहले लिखे गये—और अगर लोकमान्य तिलक की मानें तो पनचानबे हजार साल पहले लिखे गये। अगर लोकमान्य तिलक सही हैं, तो वेद उतने ही व्यर्थ हो गये, ज्यादा व्यर्थ हो गये, क्योंकि पनचानबे हजार साल पहले जिस आदमी से कहे गये थे वह आदमी अब नहीं है। पांच हजार साल भी काफी समय हो गया, जिंदगी बहुत बदल गयी है। जिंदगी ने नये रूप ले लिये हैं, नये मोड़ ले लिये हैं। जिन मोड़ों का कोई पता नहीं था वेद लिखने वालों को—हो भी नहीं सकता था—इन नये मोड़ों पर नयी घटनाएं घट गयी हैं।

अब जैसे समझो, जैन-मुनि वाहन में नहीं चलता। यह बात महावीर के समय में समझ में आती थी, क्योंकि वाहन का मतलब था घोड़े जुते होंगे, बैल जुते होंगे—बैलगाड़ी होगी, कि घोड़ागाड़ी होगी, और तो कोई वाहन था नहीं। बैलों पर कोड़े पड़ेंगे। महावीर ने कहा—यह हिंसा है। अपने पैर से जितना बन सके, चल लो। यह ज्यादती है। यह बैल पर सवार होना, यह घोड़े पर सवार होना ज्यादती है। यह तुम इन निरीह पशुओं के साथ अन्याय कर रहे हो। यह बात समझ में आती है। इससे भीतर का छंद टूटेगा।

जब भी तुम किसी को गुलाम बनाओगे, वह चाहे पशु हो, चाहे पक्षी हो, चाहे मनुष्य हो, जब भी तुम किसी को गुलाम बनाओगे, तुमने अपनी ही गुलामी का जाल रचा। तुमने जब किसी के लिए गड्ढा खोदा, गड्ढा तुम्हारे लिए खुदा। आखिर बैल का भी तो प्राण है, आत्मा है, संवेदना है! तुम मजे से बैठे हो, तुम को बैल ढो रहा है—जैसे बैल सिर्फ तुम्हें ढोने के लिए पैदा हुआ है! अगर बैलों की दुनिया होती, तो तुम बैलों को ढोते तुम जुते होते।

यह तो बात ठीक थी, लेकिन अब जैन-मुनि कार में भी नहीं बैठ सकता—क्योंकि वाहन का इनकार है। अब महावीर को कार का कुछ पता नहीं था कि एक दिन ऐसी घड़ी आ जाएगी कि न घोड़ा जुतेगा, न बैल जुतेगा—हार्स तो चला जाएगा, हार्स पावर आएगा—इसका कुछ पता नहीं था। अब यह जैन-मुनि अभी भी पैदल चल रहा है। अब यह बात जरा मूढ़ता की हो गयी। अब कार में चलने में कोई अड़चन नहीं, कोई हिंसा नहीं। लेकिन घबड़ाहट लगती है उसे, उसके शास्त्र में लिखा है। शास्त्र के विपरीत कैसे जाए?

शास्त्र सदा पैर की जंजीर हो जाते हैं। समय बीता कि पैर की जंजीर हुए। फिर उन में तुम देखोगे तो उलझोगे। और दो ही उपाय बचते हैं फिर। एक उपाय तो बचता है, उनकी मानकर चलो और मूढ़ रहो। और दूसरा उपाय यह बचता है कि उन को ऊपर-ऊपर मानते रहो और भीतर-भीतर मत मानो, तब पाखंडी हो जाते हो। दोनों हालत में हानि होती है। अब तो आकाश में उड़ता है हवाई जहाज, पैदल चलकर

जितनी हिंसा होती है उतनी हिंसा भी नहीं होती। पैदल भी चलोगे तो पैर तो जमीन पर पड़ता है न, कीड़े-मकोड़े, छोटे-मोटे जीव-जंतु तो दबते ही हैं! महावीर ने उसकी भी चिंता की है—सूखी जमीन में चलना, गीली जमीन में मत चलना; वर्षा में मत चलना; इसलिए वर्षा में जैन-मुनि नहीं चलते। लेकिन हवाई जहाज में उड़ो। जमीन से कोई संबंध ही न रहा। हेलिकाप्टर में जाओ। न पैर पड़ेगा जमीन पर, न कोई कीड़ा मरेगा। फिर वर्षा हो कि गर्मी, कोई अंतर नहीं पड़ता। लेकिन जैन-मुनि अटका है, क्योंकि वाहन है। वह शब्द जान ले रहा है—यह भी वाहन है, और वाहन का विरोध है! मैंने सिर्फ उदाहरण के लिए तुम से कहा।

शास्त्र सदा रुकावट का कारण हो जाते हैं। और निर्बुद्धि के लिए तो बहुत ज्यादा रुकावट के कारण हो जाते हैं। गले की फांसी लग जाती है, जीना असंभव हो जाता है। महावीर ने कहा—रात भोजन मत करना। ठीक कहा, बिजली का उन्हें कुछ पता नहीं था। रात अभी भी तुम जाओ इस देश को गांवों में—ठेठ देहातों में जहां बिजली नहीं है, जहां केरोसिन का तेल भी मिलना मुश्किल है; इतनी सामर्थ्य भी नहीं है कि केरोसिन का तेल खरीदें—लोग अंधेरे में भोजन करते हैं। महावीर ने जब कहा तो सारे लोग अंधेरे में भोजन कर रहे होंगे। अंधेरे में भोजन करना जरूर खतरनाक है। खुद के लिए भी, कीड़े-मकोड़ों के लिए भी; पतिंगों के लिए भी, मच्छरों के लिए भी, और हिंसा हो जाएगी। हिंसा भी होगी और विषाक्त भी हो सकता है भोजन। लेकिन आज तो दिन की रोशनी रात में भी उपलब्ध है। दिन से भी ज्यादा रोशनी चाहो तो उतनी उपलब्ध हो सकती है। अब यह बात व्यर्थ हो गयी। मगर रात्रि भोजन का निषेध है, इसलिए रात्रि भोजन नहीं किया जा सकता।

तुम अपने छंद से परखो। आंख खोलकर देखो, अपने जीवन की जांच करते रहो, जहां तुम्हें लगे कि यह बात मेरे आनंद से जुड़ती है और इससे मेरा आनंद विकासमान होगा, वही शुभ। और जिससे तुम्हारा आनंद खंडित होता है, वही अशुभ।

फिर पूछा है—शुभाशुभ के पार क्या है? छंद बंधे तो शुभ, छंद टूटे तो अशुभ, और जब छंद ऐसा हो जाए कि टूटने की संभावना ही न रहे, तुम ही छंद हो जाओ, छंद तुम्हारी नियति हो जाए, तुम्हारा स्वभाव हो जाए, तब शुभाशुभ के पार। फिर चिंता की भी जरूरत नहीं कि क्या करूं, क्या न करूं? फिर उस छंद से जो होता है, वह सब ठीक ही होता है।

साधु और संत की परिभाषा में यही भेद है। असाधु वह, जो अशुभ करता है। साधु वह, जो शुभ करता है। संत वह, जिससे शुभ होता है, अशुभ नहीं होता—करने के पार चले गये। करने में तो सोचना पड़ता है—ऐसा करूं या न करूं? निर्णय लेना पड़ता है, विकल्प होता है। विकल्प में कभी भूल भी हो सकती है। विकल्प में कभी चूक भी हो सकती है। आखिर विचार से ही किया जा रहा है, विचार में भ्रांतियां हैं। संत की दशा का अर्थ होता है—अब न शुभ की चिंता है, न अशुभ की चिंता है। छंद ऐसा बंधा है कि अब टूट ही नहीं सकता। तुम संत को नर्क में भी फेंक दो तो भी वह स्वर्ग में होगा। छंद ऐसा बंधा है कि अब नर्क भी उसे तोड़

नहीं सकता। तुम संत को बाजार में बिठा दो, तो भी उसके ध्यान में भंग नहीं है। छंद ऐसा बंधा है, अब हिमालय की गुफा पर ही बैठने की कोई जरूरत नहीं है। अब डर ही नहीं रहा। अब छंद से भेद नहीं रहा कि मैं अलग और छंद अलग, सम्हाले रहूं। अब संगीतज्ञ अलग नहीं है, अब संगीतज्ञ अपना संगीत हो गया। वह आखिरी दशा है। उसी को परमहंस कहा है। उसी को शांडिल्य ने भक्ति कहा है, परम भक्ति, जहां भक्त और भगवान एक हो जाते हैं—पराभक्ति जहां भक्त और भगवान एक हो गए, फिर कौन सी चिंता कि ऐसा करूं कि वैसा करूं करने वाला रहा ही नहीं, अब भगवान करता है। अब तुम तो मिट ही गये। अब तो भूल हो ही नहीं सकती, क्योंकि बुनियादी भूल मिट गयी—मैं होने की भूल ही मिट गयी। उस मैं से और-और भूलें पैदा होती थीं। अब चिंता की कोई जरूरत नहीं, अब निश्चिंत होकर जी सकते हो। इसलिए उस परमदशा में संत बालवत हो जाता है। छोटे बच्चे जैसा हो जाता है—न कुछ शुभ है, न कुछ अशुभ है। उसे पता ही नहीं कि क्या शुभ है, क्या अशुभ है।

दूसरा प्रश्नः जीवन दुख है, फिर भी आदमी जागता नहीं। जीवन के नर्क के बावजूद भी आदमी जीए किस तरह चले जाता है?

जरूर विचार उठता है। इतना दुख है! बुद्धपुरुष चिल्ला-चिल्लाकर कहते हैं, मकानों की मुंडेर पर चढ़कर कहते हैं कि दुख है, जीवन दुख है, जागो। लोग बुद्धों की सुन लेते, उनके चरणों पर दो फूल भी चढ़ा देते कि महाराज, ठीक ही कहते होओगे, मगर अभी मैं जल्दी में हूं, दुकान जाना है; अभी मैं जल्दी में हूं, चुनाव लड़ना है; अभी मैं जल्दी में हूं, विवाह करना है। इन सबसे निपट लूं, फिर कभी आऊंगा निश्चिंत होकर, जरूर आऊंगा, चरणों में बैठूंगा, सुनूंगा, आप कहते हैं तो ठीक ही कहते होंगे। लेकिन तुम्हारी आंखें कहती हैं कि बुद्ध ठीक नहीं कह रहे हैं। तुम्हारे प्राण कहते हैं कि बुद्ध ठीक नहीं कह रहे हैं। तुम्हें अभी जीवन में आशा है।

तुम सोचते हो कि हां, माना कि अब तक जीवन में दुख पाए, लेकिन कल भी पाऊंगा, ऐसी क्या अनिवार्यता है! कल चीजें बदल भी सकती हैं। आज तक हारा, कल जीत भी सकता हूं। आज तक नहीं मिला, कल मिल भी सकता है। नहीं मिला; इसका कारण यही होगा कि मैंने ठीक से प्रयास नहीं किया। नहीं मिला, इसका कारण यही होगा कि मैंने अपने सारे जीवन को दांव पर नहीं लगाया। नहीं मिला तो इसीलिए कि दूसरे ज्यादा चालबाज थे, पा गये, मैं सीधा-साधा आदमी था, खड़ा रह गया। कल जुगत बिठाऊंगा, यत्न करूंगा, कल सब दांव पर लगाऊंगा। कल की आशा चलाये जाती है। और कल कभी आता नहीं। और आशा मिटती नहीं।

दुख तो है, सभी के अनुभव में है। लेकिन अनुभव पर आशा की विजय होती है। अनुभव तो अतीत का है, आशा भविष्य की है, यह खूबी है। अनुभव अतीत का है, अतीत तो हो गया, ठीक; यह कैसे मानें कि हमारा भविष्य हमारे अतीत की ही पुनरुक्ति होगा? मन मानने को नहीं होता कि हमारा भविष्य हमारी अतीत की ही

पुनरुक्ति होगा। और हम ऐसी कहानियां भी सुनते हैं और ऐसी कहानियां हम बच्चों को कहते भी हैं।

गजनी का मोहम्मद भारत आया। वह सत्रह बार हार गया, सत्रहवीं बार हारकर जब वह भाग गया था और एक गुफा में छिपा बैठा था, उस ने देखा एक मकड़ी जाला बुन रही है। बैठा था, कुछ और काम भी न था तो देखता रहा। संयोग की बात कि सत्रह बार धागा टूट गया और मकड़ी गिर गयी और अठारहवीं बार चढ़ी और धागा सम्हल गया और जाला बन गया। बैठे-बैठे गजनी को लगा कि मैं भी सत्रह बार हारा, कौन जाने अठारहवीं बार जीत जाऊं? मकड़ी नहीं हारी, मैं क्यों हार गया हूं? उठ आया, बाहर निकल आया, फिर जूझ पड़ा।

हम बच्चों को समझाते हैं कि अठारहवीं बार गजनी जीता; तो घबड़ाओ मत, उत्साह मत खोओ, लड़े जाओ। लेकिन हम कभी यह नहीं पूछते कि गजनी जीतकर भी क्या जीता? जो हारकर हालत थी, क्या जीतकर बदली? क्या गजनी सुखी हुआ? क्या गजनी ने आनंद जाना? क्या गजनी ने आत्मा पहचानी? क्या गजनी को समाधि का सुख मिला? मिला क्या? हारकर जैसा मरता और धूल में गिरता, वैसा ही जीतकर भी मरा और धूल में गिरा; तो जीत जीत थी कहां? जीत में जीत कहां है?

हम उदाहरण देते हैं लोगों को, क्योंकि हम सभी को महत्वाकांक्षा में चलाए रखना चाहते हैं। स्कूल में शिक्षक समझाते हैं—हारो मत, आज हार गये, कल जीतोगे। मगर कोई यह नहीं पूछता कि जीत जो जाते हैं, उन में जीतता क्या है? हारों में और जीतों में भेद क्या है? दोनों एक से उदास और रिक्त और खाली। दोनों के भीतर की वीणा खंडित। दोनों के प्राण सूने, दोनों के प्राण में गंदगी। और अक्सर ऐसा हो जाता है कि जीते आदमी की हार हारे आदमी से ज्यादा होती है—इसे थोड़ा समझना—क्योंकि हारे आदमी को अभी लगता है कि शायद जीत जाऊंगा, जीते आदमी को तो पक्का पता चल जाता है कि जीतकर भी जीत होती नहीं। इसीलिए तो बुद्ध और महावीर, राजपुत्र, महलों को छोड़कर, साम्राज्यों को छोड़कर चले गये। क्योंकि देखा कि महलों में भी महल नहीं है, और धन में भी धन नहीं है, और यश में भी कुछ मिलता नहीं, सब कोरी बातचीत है, सब अफवाहें हैं। कितने लोग तुम्हें जानते हैं, इससे क्या होगा? दस लोग जानते हैं, दस हजार लोग जानते हैं, कि दस लाख, कि दस करोड़, इससे क्या होगा? तुम्हारे जीवन में इससे क्या रूपांतरण होगा? तुम कैसे बदल जाओगे इस बात से कि बहुत लोग तुम्हें जानते हैं? यश से भी क्या होता है? भीतर तो आदमी दरिद्र का दरिद्र! धन मिले तो दरिद्र, यश मिले तो दरिद्र, पद मिले तो दरिद्र। तुम जरा पद वालों की आंख में झांककर तो देखो, तुम जरा धनी की आत्मा को टटोलकर तो देखो, तुम जिनको विजेता कहते हो जरा उनकी हार को तो देखो कि किस बुरी तरह हार गये हैं! लेकिन आशा है।

एक दो नहीं छब्बीस दिये
एक-एक करके जलाये मैंने

इक दिया नाम का आंजादी के
उसने जलते हुए ओठों से कहा
चाहे जिस मुल्क से गेहूं मांगो
हाथ फैलाने की आजादी

एक दिया नाम का खुशहाली के
उसके जलते ही यह मालूम हुआ
कितनी बदहाली है
पेट खाली है मेरा, जेब मेरी खाली है

एक दिया नाम का यकजदी के
रोशनी उसकी जहां तक पहुंची
कौम को लड़ते-झगड़ते देखा
मां के आंचल में हैं जितने पैबंद
सबको एक साथ उघड़ते देखा

दूर से बीबी ने झल्ला कर कहा
तेल महंगा भी है, मिलता भी नहीं
क्यों दीए इतने जला रखे हैं
अपने घर में न झरोखा न मुंडेर
ताक सपनों के सजा रखे हैं
आया गुस्से का एक ऐसा झोंका
बुझ गये सारे दीये
हां मगर एक दिया नाम है जिसका उम्मीद
झिलमिलाता ही चला जाता है

उम्मीद, आशा, कल्पना, आने वाला कल बीते कल से भिन्न होगा; जो आज तक नहीं हुआ, कल होगा; ऐसी आशा को संजोये आदमी चलता जाता है। इसलिए दुख भी हैं और फिर भी आदमी जागता नहीं। एक दिया नाम जिसका उम्मीद। जितने जल्दी यह दीया बुझ जाए, उतना अच्छा। जितने जल्दी तुम आशा के पार हो जाओ, उतना अच्छा।

मुझ से लोग संन्यास की परिभाषा पूछते हैं, उनसे में कहता हूं—आशा के जो पार हो गया। तुम थोड़ा चौंकोगे, अष्टावक्र ने भी यही परिभाषा की है। कहा है—ज्ञानी वही, जो निराशा से भर गया। निराशा! हम तो इस शब्द से ही डरते हैं। यह शब्द ही हमें घबड़ाता है—निराशा! यह शब्द बड़ा बहुमूल्य है। निर, आशा—जिसकी अब कोई आशा नहीं। जिसने सब देख लिया, सब पहचान लिया, आशा का दीया जिसका बुझ गया। जिसकी आंख खुल गयीं और जिसने देखा कि

यहां रेत ही रेत है, इस रेत से तेल निकाला न जा सकेगा। यहां रेगिस्तान ही रेगिस्तान हैं, यहां कोई मरूद्यान नहीं। और जो दिखते थे मरूद्यान, वे भी मेरी कल्पनाएं थीं। जो ऐसा आशा के पार हो गया।

तुम जिसको निराशा कहते हो, वही मेरी निराशा नहीं है, वही अष्टावक्र की निराशा नहीं है।

फर्क समझ लेना।

तुम्हारा भाषाकोश और अष्टावक्र का भाषाकोश निश्चित ही अलग होने वाला है। तुम निराशा कब कहते हो? जब तुम्हारी कोई आशा टूटती है तब निराशा कहते हो। अष्टावक्र कहते हैं—जब सब आशाओं से मुक्ति हो गयी, तब निराशा। एक आशा टूटी, तुम दूसरी बना लेते हो। इस स्त्री से नहीं मिल सका सुख, तुम तत्क्षण दूसरी स्त्री की तलाश में लग गये। इस धंधे से नहीं मिला लाभ, तुम दूसरा धंधा खोजने लगे। इस गांव में नहीं मिला सुख, तुम दूसरे गांव की तरफ चले। आशा एक तरफ टूटती है, तुम तत्क्षण दूसरी तरफ सजा लेते हो। दिया बुझ नहीं पाता कि तुम दूसरा दिया जला लेते हो—एक दिया जिसका नाम उम्मीद। अष्टावक्र कहते हैं—उस स्थिति को निराशा, जब तुम्हें यह दिखायी पड़ गया कि आशा मात्र व्यर्थ है, आशा मात्र। यह आशा, वह आशा नहीं, आशा मात्र दुराशा है। दुष्पूर है। कभी घटती नहीं सिर्फ भरमाती है। उस क्षण में क्रांति हो जाती है। उस क्षण में तुम्हारे जीवन में एक नयी किरण उतरती है। वही संन्यास है। संसार के पार से कुछ आया।

संसार यानी आशा का फैलाव। संन्यास यानी संसार के आशा के फैलावों में कुछ उतरा पार से, तुम्हें दिखायी पड़ने लगा, तुम्हें चीजें जैसी हैं वैसी समझ में आने लगीं। और यह मत समझ लेना कि जिसको अष्टावक्र निराशा कहते हैं वैसा आदमी निराश होकर बैठ जाता है। जिसकी आशा ही नहीं रही, उसकी निराशा भी क्या रहेगी! वह दोनों से मुक्त हो गया। उदास नहीं हो जाता, अब उदासी का कोई कारण ही नहीं रहा। यहां कोई चीज फलती ही नहीं, फूलती ही नहीं, उदास क्या होना है? यहां अपेक्षा करनी ही व्यर्थ है, तो अपेक्षा के टूटने का कारण भी समाप्त हो गया। ऐसा आदमी न दुखी होता, न सुखी। ऐसा आदमी शांत हो जाता है। ऐसे आदमी के जीवन में शांति का रस बहता है। उस शांति के रस का ही नाम आनंद है।

तुम आनंद से अक्सर सुख समझ लेते हो, वह तुम्हारी भूल है। तुम आनंद में अक्सर सुख आरोपित कर लेते हो, वह भी तुम्हारी आशा है। एक दिया जिसका नाम उम्मीद। आनंद का अर्थ होता है—शांति, परम शांति। न दुख रहा, न सुख रहा, सब तरंगें सुख-दुख की समाप्त हो गयीं, निस्तरंग हो गयी चेतना।

पूछा तुमने—जीवन दुख है। तुम्हें नहीं दिखायी पड़ा है ऐसा अभी। ऐसा तुमने सुना बुद्धों को कहते कि जीवन दुख है, यह तुम्हारी अपनी प्रतीति नहीं, अपना साक्षात्कार नहीं। यह काम नहीं आएगा। यह उधार वचन तुम्हारी छाती में कांटा सा चुभेगा, फूल नहीं बनेगा। उधार वचन कांटे बन जाते हैं, छाती में चुभते हैं, चुभाते हैं, घाव बनाते हैं, लेकिन उनसे जीवन में आनंद की वर्षा नहीं होती। तुमने जाना जीवन

दुख है कि तुमने सुना बुद्धों को कहते? कि तुमने मान लिया कि बुद्ध कहते तो ठीक ही कहते होंगे? क्यों कहेंगे गलत? जानकर कहा है तो ठीक ही कहते होंगे। यह ऐसे ही है जैसे किसीने मान लिया कि आग जलाती है क्योंकि और लोग कहते हैं कि आग जलाती है।

दूसरों का कहा हुआ कि आग जलाती है और अपना जाना हुआ कि आग जलाती है, इसमें तुम्हें भेद दिखता है या नहीं? अपना जाना हुआ क्रांति कर देता है। तब आदमी कहते हैं, दूध का जला छाछ भी फूंक-फूंककर पीने लगता है। खुद जला हो। तुमने जाना कि जीवन दुख है? यह तुम्हारी पहचान? यह तुम्हारी प्रत्यभिज्ञा? यह तुम्हारी अनुभव-संपदा? अगर तुमने जाना, तो आशा गयी। फिर तुम यह न पूछोगे कि आदमी फिर क्यों चला जाता है? और आदमी की क्या पूछते हो, आदमी यानी कौन? अपनी पूछो। किस आदमी की पूछ रहे हो, दूसरों की? यह भ्रांति भी छोड़ो। दूसरों के लिए प्रश्न मत पूछो। दूसरों की दूसरे जानें। तुम्हारी चिंता इतनी ही बहुत कि तुम अपने प्रश्न हल कर लो, अपनी समस्याएं हल कर लो, दूसरों की कहां हल करने बैठोगे! तुम रुको, आदमी को चलने दो।

यह आदमी कौन? इसका न तो नाम, न पता, न ठिकाना, यह तो सिर्फ एक शब्द है—आदमी। तुम्हें आदमी कभी मिला? नहीं आदमी तुम्हें कभी नहीं मिला। आदमी मिलते हैं, आदमी कभी नहीं मिलता। राम मिलते हैं, कृष्ण मिलते हैं, बुद्ध मिलते हैं, हजार तरह के आदमी मिलते हैं, मगर आदमी कभी नहीं मिलता। आदमी तो केवल एक शब्द है, संज्ञामात्र। यह आदमी तो चलता रहेगा, जिसकी तुम बात कर रहे हो। जो जाग जाएंगे, वे चुपचाप इस व्यर्थ के पागलपन से हट जाएंगे। जो जाग गये, वे किनारे उतर गये, उन्होंने पगडंडियां पकड़ लीं और प्रभु तक पहुंच गये। जो सोए हैं, वे इस राजपथ पर—अंधेरे राजपथ पर—भीड़ के साथ भेड़ों की भांति चलते रहेंगे। तुम इनकी चिंता मत करो। और तुम चाहो भी तो भी इन्हें इनके मार्ग से हटा नहीं सकते। और तुम्हें हक भी नहीं है। अगर इन्होंने यही तय किया है कि यही इनका जीवन है, तो ये हकदार हैं कि ये इसीको जीवन मानें और इसी भांति चलें।

तुम हट जाओ। शायद तुम्हें हटते देखकर किसी सोये की नींद टूटे। शायद तुम्हें हटते देखकर, तुम्हारे जीवन में खिलते फूल देखकर, किसी के नासापुटों में सुगंध भर जाए, और कोई खिंचा चला आए, वह बात दूसरी है, मगर तुम दूसरे को हटाने की चेष्टा मत करना। अक्सर ऐसी शुभ चेष्टाओं का ही बड़ा दुष्परिणाम हुआ है। तुम जबर्दस्ती लोगों को खींच लेते हो धर्म की तरफ—वे भागते संसार की तरफ, तुम खींचते धर्म की तरफ। इससे संसार के प्रति उनका विराग पैदा नहीं होता, सिर्फ तुम्हारे धर्म के प्रति खीझ पैदा होती है। बाप जबर्दस्ती बेटे को मंदिर ले जा रहा है। अभी बेटा बाजार भी नहीं पहुंचा, बाजार का दुख भी नहीं झेला और तुम मंदिर ले चले! अभी बेटा बीमार भी नहीं हुआ और तुम चिकित्सक के घर तक ले चले! दवा इस को जंचेगी, रुचेगी? तुमने उपचार शुरू कर दिया!

धर्म तो उपचार है। जब संसार व्यर्थ दिखायी पड़ता है, तब धर्म में सार्थकता

दिखायी पड़ती है। अब छोटा सा बच्चा घर में पैदा हुआ, तुम चले मंदिर, मस्जिद, गिरजा लेकर। बप्तिस्मा करवा लाएं, कि जनेऊ पहना दें, कि क्या न करवा दें, कि राम-नाम इसके कान में डलवा दें, कि कान फुंकवा दें—हजार तरह की मूढ़ताएं। तुम सिर्फ इस बच्चे को सदा के लिए धर्म से तोड़े दे रहे हो।

मेरे पास न मालूम कितने लोगों ने आकर यह कहा है—ईसाइयों ने मुझ से आकर कहा है—कि चर्च में हमारे मन में ईसा के प्रति नफरत भरदी । क्यूं? क्योंकि बचपन से जबर्दस्ती थोपा गया, आग्रहपूर्वक थोपा गया।

मुल्ला नसरुद्दीन अपने बेटे से बोला कि तू जा, यह मटकी ले जा और कुएं से पानी भर ला। और इसके पहले कि जाए, जरा मेरे पास आ। और जब वह उसके पास आया तो उसने एक जोर का तमाचा उस लड़के को मारा। एक मेहमान घर में बैठे थे, वह तो कुछ समझा ही नहीं यह राज! उन्होंने कहा—भई, यह हद हो गयी! अभी बेटे ने कोई कसूर भी नहीं किया, मैं घंटेभर से यहां बैठा हूं, यह चांटा किस बात का? मुल्ला ने कहा, यह चांटा इस बात का कि घड़ा मत फोड़ना। मगर उसने कहा—अभी घड़ा इसने फोड़ा नहीं! मुल्ला ने कहा, फिर फोड़ ही दे फिर फायदा क्या? मगर अगर बेटे में थोड़े भी प्राण होंगे, तो जरूर फोड़कर आएगा। फोड़ना ही पड़ेगा। अगर बेटा बिलकुल गोबरगणेश हो तो बात अलग। नहीं तो बेटा निश्चित जाकर इस घड़े को फोड़ देगा कुएं पर। यह तो हद हो गयी, अभी घड़ा फोड़ा नहीं और सजा मिल गयी! अभी बीमारी न थी और दवा मिल गयी।

तुम्हारे मंदिर-मस्जिद तुम्हारे मन में धर्म के प्रति आदर पैदा नहीं कर पाते, अनादर पैदा करवाते हैं। मंदिर और मस्जिद तो किसी को खोजते हुए जाना पड़ता है—बड़ी लालसा से, बड़ी अभीप्सा से। मंदिर और मस्जिद को तो टटोलना पड़ता है, सरक-सरककर। जीवन के अनेक-अनेक कष्ट और कांटों को झेलकर मंदिर का फूल दिखायी पड़ता है, नहीं तो नहीं दिखायी पड़ता। जीवन के अंधेरे में खूब भोगकर भुक्तभोगी को ही मंदिर का दीया जलता हुआ दिखायी पड़ता है। जिसने जीवन का अंधकार नहीं देखा, उसको तुम मंदिर के दीये की तरफ ले चले? जिसने अंधकार नहीं जाना, उसे प्रकाश का अनुभव कैसे होगा?

तो मैं तुम से कहना चाहता हूं कि तुम्हें अगर जीवन में दुख दिखायी पड़ गया है; तो तुम फिक्र छोड़ो औरों की, तुम उतरो, तुम डुबकी लो, तुम आशा का जाल तोड़ो, तुम जागो। बस वही एक दीया तुम्हें बुझाना होगा। और उस एक दीये के बुझाते ही सूरज निकल आएगा। 'एक दिया नाम जिसका उम्मीद'। उस एक दीये को तुम बुझा दो और अचानक तुम पाओगे सुबह हो गयी। इधर आशा का दीया बुझा, उधर आत्मा का सूरज निकला।

तीसरा प्रश्न: भगवान, जिसे चाहो वह ठुकराता क्यों है?

क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति को आत्मरक्षा का अधिकार है। तुम्हारी चाहना, दूसरा

भागता होगा, कि बचो भाई, यह आदमी आया! क्योंकि जहां-जहां लोगों ने चाहत देखी है, वहीं-वहीं बंधन पाए। और जहां-जहां किसी के प्रेम में पड़े, वहीं फांसी लगी।

तुम्हारा प्रेम है क्या? बस वैसा ही है जैसा मछलीमार मछली पकड़ने के लिए कांटे पर आटा लगाता है। मछली फंस जाती है, आटे के कारण। मछलीमार का प्रयोजन मछली को आटा खिलाना नहीं है; मछलीमार का प्रयोजन—आटा खाने में कांटा फंस जाए उसके मुंह में, बस। आटा तो तरकीब है। तुम पूछते हो—जिसे चाहो वह ठुकराता क्यों है; तुम्हारे चाहने में कांटा है। तुम सोचते हो—आटा ही आटा है। लेकिन तुम जरा गौर से विचारो, तुमने जिसको चाहा उसका जीवन दुखमय बना दिया या नहीं? जिसने तुम्हें चाहा, उसने तुम्हारा जीवन दुखमय बना दिया या नहीं? इस प्रेम के नाम पर जो चलता है, इसमें फूल तो कभी-कभार खिलते हैं, कांटे ही कांटे पलते हैं। कभी सौ में एकाध मौके पर कभी फूल की झलक मिली हो तो मिली हो, निन्यानबे मौकों पर तो कांटा चुभा और बुरी तरह चुभा और नासूर बना गया, और घाव छोड़ गया। तुम्हारी चाहत शुद्ध नहीं है, इसलिए लोग बचना चाहते हैं।

तुम यह मत समझो कि लोग कुछ गलत हैं। प्रश्न पूछने वाले की मर्जी यही है कि लोग कुछ गलत हैं, कि मैं तो इतना प्रेम का थाल सजाकर आता हूं और लोग चले, एकदम भागे—पुलिस को बुलाने लगते हैं—और मैं तो सिर्फ प्रेम का थाल सजाकर आया था। मैं तो कहता था, आरती उतारूंगा आपकी। आप चले क्यों? तुम्हारे प्रेम के थाल में जहर है। हर वासना में जहर है। तुम अपनी वासना को प्रार्थना बनाओ, फिर कोई नहीं भागेगा। फिर लोग तुम्हें खोजते आएंगे; तुम्हारे पास बैठकर शांति पाएंगे, तुम्हारी छाया में विश्राम पाएंगे; तुम्हारी आंख उन पर पड़ जाएगी, वे धन्यभागी हो जाएंगे। तुम अपनी वासना को प्रार्थना बनाओ।

क्या मतलब है मेरा वासना को प्रार्थना बनाने से? वासना में जो ईर्ष्या है, उसे जाने दो; वासना में जो द्वेष है, उसे जाने दो; वासना में दूसरे के शोषण करने की जो आकांक्षा है, उसे जाने दो; वासना में दूसरे का मालिक बनने की जो वृत्ति है, उसे जाने दो; और तब तुम्हारी वासना शुद्ध होकर प्रार्थना बन जाएगी। तब तुम दोगे और उत्तर में कुछ भी न मांगोगे। तब तुम प्रेम दोगे, उत्तर में कुछ भी न मांगोगे। तब तुम्हारे प्रेम में सिर्फ आटा होगा, कांटा नहीं होगा।

ये कुछ छोटी-छोटी घटनाएं समझें।

मुल्ला नसरुद्दीन से उसके मित्र चंदूलाल ने पूछा—मुल्ला, अगर तुम शादी ही करना चाहते हो तो उसी लड़की से क्यों नहीं कर लेते जिसके साथ रोज शाम को सागर की सैर करने जाते हो? मुल्ला ने कहा—अगर मैं उसी से शादी कर लूंगा, तब मेरी शामें कैसे कटेंगी?

जिससे शादी की, उससे झंझट हो जाती है; उससे सब प्रेम का नाता टूट जाता है, यह बड़े मजे की बात है। प्रेम का नाता जिससे बनाया, विवाह किया, शादी की—वह प्रेम का नाता है—मगर जिससे विवाह किया, उससे प्रेम का नाता टूट जाता है। यह बड़ी अजीब दुनिया है। यह बड़ी चमत्कार से भरी दुनिया है। प्रेम का

नाता बनाते ही प्रेम टूट जाता है। क्योंकि प्रेम के नाम पर जो सब सांप-बिच्छू छिपे बैठे थे अभी तक पिटारे में, सब निकलना शुरू हो जाते हैं। इधर विवाह की बांसुरी बजी कि उधर निकले सब सांप-बिच्छू। वे सब जो छिपे पड़े थे, कहते थे—बच्चू जरा रुको, जरा ठहरो, ठीक समय आने दो, एक बार गठबंधन हो जाने दो, एक बार छूटना मुश्किल हो जाए, फिर असलियत प्रकट होती है। तुम्हारा भी सब रोग बाहर आता है, जिससे तुमने प्रेम किया उसका भी सब रोग बाहर आता है, धीर-धीरे पति-पत्नी के बीच सिवाय रोग के आदान-प्रदान के और कुछ भी नहीं होता।

मुल्ला नसरुद्दीन से किसीने पूछा—प्रेम के विषय में आपका क्या अनुभव है? मुल्ला ने कहा—यही, दो बार निराशा। पहली बार इसलिए कि एक स्त्री ने न कहा, और दूसरी बार इसलिए कि दूसरी स्त्री ने हां कहा। हर हालत में निराशा है। स्त्री मिल जाए तो निराशा, स्त्री न मिले तो निराशा। पुरुष मिल जाए तो निराशा, न मिले तो निराशा।

मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी उससे कह रही थी—मैं अपने नए पड़ोसियों से तंग आ चुकी हूं, हमेशा आपस में लड़ाई-झगड़ा करते रहते हैं। मुल्ला ने कहा—एक समय ऐसा भी था जब ये दोनों एक-दूसरे से बेहद प्यार करते थे। पत्नी ने पूछा—फिर क्या हुआ? मुल्ला ने कहा—फिर, फिर दोनों की शादी हो गयी।

और मुल्ला से किसी ने पूछा—तुमने कैसे उस औरत से विवाह करने का निश्चय कर लिया है? वह सुंदर हो सही, मगर तुम्हें पता है नसरुद्दीन, उसके पिछले पांचों पति पागलखाने में हैं! मुल्ला ने कहा—छोड़ो, मुझे डरवाने से रहे, शायद तुम्हें भी पता नहीं है कि बंदा पागलखाने से लौट चुका है। अब मुझे कोई पागलखाना भेज नहीं सकता।

अब तुम पूछते हो—जिसे चाहो वह ठुकराता क्यों है? पागलखाने न जाना चाहता होगा। अनुभव जीवन का आदमी को डरा देता है। बुद्धिमान होगा, जो तुम्हें ठुकरा देता है। तुम अपने प्रेम को परखो, फिर से देखो। तुम्हारे प्रेम में कुछ गलत छिपा है। तुम्हारे प्रेम के वस्त्रों में जंजीरें हैं। प्रेम का आवरण है, भीतर कुछ और है। तुम किसी के मालिक होना चाहते हो? तुम किसी पर कब्जा करना चाहते हो? तुम किसी को वस्तु की तरह उपयोग करना चाहते हो? कोई नहीं चाहता कि उसका उपयोग किया जाए। क्योंकि जब भी किसी का, उपयोग किया जाता है, उसका अपमान होता है। कोई नहीं चाहता कि कोई उसका मालिक हो; क्योंकि जब भी कोई किसी का मालिक हो बैठता है, तब उस व्यक्ति को अपनी आत्मा को खोना पड़ता है। कोई नहीं चाहता कि परतंत्र हो—प्रेम तो लोग चाहते हैं लेकिन परतंत्रता नहीं चाहते हैं, और तुम्हारे सब प्रेम में परतंत्रता छिपी हुई है। वह अनिवार्य शर्त है। वह ऐसी शर्त है कि लोग डरने लगे हैं, लोग भयभीत होने लगे हैं, लोग घबड़ाने लगे हैं।

तुम अपने प्रेम को शुद्ध करो। तुम उसे प्रार्थना बनाओ। तुम दो और मांगने की इच्छा मत करो। और तुम जिसे दो, उस पर कब्जा न करो। और तुम जिसे दो, उस से अपेक्षा धन्यवाद की भी मत करो। उतनी अपेक्षा भी सौदा है। और तुम दो क्योंकि

तुम्हारे पास है। और मैं तुम से कहता हूं कि तुम अगर दोगे, तो हजार गुना तुम्हारे पास आएगा—मगर मांगो मत। भिखमंगों के पास नहीं आता है, सम्राटों के पास आता है। जो मांगते हैं उनके पास नहीं आता। तुम मांगो ही मत। एक बार यह भी तो प्रयोग करके देखो कि तुम चाहो और दो, मगर मांगो मत। नेकी कर और कुएं में डाल। पीछे लौटकर ही मत देखो, धन्यवाद की भी प्रतीक्षा मत करो। और तुम पाओगे, कितने लोग तुम्हारे निकट आते हैं! कितने लोग तुम्हारे प्रेम के लिए आतुर हैं! कितने लोग तुम्हारे पास बैठना चाहते हैं! कितने लोग तुम्हारी मौजूदगी से अनुगृहीत हैं!

मगर अभी तुम्हारी मौजूदगी बड़ी जहर भरी है। अभी जब भी तुम हाथ फैलाते हो, दूसरे डरने लगते हैं, क्योंकि तुम्हारे हाथ में उन्हें फांसी का फंदा दिखायी पड़ता है।

चौथा प्रश्नः ज्ञान, ध्यान और योग के मुकाबले में भक्ति अधिक परंपराग्रस्त और रूढ़िवादी क्यों हो जाती है?

प्रश्न महत्त्वपूर्ण है।

पहली बात, भक्ति स्त्रैण हृदय की भंगिमा है। पुरुष भी जब भक्त होता है तो उसमें स्त्रैण माधुर्य आ जाता है। चैतन्य में तुम्हें दिखायी पड़ेगा, वही माधुर्य जो मीरा में है। वही स्त्रैण कोमलता, वही सुकुमारता, वही सौंदर्य।

पुरुष में थोड़ी पुरुषता होती है, थोड़ी कठोरता होती है, थोड़ा पाषाण होता है। पुरुष में थोड़ी आक्रमक वृत्ति होती है। पुरुष में थोड़ा अहंकार होता है। पुरुष बहिर्गामी होता है। स्त्री ग्राहक होती है, ग्रहणशील होती है—क्योंकि स्त्री यानी गर्भ—आक्रमक नहीं होती। स्त्री अतिथि का सत्कार करने को द्वार खोलकर खड़ी होती है।

भक्त भी ऐसा ही होता है। परमात्मा के लिए द्वार खोलकर खड़ा हो जाता है। भक्त भी ऐसा ही होता है, परमात्मा के लिए गर्भ बन जाता है। परमात्मा को पुकारता है भक्त, खोजता नहीं। ज्ञानी, ध्यानी, योगी परमात्मा को खोजता है, वह पुरुष की वृत्तियां हैं—खोज। वह जाता पहाड़ों में, पर्वतों में, वह बड़ी यात्राएं करता है, वह परमात्मा को खोजने निकलता है। भक्त शांत बैठ जाता है, आनंदमग्न हो डोलता है और कहता है—जब तुम्हारी मर्जी हो, जब पाओ कि मैं पात्र हूं, आ जाना, मेरे द्वार खुले हैं। मैं तुम्हें कहां खोजूं? खोजना भी चाहूं तो कैसे खोजूं? तुम्हारा घर कहां है, तुम्हारा पता कहां है? तुम्हारा नाम क्या? मेरी तो कोई पहचान नहीं तुम से, पहले तो मिलना हुआ नहीं। तुम मिल भी जाओगे तो मैं पहचान न पाऊंगा कि तुम ही मिल गये। तुम्हीं आओ, मैं अवश हूं, मैं असहाय हूं, मैं रो सकता हूं—भक्त रोता है, ज्ञानी खोजता है। भक्त विह्वल होता है, ज्ञानी उपाय करता है।

ज्ञानी मानता है, मेरे किये कुछ हो जाएगा। वही मान्यता पुरुष की मान्यता है। भक्त कहता है—मेरे किये क्या होगा? मेरे किये ही तो सब अनकिया हुआ है। मैं ही तो बाधा हूं। तो भक्त अपने मैं को गिरा देता है, समर्पित हो जाता है। प्रतीक्षा करता है—भक्ति यानी प्रतीक्षा। भक्ति यानी प्रार्थना। बस प्रतीक्षा और प्रार्थना। भक्त के

पास और कोई उपाय नहीं, आंसू। रोता, अपने हृदय को उघाड़ता, पुकारता—गहन प्यास से भरकर—और प्रतीक्षा करता।

भक्त के पास परमात्मा आता है। आना ही पड़ता है। जब पुकार पूरी हो जाती है और जब प्यास गहन हो जाती है, तो आना ही पड़ता है। यह अस्तित्व तुम्हारे प्रति उपेक्षा से भरा हुआ नहीं है। इस अस्तित्व से तुम जन्मे हो, यह तुम्हारी मां है। और जब बच्चा पुकारेगा तो मां आएगी। पुकार सच्ची हो, पुकार झूठी न हो, पुकार में वंचना न हो, पुकार किसी छुद्र बात के लिए न हो—व्यर्थ बातों के लिए मत पुकारना। क्योंकि तुम्हारी व्यर्थ बातें ही तुम्हारी पुकार को खराब कर देती हैं। अब तुम बैठे हो और तुम्हें सिगरेट पीनी है, अब परमात्मा को मत पुकारना कि जरा आ जाओ, वह पैकिट पड़ा है उधर, उठाकर दे दो! मगर तुम्हारी सब प्रार्थनाएं ऐसी ही हैं कि पत्नी बीमार है, इसे ठीक करो। कि नौकरी नहीं लगती, मुझे नौकरी लगाओ। कि धंधा नहीं चलता, मेरा धंधा चलाओ। ये सब ऐसे ही है जैसे सिगरेट का बाक्स पड़ा है उधर, और मैं तो भक्त हूं, उठूं कैसे? तुम्हीं आ जाओ और उठाकर दे दो और अगर न आए, तो याद रखना फिर कभी प्रार्थना न करूंगा। फिर मेरा भरोसा ही टूट जाएगा। फिर मेरी श्रद्धा ही खंडित हो जाएगी। एक अवसर देता हूं अपने को सिद्ध कर लो!

यह भक्ति नहीं है। भक्ति कुछ नहीं मांगती। भक्ति कहती है—तुम्हारी मौजूदगी, तुम्हारी कृपा की एक किरण, बस काफी है, अनंत-अनंत काल के लिए तृप्त कर जाएगी। तुम्हारा एक झरोखा खुल जाए, तुम्हारा एक झोंका आ जाए, एक बूंद मेरे कंठ में गिर जाए तुम्हारी, बस सदा के लिए मैं तृप्त हो जाऊंगा, कुछ और नहीं चाहिए।

तो यह पहले समझो कि भक्ति है स्त्रैणभाव। इसलिए भक्ति परंपरागत और रूढ़िगत दिखायी पड़ती है। क्योंकि स्त्रियां बड़ी सहज हैं, प्राकृतिक हैं। इसलिए शास्त्रों ने स्त्री को प्रकृति कहा है, पुरुष के विपरीत। प्रकृति तुम देखते हो कितनी परंपराग्रस्त है? प्रकृति में तुमने कभी देखा कुछ बदलते? सब वही है। सब वैसा ही है। प्रकृति का वर्तुल एक गति से घूमता रहता। वर्षा आई, फिर सर्दी आएगी, फिर गर्मी आएगी, फिर वर्षा आ जाएगी—एक वर्तुल है। ऐसा ही सदा हुआ, ऐसा ही सदा होता रहा, ऐसा ही सदा होता रहेगा। वसंत आया और फूल खिल गये। और पतझड़ में पत्ते गिर गये। ऐसा ही सदा होता रहा, ऐसा ही सदा होता है, ऐसा ही सदा होगा। इसको ही लाओत्सु ने ताओ कहा है, और वेदों ने ऋत। इसको ही बुद्ध ने धम्म कहा है।

भक्त तो प्राकृतिक है। जैसे सुबह होती है, सूरज निकलता है, प्रकाश फैलता है, तारे खो जाते हैं; सांझ होती है, सूरज डूबता है, प्रकाश खो जाता है, तारे उग आते हैं। ऐसा सदा से होता रहा है। ऐसी ही भक्ति है—शाश्वत, सनातन। अगर दुनिया में कोई सनातन धर्म है, तो भक्ति। हिंदू से सनातन धर्म का कुछ लेना-देना नहीं है। सनातन धर्म तो एक है—भक्ति ध्यान विद्रोही है, भक्ति सनातन है। ध्यानी नयी-नयी विधियां खोजता है, क्योंकि ध्यान में विधियां होती हैं; जहां विधियां होती हैं, वहां नयी खोजी जा सकती हैं। भक्ति में कोई विधि नहीं है। भक्ति तो निर्विधि है। जहां विधि नहीं है, वहां नयी विधि कहां से लाओगे? भक्ति तो भाव है, विधि नहीं है।

तुमने कभी सोचा कि प्रेम कितना परंपरागत है? ज्ञान परंपरागत नहीं होता। ज्ञान बढ़ता है, फैलता है। बहुत सी बातें थीं जो बुद्ध को पता नहीं थीं, वे आइंस्टीन को पता हैं। और बहुत सी बातें हैं जो महावीर को पता नहीं थीं, वे एडिंग्टन को पता हैं। आदमी ज्ञान में रोज-रोज नयी राशि बढ़ाता जाता है। लेकिन क्या तुम सोचते हो कि प्रेम में ऐसी कुछ बातें थीं जो मीरा को पता नहीं थीं और आइंस्टीन को पता हैं? गलत। प्रेम के संबंध में पहले प्रेमी को जो पता था, वही अंतिम प्रेमी को भी पता होगा। कोई फर्क नहीं पड़ेगा। प्रेम सनातन है। ज्ञान बदलता है।

इसलिए ज्ञान सामायिक होता है। जो आज ज्ञान है, कल अज्ञान हो जाएगा। ज्ञान का कोई भरोसा नहीं है, ज्ञान तो पानी पर खींची लकीर है। प्रेम पत्थर पर खींची लकीर है, मिटती नहीं। प्रेम ही है जो शाश्वत है। ज्ञान तो तुम देखते हो, कितनी जल्दी बदलता है! अब तो हालत ऐसी हो गयी है, इतनी तेजी से ज्ञान बदलता है कि जब तक विश्वविद्यालय की किताब में ज्ञान पहुंचता है, तब तक वह तिथि-बाह्य हो जाता है, आउट आफ डेट हो जाता है।

तुम जानकर यह हैरान होओगे कि पश्चिम में अब विज्ञान की बड़ी-बड़ी किताबें नहीं लिखी जातीं—लिखी नहीं जा सकतीं—क्योंकि जब तक तुम बड़ी किताब लिखो—बड़ी किताब लिखने में समय लगता है—तब तक तुम जो लिख रहे हो, वह कुटा-पिटा हो जाएगा। विज्ञान के तो छोटे-छोटे लेख लिखे जाते हैं, विज्ञान के पीरियाडिकल्स होते हैं, क्योंकि विज्ञान खुद ही पीरियाडिकल है। उसकी तो पत्रिकाएं होती हैं—जल्दी छापो। वैज्ञानिक पेपर पढ़ता है, किताब नहीं—कुछ पन्ने। क्योंकि इसके पहले कि पुराना पड़ जाए, कह दो। तुम्हारे कहते-कहते भी पुराना पड़ सकता है।

ज्ञान तो रोज बदलता है। इसलिए ज्ञान पर कोई भरोसा करना मत। क्योंकि जो अभी ठीक है, वह कल सही नहीं रह जाएगा। नयी दवा आ गयी और डाक्टर कितने भरोसे से तुम्हें दवा देता है, और कहता है कि बस, यह दवा काम करेगी! और छह महीने बाद जाओ, वही डाक्टर दूसरी दवा दे रहा है। उससे पूछो—भई, छह महीने पहले का क्या हुआ? वह दवा जो बहुत काम करती थी, क्या हुई? वह कहता है—वह पुरानी पड़ गयी, अब वह काम नहीं करती। जो अब काम नहीं करती, वह छह महीने पहले कैसे काम करती थी? और जो अब काम कर रही है, छह महीने बाद की कहानी क्या होगी? ज्ञान का कोई भरोसा नहीं है, ज्ञान पानी पर बना हुआ बबूला है। रोज बनता है, रोज मिटता है। प्रेम शाश्वत है।

इसलिए भक्ति में तुम्हें लगेगा ऐसा स्वभावतः कि भक्ति में क्यों परंपरागत मालूम होता है? मीरा कहे भी तो क्या कहे। जो प्रेमियों ने सदा कहा है, वही कहेगी। हां, ज्ञानी आविष्कार कर सकते हैं। ज्ञानी नयी-नयी ईजादें कर सकते हैं। मगर ईजाद आदमी की है, पिट जाएगी। और प्रेम परमात्मा का है। कितना ही पुराना हो, फिर भी पुराना नहीं होता

तुम इसे ऐसा समझो कि ज्ञान जल्दी ही पुराना पड़ जाता है, क्योंकि नया होता

है। भक्ति पुरानी नहीं पड़ती, सदा नयी रहती है, क्योंकि नये-पुराने का कोई संबंध ही भक्ति से नहीं जुड़ता।

कुछ चीजें जीवन के आधार हैं। उन आधारों को रोज-रोज नहीं बदला जा सकता, नहीं तो जीवन गिर जाए। भक्ति वैसा ही आधार है।

इसलिए तुम्हें यह प्रतीति हो सकती है कि भक्ति में रूढ़ि मालूम पड़ती है। रूढ़ि नहीं है वह—रूढ़ि शब्द ज्ञानियों का है—शाश्वतता है, सनातनता है। उसके विपरीत तुम हो तो रूढ़ि कहोगे। अगर उसको समझोगे और उसे आशय में पड़ोगे, तो तुम उसे कहोगे—सनातन था।

सनातन का अर्थ समझ लेना। सनातन का अर्थ होता है, जो न तो कभी नया था, और न कभी पुराना होगा, जो सदा है। जो नया है, वह पुराना होगा, जो पुराना है, वह कभी नया था। नया पुराना होता रहता है, पुराना नया होता रहता है। तुम देखते नहीं, रोज ऐसी बातें होती रहती हैं। एक चीज कुछ दिन फैशन में रहती है, फिर पुरानी पड़ जाती है, फिर खो जाती है, दस-बीस साल बाद फिर लौट आती है। आखिर करोगे क्या? फिर नयी हो जाती है। फिर कुछ दिन, फिर पुरानी हो जाती है।

तुम गौर से देखो, फैशन में क्या होता है? एक ढंग के कपड़े आज फैशन में हैं, कल पुराने पड़ गये। फेंक मत देना, सम्हालकर रख लेना। दस साल बाद तुम पाओगे फिर फैशन में आ गए। सौ साल बाद किसी ओबेराय में विंटेज कपड़ों की प्रतियोगिता होगी, तब तुम लेकर अपना कोट पहुंच जाना कि यह सौ साल पुराना है! देखते नहीं कि कोई अपनी फोर्ड—टी मॉडल, अब उन्नीस सौ चौबीस की लिये खड़ा है। विंटेज कार! अब उसकी बड़ी कीमत है। बड़ी पुरानी गाड़ी है! अब वह बड़ी नयी मालूम पड़ती है कि उन्नीस सौ चौबीस की गाड़ियां कहीं दिखायी तो पड़तीं नहीं, वे तो सब खो गयीं, अब किसी एकाध के पास बची है, किसी के कबाड़खाने में पड़ी है, वह किसी तरह ठोंक-पीटकर उसे ले आता है; बड़ी नयी मालूम पड़ती है! लोग देखने जाते हैं।

पश्चिम में कीमत बढ़ती जा रही है पुरानी गाड़ियों की। जितनी पुरानी गाड़ी, उतना पैसा लाती है। आदमी करे क्या, बैठा-ठाला आदमी करे क्या! फैशन बदल लेता, कपड़े बदल लेता, मकान के ढंग बदल लेता, फिर चीजें बदलकर फिर वही की वही हो जाती हैं। जो नया है, वह पुराना होता रहता है, जो पुराना है, वह नया होता रहता है—जल में उठी तरंगें हैं।

भक्ति तो जल है, तरंग नहीं। ज्ञान तरंग है। तरंगें उठती रहती हैं सागर में सागर तो वही है।

आखिरी प्रश्नः आप ने कहा—अपने प्रेमी, अपनी प्रेयसी में भी परमात्मा ही देखो। यह मेरी समझ में नहीं आया। प्रेम मैंने भी किया है, लेकिन अपनी प्रेयसी में परमात्मा देखना असंभव मालूम होता है। शरीर के नाते-रिश्ते में कहां परमात्मा? वासना के संबंधों में कहां परमात्मा?

प्रेम तुमने किया नहीं, कुछ और किया होगा। उस को प्रेम पुकारा होगा। प्रेम तुमने जाना नहीं। प्रेम का लेबिल रहा होगा, अंदर कुछ और रहा होगा। क्योंकि प्रेम तो जिस से हो जाए, उसी में परमात्मा दिखायी पड़ता है—दिखायी पड़ना ही चाहिए; वही प्रेम का प्रमाण है। तुम्हें जिससे प्रेम हो जाए, उसमें परमात्मा की झलक दिखायी पड़नी ही चाहिए। अगर न दिखायी पड़े तो वासना होगी, कामना होगी, प्रेम नहीं। प्रेम तो द्वार है जिससे परमात्मा झलकता है। पत्थर से प्रेम हो जाए तो पत्थर मूर्ति बन जाती है। आदमी से प्रेम हो जाए तो आदमी में परमात्मा की झलक आने लगती है। अपने बच्चे से प्रेम हो जाए तो तुम अपने घर में ही कृष्ण-कन्हैया को फिर नाचते देखोगे। फिर पैरों में पैंजना बांधकर तुम उन्हें खेलते-कूदते देखोगे। फिर वही खेल, जो यशोदा ने कृष्ण का देखा होगा, कोई भी मां देख सकती है, बच्चे से प्रेम होना चाहिए।

और यही तो प्रेमियों का अनुभव है। इसीलिए तो प्रेमी पागल मालूम होते हैं। क्योंकि किसी दूसरे को तो दिखायी नहीं पड़ता। कोई आदमी किसी स्त्री के प्रेम में पड़ गया, फिर उसको लोग पागल समझते हैं, क्योंकि वह ऐसी बातें करता है उस स्त्री के संबंध में कि लोग इधर-उधर मुंह करके हंसते हैं, वे कहते हैं, इसका दिमाग खराब हो गया है। साधारण स्त्री और यह ऐसी बातें कर रहा है बढ़ा-चढ़ाकर, होश में नहीं है।

मजनू पागल था लैला के लिए। उसके गांव के राजा ने उसे बुलाया, क्योंकि उसकी हालत बिगड़ती गयी, बिगड़ती गयी, गांव भर उसकी चर्चा करता, पागल भी लोग उसे कहते, दीवाना भी कहते और दया भी खाते। आखिर राजा ने उसे बुलाया और कहा—तू इस लैला के पीछे पड़ा है, मैं तेरी लैला को जानता हूं; सच तो यह है कि तेरा इतना लगाव देखकर मैं भी उत्सुक हो गया था कि देखूं यह लैला है कौन? मगर पाया कि एक साधारण सी स्त्री; तू व्यर्थ परेशान हो रहा है। तुझ पर मुझे दया आती है। तू महल के सामने से रोता निकलता है, जब देख तेरे आंसू गिरते रहते हैं, हर गली तूने भर दी है गांव की—लैला लैला। मुझे तुझ पर इतनी दया आती है कि तू मेरे राजमहल से कोई भी स्त्री चुन ले।

उसने बारह युवतियां खड़ी करवा दीं। सुंदरतम स्त्रियां थीं राजमहल में, देश की सुंदरतम स्त्रियां थीं। मजनू से कहा—चुन ले। मजनू उनके पास गया, एक-एक को इनकार करता गया, फिर आखिर में बोला—लेकिन इनमें लैला तो कोई भी नहीं। राजा हंसा, उसने कहा—तू पागल है, तू निश्चित पागल है, लोग ठीक ही कहते हैं। लैला इनके सामने कुछ भी नहीं, और मैंने तेरी लैला को देखा है, और मैं ज्यादा अनुभवी हूं, जिंदगी में मैंने बहुत सुंदर स्त्रियां जानी हैं, तूने अभी जाना क्या, जवान छोकरा है! मजनू ने कहा—आप कहते हैं ठीक ही कहते होंगे, लेकिन लैला को देखने के लिए मजनू की नजर चाहिए, उसके बिना कोई लैला को देख ही नहीं सकता। आपके पास मेरी आंख कहां? आपने अपनी आंख से देखा होगा। मेरी आंख से देखें, तब लैला दिखायी पड़ेगी।

इसलिए प्रेमी पागल मालूम होता है, क्योंकि किसी और को तो दिखायी नहीं पड़ता, प्रेमी को न मालूम क्या-क्या दिखायी पड़ता है? तुमने प्रेमियों की कविताएं देखी हैं? सुनो एक-दो गीत। एक—

दोस्त मैं दामन बचाता किस तरह
मुझसे शाने-जल्वाफर्माई न पूछ
किस तरह वह सामने आई न पूछ
उसका हुस्न और उसकी रानाई न पूछ
वह हिजाब-आलूदा अंगड़ाई न पूछ
दिल न कदमों पर लुटाता किस तरह
वह तबस्सुम, वह तरन्नुम, वह शबाब
वे निगाहें, वे अदाएं, वह हिजाब
उसके आरिज में लहकता है गुलाब
उसकी आंखों में बरसती है शराब
पीके बेखुद हो न जाता किस तरह
दोस्त मैं अपना दामन बचाता किस तरह
उसके ओठों पर जब आती है हंसी
फैल जाती है फजा में चांदनी
वह है चलती-फिरती जूही की कली
वह है हंसती-मुस्कुराती बांसुरी
गीत उल्फत के न गाता किस तरह
दोस्त मैं अपना दामन बचाता किस तरह
ढूंढता था हुस्न उसका तख्तो-ताज
मांगती थी उसकी रानाई खिराज
सोहनी का नाज, राधा का मिजाज
चाहती थी कर ले मेरे दिल पे राज
मैं भला आंखें चुराता किस तरह
दोस्त मैं दामन बचाता किस तरह
दिल पे हंस कर तीर खाना ही पड़ा
उसके आगे सर झुकाना ही पड़ा
होश मजबूरन गंवाना ही पड़ा
जब्त का खिरमन जलाना ही पड़ा
और जलाता तो बुझाता किस तरह
दोस्त मैं दामन बचाता किस तरह

प्रेम जहां होगा, वहां अपूर्व दिखायी पड़ने लगेगा। वहां साधारण विलीन हो जाता है, वहां हर चीज असाधारण हो जाती है। वहां साधारण सी आंखें कमल के फूल हो जाते हैं। साधारण सी देह में दीप्ति विराजमान हो जाती है। प्रेम तुम्हें आंख देता है। उस आंख के कारण गहराई आती है। गहराई के कारण हर एक के भीतर छिपा परमात्मा दिखायी पड़ता है। जिससे तुम्हारा प्रेम है, उसमें तुम्हें परमात्मा दिखायी पड़ने लगता है।

प्रेमी पागल नहीं है, प्रेमी के पास नयी तरह की आंख है जो गहरे में देख पाती है। भक्त ऐसा प्रेमी है, जो एक के प्रेम में नहीं, सबके प्रेम में पड़ गया। जो समग्र के प्रेम में पड़ गया। इसलिए वृक्षों में भी उसे वही दिखायी पड़ता है, पत्थरों में उसे वही दिखायी पड़ता है, लोगों में भी वही दिखायी पड़ता है, उसके अतिरिक्त और कोई दिखायी ही नहीं पड़ता। अपने भीतर भी वही, अपने बाहर भी वही।

नहीं, तुमने प्रेम किया ही नहीं होगा। तुमने कुछ और किया, तुम उसे प्रेम समझ बैठे। तुमने अपने अहंकार को सजाया होगा, अहंकार को गंवाया न होगा। अगर तुमने प्रेम से अहंकार को सजाया, तो चूक जाओगे अगर प्रेम में अहंकार को गंवाया, तो तुम्हें ध्यान की पहली झलक मिलेगी। तुम पर निर्भर है सब। तुम जानते ही नहीं कि प्रेम का अर्थ होता है अपने को गंवाना। और जहां अपने को गंवाया, वहीं से तो प्रार्थना की शुरुआत है।

इस दूसरे गीत को सुनो—

फिर तुम्हें लिख दूं धरा के भाल पर
फिर तुम्हें रच दूं गगन के गाल पर
हो गये मुझको बहुत से दिन तुम्हारी छवि संवारे
झर गये कितने धरा के फूल, नभ के नील तारे
भूल बैठे रात-दिन आलोक की पगडंडियों को
भूल बैठी है नदी सौंदर्य से जकड़े किनारे
फिर तरंगों को तुम्हारी बांह दूं
फिर कमल-वन को तुम्हारी छांह दूं
है समय छिछला, बहुत ओछा, नशे के ज्वार जैसा
स्वप्न मेरा गुरु-गहन है जागरण के सार जैसा
मुक्त, चिर निर्बंध में मेरे उदय की भव्यता हो
इन घृणा के कंटकों में तुम दया की दिव्यता हो
रागबंधों का तुम्हें सत्कार दूं
पूर्ण अर्पण का अकंपित प्यार दूं
शुक्लवर्णी ऋतु तुम्हीं में आंक दूं
छोर सुषमा के तुम्हीं में टांक दूं
मैं तुम्हें बांधूं गिरा के प्राण से
रूप-श्री लालित्य के दिनमान से
फिर तुम्हें लिख दूं धरा के भाल पर
फिर तुम्हें रच दूं गगन के गाल पर

जब तुम किसीके प्रेम में पड़ोगे, तो वहां से तुम्हें पहली भनक मिलेगी अस्तित्व के रहस्य की; वहां से तुम्हें पहली खबर मिलेगी कि जीवन ऊपर-ऊपर नहीं है; जो ऊपर से दिखायी देता है, उस पर समाप्त नहीं है। जीवन की और-और गहराइयां हैं। जीवन के और-और तल हैं। दृश्य पर समाप्त नहीं है जीवन, अदृश्य है।

प्रेमी को अदृश्य की भनक पड़नी शुरू होती है। उसे शून्य के स्वर सुनायी पड़ने लगते हैं। उसे दूसरे के हृदय की ऊष्मा अनुभव होने लगती है। दो प्रेमी दो देहों का मिलन नहीं हैं; जहां दो देहें ही मिलती हैं, वहां तो केवल काम है, प्रेम नहीं; जहां दो मन मिलते हैं, वहां प्रेम की शुरुआत है। और जहां दो आत्माएं मिल जाती हैं, वहां प्रेम की पूर्णता है, वहां भक्ति है।

तुम पूछते, आपने कहा अपने प्रेमी, अपनी प्रेयसी में भी परमात्मा ही देखो। अगर प्रेमी और प्रेयसी में न देख सकोगे, तो फिर कहां देखोगे? फिर तो जगत खाली है। फिर तो जगत कोरा है। वहीं खोजो, वहीं मंदिर है, उन्हीं सीढ़ियों पर सिर झुकाओ। प्रेम में डूबो, वहीं से कुरान की आयतें उठेंगी और वेद के स्वर। वहीं मीरा जगेगी, वहीं शांडिल्य के सूत्र सत्य होंगे।

तुम कहते, यह मेरी समझ में नहीं आया। प्रेम मैंने भी किया है, लेकिन अपनी प्रेयसी में परमात्मा देखना असंभव मालूम होता है। फिर कहां संभव होगा? फिर कैसे संभव होगा? फिर तुम्हारे लिए नास्तिक होने के अतिरिक्त और कोई उपाय न रह जाएगा। जो प्रेम में हार गया, वही नास्तिक है। जो प्रेम में पराजित हुआ, वही नास्तिक है। जब प्रेम में भी नहीं मिला, तो स्वभावतः तुम कहोगे कि है ही नहीं। प्रेम सबसे ऊंची उड़ान है। उतनी ऊंची उड़ान की और फिर भी उसकी कोई झलक न मिली, तो फिर कहां मिलेगा?

शरीर के नाते-रिश्ते में कहां परमात्मा है? परमात्मा शरीर में बसा है। नहीं तो शरीर ही नहीं होगा। नहीं तो लाश में और जीवित आदमी में फर्क क्या है? यही फर्क है कि एक में अभी परमात्मा चलता, बोलता, उठता, सोचता, एक में परमात्मा विदा हो गया। एक में घर खाली, एक में घर मालिक से भरा है। एक दीया जलता है रोशनी है, और एक दीया बुझा है। जहां तक दीयों का संबंध है, दोनों एक जैसे लेकिन रोशनी के संबंध में भेद पड़ गया है।

हर जीवित व्यक्ति में जीवन है। जीवन यानी परमात्मा। जीवन यानी ज्योति। जहां वृक्ष जी रहा है, वहां परमात्मा है। जहां गति है, वहां परमात्मा है। तुम कहते—शरीर के नाते-रिश्ते में कहां परमात्मा? परमात्मा का ही नाता-रिश्ता है। सबसे छोटा है, पहली सीढ़ी है उस बड़ी यात्रा की, लेकिन है तो उसी बड़ी यात्रा की पहली सीढ़ी। पहला सोपान भी, है तो सोपान। उस पर रुक मत जाना, मगर उसकी निंदा भी मत करना। उस पर चढ़ना और पार जाना।

वासना के संबंधों में कहां परमात्मा है? वासना कीचड़ भरी है, सच मगर कीचड़ से कमल पैदा होते हैं। और वासना से ही प्रार्थना के फूल खिलते हैं।

आज इतना ही।

प्रवचन ३

स्वभाव यानी परमात्मा

सूत्र

अभयपरां शांडिल्यः शब्दोपपत्तिभ्याम् ।।३१।।

वैँषम्यादऽसिद्धमितिचेन्नाभिज्ञानवदवैँशिष्ट्यात ।।३२।।

न च क्लिष्टःपरस्मादनन्तरं विशेषात् ।।३३।।

ऐश्वर्ये तथेति चेन्न स्वाभाव्यात् ।।३४।।

अप्रतिषिद्धं परैँश्वर्य्यं तद्भावाच्च नैँवमितरेषाम् ।।३५।।



प्रभु को पाना कठिन। लेकिन उसे पाकर उसे कहना और भी कठिन। पाना इतना कठिन नहीं है, क्योंकि वस्तुतः हम उससे क्षणभर को भी दूर नहीं हुए हैं। मछली सागर में ही है। सागर का विस्मरण हुआ है, जिस क्षण याद आ जाएगी उसी क्षण सागर मिल गया। सागर छूटा कभी न था। संपत्ति गंवायी नहीं है। संपत्ति ऐसी है ही नहीं जो गंवायी जा सके। तुम्हारे प्राणों का प्राण है, तुम्हारी श्वासों की श्वास है, तुम्हारे हृदय की धड़कन है। विस्मरण हो गया है, जब स्मरण आ जाएगा, तभी संपदा उपलब्ध हो जाएगी। उपलब्ध थी ही।

जैसे कोई सम्राट भूल जाए सपने में कि मैं सम्राट हूं और भिखारी हो जाए। और भीख मांगे और दर-दर कूचा-कूचा भटके। और सुबह आंख खुले, तो हंसे। बस, वैसी ही ईश्वर की अनुभूति है। हमने उसे कभी खोया नहीं है। संसार एक सपना है जिसमें हम सो गये हैं। एक नींद, जिसमें विस्मरण हुआ है। जब भी आंख खुल जाएगी, तभी हंसी आएगी। हंसी आएगी इस बात पर कि जिसे हम खो ही नहीं सकते थे, उसे भूल कैसे गये? लेकिन जिसे नहीं खो सकते, उसे भी भूल जा सकते हैं। विस्मरण संभव है, स्मरण संभव है। न तो परमात्मा खोया जाता और न पाया जाता। जब हम कहते हैं—पाया, तो उसका अर्थ इतना ही है कि पुनः स्मरण हुआ, सुरति आयी। खोया, उसका अर्थ है कि विस्मरण हुआ, सुरति गयी। खोने का अर्थ है—नींद आ गयी, झपकी लग गयी। पाने का अर्थ है—जाग गये, आंख खुल गयी। इसलिए जिन्होंने पाया, उनको हमने बुद्धपुरुष कहा है। जागे हुए लोग।

बुद्ध को जब मिला तो किसीने पूछा कि क्या मिला? बुद्ध ने कहा, मिला कुछ भी नहीं, जो मिला ही था उसका पता चला। खो जरूर बहुत कुछ गया—मैं खो गया, अस्मिता खो गयी, अज्ञान खो गया, चिंता खो गयी, दुख खो गया, नर्क खो

सूत्र

अभयपरां शांडिल्यः शब्दोपपत्तिभ्याम् ।।३१।।

वैंषम्यादऽसिद्धमितिचेन्नाभिज्ञानवदवैंशिष्ट्यात ।।३२।।

न च क्लिष्टःपरस्मादनन्तरं विशेषात् ।।३३।।

ऐश्वर्यें तथेति चेन्न स्वाभाव्यात् ।।३४।।

अप्रतिषिद्धं परैंश्वर्य्यं तद्भावाच्च नैंवमितरेषाम् ।।३५।।

प्रभु को पाना कठिन। लेकिन उसे पाकर उसे कहना और भी कठिन। पाना इतना कठिन नहीं है, क्योंकि वस्तुतः हम उससे क्षणभर को भी दूर नहीं हुए हैं। मछली सागर में ही है। सागर का विस्मरण हुआ है, जिस क्षण याद आ जाएगी उसी क्षण सागर मिल गया। सागर छूटा कभी न था। संपत्ति गंवायी नहीं है। संपत्ति ऐसी है ही नहीं जो गंवायी जा सके। तुम्हारे प्राणों का प्राण है, तुम्हारी श्वासों की श्वास है, तुम्हारे हृदय की धड़कन है। विस्मरण हो गया है, जब स्मरण आ जाएगा, तभी संपदा उपलब्ध हो जाएगी। उपलब्ध थी ही।

जैसे कोई सम्राट भूल जाए सपने में कि मैं सम्राट हूं और भिखारी हो जाए। और भीख मांगे और दर-दर कूचा-कूचा भटके। और सुबह आंख खुले, तो हंसे। बस, वैसी ही ईश्वर की अनुभूति है। हमने उसे कभी खोया नहीं है। संसार एक सपना है जिसमें हम सो गये हैं। एक नींद, जिसमें विस्मरण हुआ है। जब भी आंख खुल जाएगी, तभी हंसी आएगी। हंसी आएगी इस बात पर कि जिसे हम खो ही नहीं सकते थे, उसे भूल कैसे गये? लेकिन जिसे नहीं खो सकते, उसे भी भूल जा सकते हैं। विस्मरण संभव है, स्मरण संभव है। न तो परमात्मा खोया जाता और न पाया जाता। जब हम कहते हैं—पाया, तो उसका अर्थ इतना ही है कि पुनः स्मरण हुआ, सुरति आयी। खोया, उसका अर्थ है कि विस्मरण हुआ, सुरति गयी। खोने का अर्थ है—नींद आ गयी, झपकी लग गयी। पाने का अर्थ है—जाग गये, आंख खुल गयी। इसलिए जिन्होंने पाया, उनको हमने बुद्धपुरुष कहा है। जागे हुए लोग।

बुद्ध को जब मिला तो किसीने पूछा कि क्या मिला? बुद्ध ने कहा, मिला कुछ भी नहीं, जो मिला ही था उसका पता चला। खो जरूर बहुत कुछ गया—मैं खो गया, अस्मिता खो गयी, अज्ञान खो गया, चिंता खो गयी, दुख खो गया, नर्क खो

गया; खो बहुत गया, मिला कुछ भी नहीं। मिला तो वही, जो मिला ही था। उसकी याद लौट आयी। बीच में जो कूड़ा-कर्कट इकट्ठा था, पहाड़ खड़े हो गये थे अहंकार के, उनके हटते ही सूरज प्रकट हो गया। सूरज कभी खोया न था, बीच में पहाड़ खड़े हो गये थे। जैसे बादल घिर जाएं और सूरज दिखायी न पड़े। तब भी सूरज उतना ही है, जितना तब जब कि दिखायी पड़ता है और आकाश में बादल नहीं होते।

मेघाच्छन्न हो तुम। बादलों से घिर गये हो। भीतर सूरज उतना ही प्रज्वलित है। वह ऐसा सूरज नहीं जो बुझ जाए। इसलिए ईश्वर को पाना कठिन तो है, क्योंकि याद लानी बड़ी कठिन है। भूले-बिसरे बहुत समय हो गया। अनंतकाल हो गये, तब से हम सोये हैं। जन्मों-जन्मों से सोये हैं। कठिन तो है, असंभव नहीं।

लेकिन उससे भी बड़ी कठिनाई है, जो पा लेते हैं, वे कैसे कहें उनसे जिन्हें मिला नहीं। जिसकी आंख खुल गयी, वह कैसे कहे अंधे से कि प्रकाश क्या है? जिसका बहरापन चला गया, वह कैसे कहे बहरे से ध्वनि क्या है, संगीत क्या है? कोई भी उपाय नहीं सूझता।

रामकृष्ण कहते थे, एक अंधा आदमी कहीं मेहमान था। खीर बनी, उसे खीर परोसी गयी। गरीब था, अंधा था, पहली दफा खीर मिली थी, उसे बहुत भायी। उसने पास बैठे आदमी से पूछा, यह क्या है? पास के आदमी ने कहा, दूध की बनी मिठाई। अंधे ने कहा, पहेलियां मत बूझो, दूध क्या है? पास बैठे आदमी ने कहा, यह तो झंझट हुई! पंडित होगा, इसलिए इसकी तो फिकर ही नहीं की कि आंख का अंधा है जिसको मैं समझा रहा हूं। कहा, दूध, दूध का रंग सफेद होता है। उसे अंधे ने कहा, यह और उलझन हो गयी, यह सफेद क्या? पंडित भी पंडित ही था, हार नहीं मानी। उसने कहा, सफेद क्या? बगुला देखा है कभी, बगुले जैसा सफेद। उस अंधे को तो मामला और उलझता गया। खीर से चला, बगुले पर पहुंच गया। अब अंधे ने बगुला कब देखा? उसने पूछा कि कुछ ऐसा करो कि मैं समझूं, मैं अंधा आदमी हूं। तुम बगुले को मुझे समझाओ। तब उस पंडित को याद आयी कि मैं किस से बात कर रहा हूं। अंधे को कैसे समझाऊं? तो उसने अपना हाथ उसके पास किया, हाथ टेढ़ा किया और कहा, मेरे हाथ पर हाथ फेरो, इस तरह बगुले की गर्दन होती है। अंधे ने उसके हाथ पर हाथ फेरा, बड़ा खुश हो गया और उसने कहा, अब मैं समझा कि खीर तिरछे हाथ की तरह होती है।

ऐसे ही सारे शास्त्र अंधों के हाथ में पड़कर खो जाते हैं।

बुद्ध एक बात कहते हैं, तुम कुछ और समझते हो। कसूर तुम्हारा भी नहीं, कसूर बुद्ध का भी नहीं, दोनों के बीच जो लेन-देन होता है वहीं कुछ भूल-चुक हो जाती है। बुद्ध किसी और लोक से कहते हैं, तुम किसी और लोक से समझते हो। तुम्हारा क्या कसूर? अगर तुम ने रोशनी नहीं देखी, तो कोई रोशनी की बातें करे, चांद-तारों की बातें करे, आकाश में तने हुए इंद्रधनुषों की बातें करे और तुम्हें समझ में न आए; रंगों की बातें करे और तुम्हें समझ में न आए, तुम्हारा कसूर क्या? और वह भी क्या करे जिसने रंग देखे हैं? रंग रंगों से ही कहे जा सकते हैं। और कोई उपाय नहीं है।

पश्चिम का बहुत बड़ा विचारक था, लुडविग विटगिंस्टीन। विटगिंस्टीन ने कहा है कि जो न कहा जा सके, उसे कहना ही मत। मगर तब तो सारे शास्त्र व्यर्थ हो जाएंगे। तब तो आग लगा देनी पड़ेगी वेद में, उपनिषद में, कुरान में, शांडिल्य-सूत्र में, क्योंकि इन सबकी चेष्टा यही है कि जो न कहा जा सके उसे कहना है। विटगिंस्टीन की बात भी सही मालूम पड़ती है कि जो न कहा जा सके, उसे कहना ही क्यों? चुप ही रह जाना बेहतर है। जब कहा ही नहीं जा सकता, तो कहो मत। क्योंकि तुम जो भी कहोगे, वह गलत होगा। और तुम जो भी कहोगे, वह गलत ढंग से समझा जाएगा। उससे उपद्रव बढ़ेंगे।

उसकी बात में बल है। दुनिया में इतने संप्रदाय हैं, वह बुद्धपुरुषों के द्वारा कही गयी बातों का परिणाम हैं। बुद्धपुरुषों ने चाहा था कुछ और, हुआ कुछ और। दुनिया में तीन सौ धर्म हैं और परमात्मा का अनुभव तो एक है। ये तीन सौ धर्म कैसे संभव हुए? यह शब्दों का परिणाम है। जानने वालों ने तो एक जाना, लेकिन जानने वालों ने जब कहा, तो उनकी भाषाएं अलग थीं। यह बिलकुल स्वाभाविक है। कबीर बोलेंगे तो कबीर की भाषा ही बोलेंगे, जुलाहे की भाषा होगी। कहेंगे, झीनी-झीनी बीनी रे चदरिया। अब यह बुद्ध तो नहीं कह सकते। यह वचन बुद्ध के ओठों पर आ ही नहीं सकता। यह बुद्ध के मस्तिष्क में उतर ही नहीं सकता—झीनी-झीनी बीनी रे चदरिया; ज्यों की त्यों धरि दीनी रे चदरिया। बुद्ध ने कभी चादर बुनी नहीं। बुद्ध को यह बात याद भी नहीं आ सकती। यह कबीर को याद आती है। जीसस बोलते हैं, तो बढ़ई के बेटे की तरह बोलते हैं। बुद्ध बोलते हैं, तो सम्राट की तरह बोलते हैं। उनकी भाषा अलग होगी; उनके संस्कार अलग हैं, उनके मस्तिष्क का निर्माण भिन्न ढंग से हुआ है। मीरा नाचकर बोलती है। महावीर नाचकर नहीं बोलते। महावीर के मन में नाच की कोई जगह नहीं है। वे थिर हो जाते हैं। पहले शायद कभी नाचते भी रहे हों, लेकिन जब जाना तो बिलकुल ठहर गये, मूर्तिवत हो गये।

यह आश्चर्यजनक नहीं है कि जैन और बौद्धों ने ही सबसे पहले पत्थर की मूर्तियां बनायीं। क्योंकि बुद्ध और महावीर पत्थर की भांति खड़े हो गये, पत्थर की भांति बैठ गये। संगमर्मर से मेल पड़ा। मीरा की मूर्ति बनाओगे तो झूठी होगी—संगमर्मर नाचे कैसे? बुद्ध की मूर्ति बनाओगे, तो एकदम झूठी नहीं होती, बुद्ध के साथ थोड़ा तारतम्य होता है, बुद्ध भी ऐसे ही बैठे थे, पत्थर की भांति—थिर, अडिग, अकंप।

मीरा की मूर्ति बनानी हो तो पत्थर से नहीं बन सकती। हां, किसी फव्वारे से बन जाए। नाचती हुई कोई चीज चाहिए। पत्थर तो झूठ कर देगा मीरा को। मीरा शायद पहले कभी न नाची हो, जब जाना तो नाच उठी। नाच उसके भीतर पड़ा होगा, नाच उसके संस्कार में होगा। मीरा ने नाचकर कहा वही, जो महावीर ने शांत खड़े होकर कहा।

भाषाएं अलग हैं, सत्य का अनुभव एक है। कहने वालों ने बहुत ढंग से उसे कहा है, सुनने वालों ने फिर और बहुत ढंग से उसे समझा है। तो एक अनुभव से

हजार-हजार पंथ निकल जाते हैं। फिर इनमें विवाद है। फिर भयंकर वैमनस्य है। फिर एक-दूसरे की निंदा है। फिर अपने को सही और दूसरे को गलत करने का उपाय है, तर्कजाल है, विवाद है। इसी विवाद में धर्म खो गया।

तो विटगिंस्टीन भी ठीक ही कहता है कि अच्छा होता कि जानने वाले चुप रहे होते, न बोले होते। विटगिंस्टीन यह भी कहता है कि तुम जब कहते हो कि उसे कहा नहीं जा सकता, तो यह भी तो तुमने कहा। इतना भी कहा जा सकता है क्या? इतना भी नहीं कहा जा सकता।

फिर भी शांडिल्य और नारद और बुद्ध और महावीर और कृष्ण और क्राइस्ट जिन्होंने कहा है, उनकी भी मजबूरी हमें समझनी चाहिए। जब यह घटना घटती है और सत्य मिलता है, तो उस मिलने के साथ ही यह प्रेरणा भी मिलती है कि कह दो, बांट दो। यह प्रेरणा उसमें अंतर्निहित है। बाहर से नहीं आती। ऐसा नहीं है कि जब मीरा को सत्य मिला तो उसने सोचा कि कहूं, या न कहूं। सोचा होगा इतना ही कि कैसे कहूं? कहना तो पड़ेगा ही। यह भी हो सकता है कि कोई मौन से कहे, चुप रहकर कहे, लेकिन वह भी कहने का एक ढंग है। तुम नहीं जानते, कई बार तुम मौन से बहुत सी बातें कहते हो। कहावत है—मौनं सम्मति लक्षणम्। जब कोई चुप रह जाए तो समझ लेना स्वीकार कर लिया उसने। यह भी कहने का ढंग हुआ। हां नहीं कहा उसने, लेकिन चुप रह गया; न भी नहीं कहा उसने। अगर न उससे कहना होता तो न उसने कही होती कि कहीं भ्रांति न हो जाए। कहीं कोई चुप्पी को स्वीकार न समझ ले। चुप रह गया, उसने हां भर दी। कभी-कभी चुप रहकर तुम न भी करते हो। तुम्हारा चेहरा कहता है। तुम्हारी चुप्पी का गुणधर्म कहता है। तुम्हारी आंखें कहती हैं। तुम्हारी भाव-भंगिमा कहती है। आदमी चुप रहकर भी कहता है, बोलकर भी कहता है—कहे बिना चारा नहीं है।

जानेगा जो परमात्मा को, उसी जानने के साथ एक अंतःप्रेरणा मिलती है कि बांट दो, कह दो, लुटा दो। क्योंकि कितने लोग भटक रहे हैं और कितने लोग पाना चाह रहे हैं और मुझे मिल गया, मैं धन्यभागी हूं। मगर इसके साथ ही एक दायित्व भी मिलता है कि अब इसे बांट दूं, इसे कह दूं। जैसे बादल जब भर जाता है तो उसे बरसना ही पड़ता है। कोई बादल ऐसा थोड़े ही सोचता है कि अब बरसूं कि न बरसूं? जब मां के पेट में बच्चा नौ महीने रह चुका, तो जन्म होगा ही। ऐसा थोड़े ही है कि नौ महीने के बाद मां सोचती है कि अब जन्म दूं या न दूं? इसके कोई उपाय नहीं। जब बीज जमीन में पड़ा रहता है और ठीक घड़ी-अवसर आ जाता है, ऋतु आ जाती है, तो फूटता ही है। और जब दीया जलता है, तो रोशनी भी फैलती ही है। और जब तुम्हारे प्राणों में गीत होगा, तो आज नहीं कल तुम्हारे ओठों पर गुनगुनाया भी जाएगा। और अगर तुम्हारे पैरों में नाच होगा, तो आज नहीं कल तुम घूंघर बांधोगे और नाचोगे—पग घुंघरू बांध मीरा नाची रे—बचा नहीं जा सकता। सत्य के अनुभव के साथ ही एक महत प्रेरणा आती है—सत्य के साथ ही आती है, सत्य में निहित आती है; यह सत्य के बाहर नहीं होती, सत्य के भीतर छिपी होती है—सत्य बंटना चाहता है।

इसे हम ऐसा समझें, क्योंकि सत्य का तो अनुभव नहीं, तुम्हारे जीवन में कुछ अनुभव हो, उससे समझना चाहिए। जब भी तुम आनंदित होते हो, तब तुम बांटना चाहते हो। आनंदित आदमी संग-साथ खोजता है—कोई मिल जाए, किसी से दो बात कर लेते, किसी से दिल खोल लेते, हंस लेते, बोल लेते। लेकिन जब तुम बहुत गहन दुख में होते हो, तब बोलना कठिन मालूम होता है। तब तुम चाहते हो कोई छेड़े न, कोई बोले न, तब तुम चादर ओढ़कर अपने कमरे में दरवाजा-द्वार बंद करके पड़ रहना चाहते हो। तुम चाहते हो सब तरफ से अपने को बंद कर लूं। कभी-कभी गहन दुख में आदमी आत्मघात भी कर लेता है। वह आत्मघात भी इसी की सूचना है कि वह चाहता है कि अब मैं परिपूर्ण रूप से बंद हो जाऊं, अब कभी किसी से दुबारा न मिलना हो, न बोलना हो, न संबंध बनाना हो, बात समाप्त हो गयी। आदमी अपनी कब्र में छिप जाना चाहता है, तो आत्मघात करता है। जब तुम आनंदित होते हो, जब तुम थिरकते हो आनंद से, पुलक से भरे होते हो, तब संग-साथ खोजते हो, तब तुम मित्र खोजते हो। अकेले में समाता नहीं। कोई और चाहिए जो थोड़ा बांट ले। भारी हो जाता है आनंद।

सत्य के आनंद का तो क्या कहना! बूंद में सागर आ गया है, बूंद फटी पड़ती है। छोटे से आदमी में परमात्मा उतर आया है, प्रकाश समाता नहीं, बाढ़ आयी है, सब कूल-किनारे तोड़कर बहने लगता है प्रकाश।

विटगिंस्टीन ठीक कहता है, लेकिन विटगिंस्टीन को सत्य का कोई अनुभव नहीं। विटगिंस्टीन दार्शनिक की तरह कहता है कि जो न कहा जा सके, वह नहीं कहना चाहिए। तर्कयुक्त है बात, लेकिन उसे कुछ अनुभव नहीं है। काश, उसे अनुभव होता तो उसे पीड़ा पता चलती, उनकी पीड़ा जिन्होंने जाना है।

यह मनुष्य जाति का सबसे पुराना प्रश्न है जो अब तक हल नहीं हुआ कि सत्य की अनुभूति को कैसे प्रकट किया जाए—किस भाषा में, किस विधि में; कैसे कहा जाए कि भूल न हो, कैसे कहा जाए कि सत्य के साथ अन्याय न हो, कैसे कहा जाए कि दूसरा वही समझे जो कहा गया है। कुछ का कुछ न समझ ले, अन्यथा न समझ ले। जितनी पुरानी धर्म की खोज है, उतनी ही पुरानी यह पहेली है। अब तक तो हल हुई नहीं। आगे भी होगी, इसकी संभावना नहीं। यह हो नहीं सकती हल। यह पहेली शाश्वत है।

इसी पहेली पर आज शांडिल्य अपना मंतव्य देते हैं। बड़ा अनूठा मंतव्य है। इसके पहले कि तुम शांडिल्य को समझो, हम थोड़ी सी बातों का पुनर्विचार कर लें जो मैंने तुमसे पहले कहीं।

पश्चिम का यहूदी विचारक हुआ, मार्टिन बूबर। बूबर कहता है, उस घड़ी में दो बचते हैं—मैं और तू; आइ, दाऊ। वह घड़ी मैं-तू की घड़ी है। इधर भक्त बचता है, उधर भगवान। भक्त यानी मैं, भगवान यानी तू। तो वह मैं-तू का संवाद है। यह बूबर के कहने का ढंग है। दुनिया के बहुत से मनीषियों ने यही ढंग चुना है। हसीद फकीर बालसेन, यहूदी और फकीर, सब ने यही मैं-तू का संवाद चुना है। परम

अनुभव मैं और तू के बीच संवाद है। मैं और तू के बीच सेतु का जुड़ जाना है। मैं और तू का मिलन है। जैसे संभोग में प्रेमी और प्रेयसी मिल जाते हैं और एक क्षण को एक हो जाते हैं। एक होकर भी लेकिन होते दो हैं, दो होकर भी लेकिन होते एक हैं। देह तो दो बनी रहती हैं, चित्त भी दो बने रहते हैं, आत्माएं भी दो बनी रहती हैं, फिर भी संभोग के एक गहन क्षण में, क्षणभर को सही, एक ऊंचाई आती है, एक शिखर आता है, उस शिखर पर दोनों को अपना विस्मरण हो जाता है, दोनों एक हो जाते हैं, आत्मसात हो जाते हैं एक-दूसरे में। मगर फिर भी तो दो होते हैं, और दो होकर फिर भी एक होते हैं। यही प्रेम की पहेली है। यही प्रेम की पीड़ा भी है कि जिससे एक होना है, उससे एक हो-होकर भी एक नहीं हो पाते। कोई उपाय नहीं है। और एक हो भी जाते हैं, तो भी दो बने रहते हैं।

बूबर कहता है, जो संभोग की घड़ी है उस में थोड़ी झलक मिल सकती है उस परम संवाद की जो भक्त और भगवान के बीच होता है। वह अनुभव संवाद है, डायलाग है। मीरा भी राजी होगी, कबीर भी राजी होंगे, जुन्नैद भी राजी होगा, सूफी फकीरों का बहुत बड़ा हिस्सा राजी होगा कि यह बात सच है।

यह एक ढंग है कहने का।

दूसरा ढंग है महर्षि काश्यप का—

तामैश्वर्यपदां काश्यपः परत्वात्।

तू से कहेंगे। मैं मिट जाता है, तू ही रह जाता है। भक्त लीन हो जाता है, भगवान ही बचता है। जैसे बूंद सागर में गिरी, बूंद तो खो गयी, सागर बचा। मैं गया, तू ही बचा। मैं अलग-अलग था, यही पीड़ा थी। अब मैं अलग-थलग नहीं रहा, अब एक हो गया, अनन्य हो गया।

काश्यप जो कहते हैं, वही जलालुद्दीन भी कहता है। वही और फकीरों ने भी कहा है—तू है, मैं नहीं। इस बात में भी सचाई है। क्योंकि मैं तो एक भ्रांति है। उस परम क्षण में कैसे मैं बचेगा? परमात्मा सत्य है, सागर सत्य है, बूंद का होना क्या—क्षणभंगुर, सीमित। सीमा जब असीम से मिलेगी तो असीम तो बचेगा, सीमा खो जाएगी। और ध्यान रखना, असीम बढ़ता नहीं है एक बूंद के गिरने से। इसलिए उपनिषद कहते हैं—उस पूर्ण से हम पूर्ण को निकाल लें, तो भी पूर्ण पीछे शेष रहता है। उस पूर्ण में हम पूर्ण को डाल दें, तो भी पूर्ण उतना का उतना ही रहता है। असीम में न तो कुछ घटता है, न कुछ बढ़ता है। देखते हो कितनी नदियां सागर में गिरती हैं, लेकिन सागर में न कुछ बढ़ता है, न कुछ घटता है। कितने बादल सागर से उठते हैं, न कुछ घटता है, कितनी नदियां सागर में गिरती हैं, न कुछ बढ़ता है। सागर वैसा का वैसा। और सागर ध्यान रहे असीम नहीं है। सागर की सीमा है—बड़ी है सीमा, मगर सीमा है। परमात्मा असीम है। तो काश्यप कहते हैं—ईश्वर बचता है। तामैश्वर्यपदां। उस परम क्षण में ऐश्वर्य मात्र बचता है।

इससे भी समझना, क्योंकि काश्यप ईश्वर भी नहीं कहते, वे कहते हैं ऐश्वर्य बचता है।

क्यों ईश्वर नहीं कहते? क्योंकि ईश्वर कहने से तो मतलब यह होगा कि कोई व्यक्ति बचता है। व्यक्ति नहीं बचता, सिर्फ एक अनुभूति बचती है—शुद्ध अनुभूति ऐश्वर्य की, परम ऐश्वर्य की, परम सौंदर्य की, धन्यता की। ईश्वर कहने से ऐश्वर्य कहना ज्यादा ठीक है, क्योंकि ईश्वर व्यक्तिवाची है। और जहां व्यक्ति है, वहां अहंकार है। परमात्मा में कहां अहंकार? वहां कोई मैं-भाव नहीं है। वहां शुद्ध ऐश्वर्य है। परमात्मा संज्ञा नहीं है, क्रिया है; वस्तु नहीं है, प्रवाह है, गति है, गत्यात्मकता है। काम चलाने के लिए हम ईश्वर कह लेते हैं; क्योंकि ऐश्वर्य की कैसे पूजा करोगे? ऐश्वर्य की कैसे प्रतिमा बनाओगे? ऐश्वर्य की कैसे आराधना करोगे? ऐश्वर्य को कहां खोजोगे? ऐश्वर्य तो सब तरफ फैला हुआ है। भक्त अपनी जरूरत के हिसाब से ऐश्वर्य को संकीर्ण कर लेता है एक छोटी प्रतिमा में। एक राम की प्रतिमा बनायी, या कृष्ण की प्रतिमा बनायी। कृष्ण की प्रतिमा बनाकर सुंदर पीतांबर पहनाकर, मोर-मुकुट बांधकर, हाथ में बांसुरी देकर नृत्य की मुद्रा में खड़ा किया। अब यह जो मोर-मुकुट बांधा है, यह सारे जगत के सौंदर्य का संकेत है। यह जो बांसुरी ओठों पर रखी है, यह सारे जगत में जो गीत व्याप्त है उसका संकेत है। भक्त की जरूरत है। भक्त सीमित है, वह सीमित से ही दोस्ती कर सकेगा। इसलिए कृष्ण ने जब गीता में अपना विराट रूप अर्जुन को दिखाया, अर्जुन घबड़ा गया। हालांकि उसी ने मांग की थी। उसी ने चाहा था कि तुम मुझे अपना विराट रूप दिखाओ। जब दिखाया तो बहुत घबड़ा गया। बूंद सागर को देखकर थरथराने लगी। इतना विराट सामने खड़ा था कि भय लगने लगा। विराट का अर्थ होगा जिसकी कोई सीमा नहीं, जिसका कोई ओर-छोर नहीं। उस ओर-छोर हीन के सामने खड़े होकर तुम कंप न जाओगे तो क्या करोगे?

भक्त अपनी जरूरत के हिसाब से, अपनी मात्रा में भगवान बना लेता है। सारा जगत सौंदर्य से भरा है, लेकिन इस सौंदर्य को देखने के लिए तो बड़ी प्रगाढ़ आंखें चाहिए। इस सारे सौंदर्य को मोर-मुकुट में समा लेता है। जगत में तो संगीत गूंज रहा है, ओंकार का नाद हो रहा है। वृक्षों से हवाएं गुजरती हैं और ओंकार का नाद है। आकाश में बादल गरजते हैं और ओंकार का नाद है। सब तरफ ध्वनि है। उस ध्वनि के भीतर छिपा हुआ सत्य भक्त ने पकड़ लिया बांसुरी में। यह बांसुरी समझ में आ जाती है। इसे कृष्ण के ओठों पर रख दिया है। यह पीतांबर पहना दिया है। यह पीतांबर इस सूरज का पीला प्रकाश है जो सारे जगत को घेरे हुए है, जिसके बिना जीवन नहीं है। यह सारी पृथ्वी पीतांबर ओढ़े है। इसी पीतांबर को ओढ़कर तुम जी रहे हो। वृक्ष जी रहे हैं, पशु-पक्षी जी रहे हैं। मगर आंखों में कहा समाएं इस विराट को? कृष्ण को पीतांबर ओढ़ा दिया है, धूप का प्रतीक है, सूर्य का प्रतीक है, जीवन का प्रतीक है। उनके पैरों को नृत्य की मुद्रा में रखा है, क्योंकि सारा जगत एक महोत्सव है, नृत्य है।

कृष्ण को खोजने जाओगे तो कहीं तुम्हें ऐसा कोई व्यक्ति मिलेगा नहीं ध्यान रखना, कि मोर-मुकुट बांधे, पीतांबर पहने, बांसुरी लिए, नृत्य की मुद्रा में खड़ा तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा हो। अब तक थक भी गया होगा, कभी का उदास हो गया

होगा कि अब तुम नहीं आते, बहुत देर हो गयी, अब तक नाटक का पर्दा गिर भी चुका होगा। कब तक प्रतीक्षा होगी। नहीं, कोई व्यक्ति कहीं है नहीं।

इसलिए काश्यप ने कहा—तामैश्वर्यपदां। वह ऐश्वर्य, ईश्वर नहीं। काश्यपः परत्वात्। वह तू। मैं चला जाता है, उसका ऐश्वर्य रह जाता है, वह रह जाता है, तू रह जाता है। यह बात पहले से थोड़ी आगे जाती है, बूबर से थोड़ी आगे जाती है। क्योंकि बूबर में द्वंद्व बचता है। काश्यप में द्वंद्व खोया, एक बचा, दो नहीं रहे। तीसरी अभिव्यक्ति बादरायण की है—मैं। अहं ब्रह्मास्मि। वही अभिव्यक्ति वेदांत की है, जैन मनीषियों की है, मंसूर की है—अनलहक। वे कहते हैं, भीतर जो छिपा है हमारे, वही पूर्ण होकर प्रकट होता है, बाहर कुछ भी नहीं। परमात्मा दूजा नहीं है, दूसरा नहीं है। परमात्मा तू नहीं है, मैं के भीतर छिपा हुआ है, मैं का अंतरतम है। यह बात थोड़ी और गहरी जाती है, क्योंकि तू में थोड़ी दूरी है। इतनी दूरी क्यों बचानी? परमात्मा मेरा ही स्वभाव है। इसलिए बादरायण कहते हैं—आत्मैकपरां बादरायणः। वह आत्मपर है। वह मेरा मैं है।

यह तुम्हारा मैं नहीं, जिसको तुम दिन-रात दोहराते रहते हो—मैं, मैं, मैं। यह तो भ्रांत मैं है। यह तो नकली सिक्का है। असली सिक्का तब, जब परमात्मा तुम्हारे भीतर मैं होकर प्रकट होता है। उस में कोई अहंकार नहीं होता, उस में कोई मैं-भाव नहीं होता। लेकिन बादरायण यह कहना चाहते हैं कि परमात्मा तुमसे बाहर नहीं है, तुम उसे कहीं खोजने मत जाओ। आंख बंद करो; आंख खोलने से नहीं मिलेगा, आंख बंद करने से मिलेगा। डूबो अपने भीतर, डुबकी लगाओ वहां, वहीं मिलेगा। जीसस कहते हैं—उस प्रभु का राज्य तुम्हारे भीतर है। द किंग्डम आफ गाड इज विदिन यू। बादरायण से वे भी राजी होंगे।

चौथी अभिव्यक्ति गौतम बुद्ध की है, जो और भी गहरी जाती है। गौतम बुद्ध कहते हैं—न मैं-न तू; वहां दोनों नहीं हैं।

समझना।

गौतम बुद्ध की ही यही अनुभूति फिर झेन फकीरों में बड़ी प्रगाढ़ता को उपलब्ध हुई है। यह शून्य की अभिव्यक्ति है। एक तरफ बूबर—मैं-तू, एक छोर पर, दूसरे छोर पर गौतम बुद्ध, बोधिधर्म, रिंझाई, हुई हाई, हांग पो—झेन फकीरों की लंबी परंपरा। वे कहते हैं—न मैं-न तू। नेति-नेति। न यह-न वह। क्यों? क्योंकि बुद्ध कहते हैं—जब तक मैं है, तभी तक तू हो सकता है। और जब तक तू है, तभी तक मैं हो सकता है। ये दोनों साथ ही हो सकते हैं। और अगर ये दोनों हैं, तो अभी अद्वैत का अनुभव ही नहीं हुआ। अभी एक का अनुभव ही नहीं हुआ। और जब एक का अनुभव होगा, तो ये दोनों को मिट जाना होगा, इनमें से कोई भी नहीं बच सकता।

परमात्मा को न तो हम कह सकते हैं मैं, क्योंकि वह तू भी है, और न हम कह सकते हैं तू, क्योंकि वह मैं भी है। अगर हम कहें मैं, तो सीमा बनती है, अगर कहें तू, तो सीमा बनती है। और अगर कहें दोनों, तो द्वैत प्रकट हो जाता है, दूरी हो जाती है। इसलिए बुद्ध कहते हैं, यह भी नहीं, वह भी नहीं। उपनिषद के नेति-नेति

वचन बुद्ध से राजी होंगे। बुद्ध कहते हैं, न मैं बचता है वहां, न तू बचता हैं वहां। मैं-तू का झगड़ा ही नहीं बचता, मैं-तू नहीं बचती। एक विराट शून्य घेर लेता है, जिसमें दोनों खो जाते हैं। कुछ बचता है, जिसके लिए हमारे पास कोई शब्द नहीं है। इसलिए बुद्ध कहते हैं, अपरिय, अनिर्वचनीय है वह, अव्याख्य है वह; अपरिहार्यरूपेण उसे कहा नहीं जा सकता।

ये चार सामान्य उत्तर हैं। शांडिल्य का उत्तर पांचवां है, जो और भी गहरा जाता है। शांडिल्य कहते हैं—

उभयपरां शांडिल्यः शब्दोउपपत्तिभ्याम्।

'शब्द और उपपत्ति द्वारा शांडिल्य इसको उभयपर कहते हैं।' शांडिल्य कहते हैं, ये जो जितनी बातें कही गयी हैं, सब ठीक हैं और फिर भी कोई ठीक नहीं। शांडिल्य का वक्तव्य बहुत अनूठा है। शांडिल्य कहते हैं ये जितनी बातें कही गयी हैं—मैं-तू; तू-मैं; न मैं-न तू; ये सब बातें एक अर्थ में सही हैं; किसी दृष्टि से सही हैं, मगर एक ही दृष्टि से सही है, शेष दृष्टियों से गलत हैं। शांडिल्य कहते हैं—यह कहना कि न मैं-न तू, यह भी सच नहीं है। क्योंकि जहां न मैं बचा, न तू बचा, वैसी स्थिति को खोज करने की जरूरत भी क्या है? अगर दोनों बचे, तो संसार बच गया। मैं-तू का सारा झगड़ा सूक्ष्म हो गया, लेकिन बच गया। अगर एक बचा, तो आधा सत्य प्रकट होता है। दूसरा बचा तो भी आधा सत्य प्रकट होता है। ये सब एकांगी दृष्टियां हैं। ये कहने के ढंग हैं। इनसे कहने की मजबूरी पता चलती है, लेकिन सत्य का उदघोष नहीं होता।

शांडिल्य कहते हैं—उभयपरां। वह दोनों है, दोनों नहीं है। वह यह भी है, वह भी है। एक वचन है नेति-नेति, शांडिल्य कहते हैं—इति-इति। वह यह भी है, वह भी है, दोनों है। और ये सारे वचन सही हैं। इन सभी वचनों में सत्य का कुछ अंश झलका है, लेकिन पूरा सत्य किसी वचन में नहीं है और किसी वचन में कभी हो नहीं सकता है। पूर्ण सत्य के लिए शब्द बहुत छोटे हैं।

परमात्मा को प्रकाश कहें कि अंधकार? प्रकाश कहें तो फिर अंधकार कहां से आता है? फिर कोई और परमात्मा मानना पड़ेगा जिससे अंधकार आता है। उसको शैतान कहो, या कोई और नाम दो, मगर फिर और कोई परमात्मा मानना पड़ेगा। अगर परमात्मा को अंधकार कहें, तो प्रकाश कहां से आता है? अगर परमात्मा को दोनों कहें, अंधकार और प्रकाश, तो हमारे मन में बड़ी झंझट खड़ी होती है, कि दोनों कभी साथ तो पाये नहीं जाते, जहां अंधकार होता है वहां प्रकाश नहीं होता, जहां प्रकाश होता है वहां अंधकार नहीं होता। अगर दोनों कहो, तो दोनों हमने कभी साथ देखे नहीं, वह बात जमती नहीं, विरोधाभासी मालूम पड़ती है। अगर कहो दोनों नहीं है, तो हमारा सारा अनुभव, हमारी आंख का सारा अनुभव दो का ही है—प्रकाश और अंधकार, अगर दोनों नहीं है, तो फिर बात ही खतम हो गयी; फिर हमारे बस के बाहर हो गयी बात। फिर तो हम समझ ही न पाएंगे। ये अड़चनें हैं।

शांडिल्य कहते हैं—सभी वचनों में सत्य का अंश है। शांडिल्य स्यात्वादी

हैं। वे कहते हैं, प्रत्येक वचन में सत्य की थोड़ी सी झलक है; एक पहलू प्रकट हुआ है; लेकिन और पहलू दबे रह गये हैं, उन पहलुओं को भूल मत जाना। सत्य उभयपर है, सभी पहलुओं में है। जिसने कहा, परमात्मा अंधकार है, वह भी सच कह रहा है, क्योंकि परमात्मा में कुछ गुण हैं जो अंधकार के हैं—गहनता, गहराई, शांति, विश्राम। और जिन्होंने कहा परमात्मा प्रकाश है, वे भी ठीक कहते हैं, क्योंकि परमात्मा में कुछ गुण हैं जो प्रकाश के हैं। सब स्पष्ट हो जाता है, सब दिखायी पड़ता है, सब रोशन हो जाता है, आंख खुल जाती है, कुछ छिपा नहीं रह जाता। अंधेरे में तो सब छिप जाता है, परमात्मा में तो सब प्रकट हो जाता है।

परमात्मा में कुछ लक्षण प्रकाश के भी हैं, कुछ लक्षण अंधकार के भी हैं। और चूंकि परमात्मा समग्रता है, इसलिए उसे दोनों ही होना चाहिए। मगर हमारी भाषा की अड़चनें हैं। हम दोनों कहें, तो तार्किक दृष्टि से कठिनाई खड़ी होती है। दोनों इनकार कर दें, जैसा बुद्ध ने किया, तो तार्किक झंझट से तो बच गये लेकिन न मैं-न तू; न अंधकार-न प्रकाश; न जीवन-न मृत्यु; न बसंत-न पतझड़; तब वह है क्या? तब हाथ में कुछ पकड़ नहीं आता। सब सारी पकड़ छूट जाती है। तब हाथ कोरे के कोरे रह जाते हैं। तो इतनी लंबी चर्चा और परिणाम क्या? तो रातभर रामलीला देखी और सुबह प्रश्न वहीं का वहीं खड़ा है कि सीता राम की कौन थी? कुछ हल नहीं हुआ।

शांडिल्य की बात समझना। शांडिल्य कहते हैं—उभयपरां। ये जो द्वंद्व हैं शब्दों के, इन दोनों को ही समझाना होगा। सब द्वंद्वों के बीच छिपा है, सब द्वंद्वों के बीच निर्द्वंद्व बैठा है। जीवन भी वही है, मृत्यु भी वही है; प्रकाश भी वही, अंधकार भी वही, और दोनों के पार भी वही। दोनों भी और दोनों के पार भी—उभयपरां।

इसलिए उपनिषद कहते हैं—वह पास से पास और दूर से दूर। यह उभयपरां की भाषा है। अगर कहो कि दूर, तो खोज मुश्किल हो जाती है। अगर कहो पास, तो खोजने की जरूरत नहीं रह जाती है। फिर कितने ही पास हो तब भी तो दूरी होती है। पास भी तो दूर होने का ही एक ढंग है। फिर कहो क्या? उपनिषद कहते हैं—दोनों, उभयपरां। वह दूर से भी दूर, पास से भी पास। जब तक नहीं पाया, तब तक दूर से दूर, और जब पाओगे, तो पाओगे, पास से भी पास। जब तक सोए, तब तक दूर से दूर, जब जागोगे तो पाओगे, पास से भी पास।

पहले जो चार मंतव्य हैं, उनसे संप्रदाय निर्मित होते हैं। क्यों? उन में एक खूबी है, वे स्पष्ट हैं। जैसे काश्यप कहते हैं—तू, या बादरायण कहते हैं—मैं; बात साफ है, इसमें उलझन नहीं है। सच तो यह है, स्पष्टता के कारण ही सत्य की बलि दे दी गयी। दो में से एक ही चुन सकते हो। अगर सत्य को चुनोगे, तो विरोधाभासी होना पड़ेगा। उलझन रहेगी, अस्पष्टता रहेगी। अतर्क हो जाएंगे वक्तव्य। अगर स्पष्टता चुननी है, तो सत्य आंशिक ही हो सकता है, पूर्ण नहीं हो सकता है। क्योंकि पूर्ण सत्य विरोधाभासी है। इस में हम कुछ कर नहीं सकते, कोई कुछ नहीं कर सकता—ऐसा सत्य का स्वभाव है कि सत्य अपने से विपरीत को भी अपने भीतर लिए हुए है। जीवन में मृत्यु छिपी है, देखते नहीं? प्रेम में घृणा छिपी है, देखते नहीं? मित्र में ही शत्रु छिपा

है, देखते नहीं? किसी को शत्रु बनाना हो, तो पहले मित्र बनाना पड़ता है।

यह भी खूब अजीब बात है। तुम किसी को सीधा शत्रु नहीं बना सकते। कैसे बनाओगे? पहले मित्र तो बनाओ, तब शत्रुता पैदा होती है। इसलिए जितना बड़ा मित्र हो, उतना ही बड़ा शत्रु हो सकता है। पश्चिम के चाणक्य मैक्यावली ने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ 'प्रिंस' में लिखा है—राजाओं को सलाह दी है—कि जो बात तुम अपने शत्रुओं से न कहना चाहो, उसे अपने मित्रों से भी मत कहना। क्योंकि मित्र ही कभी शत्रु बन जाते हैं। और जो बात तुम अपने मित्रों के संबंध में न कहना चाहो, वह शत्रुओं के संबंध में भी मत कहना? क्योंकि आज नहीं कल, शत्रु ही मित्र बन जाते हैं। फिर पीछे झंझट होगी, पछतावा होगा कि ऐसा न कहा होता तो अच्छा था। मैक्यावली की बातों में बड़ा अर्थ है। मैक्यावली यह कह रहा है, शत्रु में मित्र छिपा है, मित्र में शत्रु छिपा है। घृणा में प्रेम, प्रेम में घृणा। समृद्धि में दरिद्रता छिपी है, दरिद्र में समृद्धता छिपी है। तुम देखते हो न, बुद्ध और महावीर अपने साम्राज्य छोड़कर दरिद्र हो गये। एक बात उनकी समझ में आ गयी होगी कि समृद्धि में दरिद्रता छिपी है, और दरिद्रता में समृद्धि छिपी है। नंगे होकर सम्राट हो गये, और सम्राट होकर नंगे थे सम्राट होकर भिखारी थे, और भिखारी होकर सम्राट हो गये। यहां द्वंद्व जुड़े हैं। यहां सब चीजें एक-दूसरे में छिपी हैं। स्वास्थ्य में बीमारी छिपी है, बीमारी में स्वास्थ्य छिपा है।

जब तक तुम बीमार हो सकते हो, तब तक तुम जिंदा हो। मरा हुआ आदमी बीमार नहीं हो सकता। अब क्या बीमार होगा? जिंदा आदमी बीमार हो सकता है। और जो बीमार है, वह स्वस्थ हो सकता है। जो स्वस्थ है, वह बीमार हो सकता है। तो स्वास्थ्य और बीमारी विपरीत हैं, इतना ही मत समझना, भीतर जुड़े हैं, एक ही ऊर्जा के दो छोर हैं—उभयपरां। मगर जब तुम ऐसा कहोगे, तो तुम्हारे पीछे कोई संप्रदाय खड़ा नहीं हो सकता।

बादरायण का संप्रदाय खड़ा हुआ। बादरायण के ब्रह्मसूत्र शंकर के संप्रदाय के आधार बने। काश्यप का संप्रदाय है। लेकिन शांडिल्य का कोई संप्रदाय खड़ा नहीं हुआ, खड़ा हो नहीं सकता। जब सत्य को तुम सब पहलुओं से कहने की कोशिश करोगे, तो तुम से कोई भी राजी नहीं होगा। सत्य को जब तुम सब पहलुओं से कहोगे तो किसी की समझ में बात नहीं पड़ेगी, समझ के पार हो जाएगी, जरा कठिन हो जाएगी। तुम सत्य के साथ तो न्याय कर पाओगे, लेकिन लोग तुम्हारे साथ राजी नहीं होगे।

तुम यह बात समझना।

झूठ में स्पष्टता होती है। यह तुम्हें उल्टी लगेगी बात—झूठ में स्पष्टता होती है। झूठ साफ-सुथरा होता है। क्योंकि आदमी की बनायी चीज, जैसा चाहो वैसा काटो, जैसा चाहो वैसा बनाओ, जो शकल देना चाहो दे दो, झूठ तुम्हारे हाथ में होता है। सत्य तुम्हारे हाथ में नहीं, तुम सत्य के हाथ में हो; तुम उसे शक्ल नहीं दे सकते, तुम उसे आकार नहीं दे सकते, तुम उसे रंग नहीं सकते। सत्य तो जैसा है वैसा कहना होगा।

लाओत्सु ने कहा है—और सब तो बड़े बुद्धिमान हैं और बड़े सुस्पष्ट, मेरी बुद्धि बड़ी उलझ गयी है। मैं तो करीब-करीब मूढ़ हो गया हूं। ज्ञानी, परम ज्ञानी कह

रहा है कि मैं करीब-करीब मूढ़ हो गया हूं। मेरे भीतर सब धुंधला हो गया है, कोई चीज साफ नहीं है। दूसरों की बुद्धि तो दुपहरी में है, मेरी बुद्धि संध्याकालीन जैसी हो गयी—न दिन, न रात।

तुमने कभी सोचा इस बात पर कि हिंदू अपनी प्रार्थना को संध्या क्यों कहते हैं? इसीलिए कहते हैं—उभयपरां। प्रार्थना को संध्या कहने की क्या जरूरत?—उभयपरां। संध्या का अर्थ है—जहां दिन और रात मिलते हैं; जहां न तो दिन होता, न रात होती; दिन भी होता, रात भी होती। संध्या एक धुंधलका है। मध्य की घड़ी है, संक्रमण का काल है। ऐसी ही दशा है उस परम अनुभव की—न मैं होता, न तू होता, मैं भी होता है, तू भी होता है—उभयपरां। संध्यां जैसा है। न तो भरी दुपहरी और न निबिड़ रात्रि। न तो मैं और न तू, स्पष्ट नहीं है। सब धुंधला-धुंधला है। इसलिए तो इस घड़ी को रहस्य की घड़ी कहते हैं, विस्मय की घड़ी।

लाओत्सु ठीक कहता है कि और सब तो बुद्धिमान हैं, तर्कयुक्त हैं, एक मैं ही मूढ़ हो गया हूं, मुझे कुछ साफ-साफ नहीं सूझता। मेरे भीतर सब धुंधला-धुंधला हो गया है। परम ज्ञानी की यही दशा होगी। उसके भीतर सब धुंधला-धुंधला हो जाएगा, क्योंकि सब रहस्यपूर्ण हो जाएगा। वहां द्वंद्व एक-दूसरे में लीन होते हैं। वहां दो लोकों की सीमाएं मिलती हैं। वहां संध्या घटती है।

तुम ने इस पर भी शायद खयाल न किया हो कि इस देश में संतों की भाषा को संध्या-भाषा कहा जाता है। कबीर की भाषा संध्या-भाषा कहलाती है—सधुक्कड़ी को संध्या भाषा कहा जाता है। क्यों? क्योंकि उस भाषा में चीजें साफ नहीं हैं। गणित की तरह साफ नहीं हैं। विज्ञान और धर्म का यही भेद है। गणित दुपहरी की भाषा बोलता है, कविता अंधेरी रात की भाषा बोलती है, धर्म संध्या की भाषा बोलता है। धर्म की कुछ बातें विज्ञान जैसी स्पष्ट होती हैं, और धर्म की कुछ बातें काव्य जैसी अस्पष्ट होती हैं। और दोनों के मेल से बड़ी उलझन पैदा होती है।

पश्चिम में तो संतों ने जो प्रतिवादन किया है, उसका नाम ही मिस्टीसिज्म हो गया है। कुछ भी साफ-सुथरा नहीं है। जैसे सुबह धुंधलका छाया हो, घना कुहासा हो, हाथ को हाथ न सूझे, ऐसी दशा है। रोशनी भी है और हाथ को हाथ भी नहीं सूझता। काव्य साफ-साफ रूप से अस्पष्ट होता है। गणित स्पष्ट रूप से स्पष्ट होता है। धर्म स्पष्ट अस्पष्ट दोनों साथ-साथ होता है। धर्म चुनाव नहीं करता है।

उभय परां शांडिल्यः शब्दः उपपत्तिभ्याम्।

'शब्द और उपपत्ति द्वारा शांडिल्य इसको उभयपरां कहते हैं।' दो कारणों से उभयपरां कहते हैं। एक शब्द की सीमा है, सत्य की सीमा नहीं। शब्द को स्पष्ट होना ही चाहिए, नहीं तो उसका प्रयोजन ही खो जाएगा। अंधेरे का अर्थ अंधेरा ही होना चाहिए, और प्रकाश का अर्थ प्रकाश ही होना चाहिए। और गर्मी का अर्थ गर्मी, और सर्दी का अर्थ सर्दी। नहीं तो शब्द का अर्थ क्या रहेगा? कभी शब्द का अर्थ एक हो, कभी दूसरा हो, सब घोल-मेल हो, खिचड़ी हो, तो शब्द तो बोलना ही मुश्किल हो जाएगा। शब्द की तो जीवन-प्रक्रिया ही यही है कि उसे स्पष्ट होना चाहिए।

अब तुम ऐसा समझो कि तुमने एक हाथ को सिगड़ी पर तपाया और एक हाथ को बर्फ पर रखकर ठंडा किया, फिर दोनों हाथों को एक बाल्टी में भरे पानी में डुबा दिया। अब तुम से कोई पूछे कि पानी बाल्टी का ठंडा है या गरम है, तो मुश्किल में पड़ जाओगे। एक हाथ कहेगा, ठंडा और एक हाथ कहेगा, गरम। पानी बाल्टी का एक ही तापमान पर है, एक हाथ कहता है ठंडा, जिस हाथ को तुमने सिगड़ी पर तपा लिया है, वह हाथ कहता है ठंडा। जिस हाथ को तुमने बर्फ पर ठंडा कर लिया है, वह हाथ कहता है, गरम; कुनकुना। किसकी बात सच मानोगे? पानी दोनों है।

सर्दी और गर्मी दो चीजें नहीं हैं, एक ही चीज के दो नाम हैं। लेकिन भाषा में तो अलग करना पड़ेगा, नहीं तो मुश्किल हो जाएगी। भाषा में तो साफ-साफ सीमाएं बनानी पड़ेगी। भाषा में तो व्याख्या देनी होगी। यह जो भाषा के कारण उपद्रव पैदा हो रहा है, शांडिल्य कहते हैं मैं तुम से कहना चाहता हूं, सत्य उभयपरक है। दोनों है और दोनों नहीं है। और दोनों के पार है। इसलिए किसी एक शब्द की सीमा में मत बंध जाना।

और, उपपत्ति। उस अनुभूति तक पहुंचते-पहुंचते तुम्हारे भीतर इतनी क्रांतियां घट जाती हैं। पहली क्रांति तो घटती है, तुम्हारे विचार शांत हो जाते हैं। जहां विचार शांत हुए, वहां शब्द विलीन हो जाते हैं। वह घड़ी परम मौन में घटती है, वहां शब्द होते नहीं। दूसरी बात, वहां मन नहीं होता। मन तो विचारों की प्रक्रिया का ही नाम है। वहां कोई मन नहीं होता, वहां कोई मनन नहीं होता, वहां कोई चिंतन नहीं होता, सत्य सामने खड़ा होता है, सत्य से तुम आपूर होते हो, भरे होते हो, चिंतन-मनन की सुविधा कहां? चिंतन-मनन तो आदमी तब करता है जब सामने कुछ नहीं होता, टटोलता है।

चिंतन यानी टटोलना, अंधेरे में टटोलना। रोशनी हो गयी, सब चीजें साफ हैं, फिर क्या चिंतन करोगे? वहां चिंतन अवरुद्ध हो जाता है। आदमी अवाक होता है। ठक से सारा मन बंद हो गया। और मन ही खबर देगा। जब तुम लौटोगे संसार में, अपने मित्रों के बीच, अपने परिवार में, अपने प्रियजनों में और उन से तुम कहोगे कि मैंने जाना, तो कौन खबर लाएगा? मन खबर लाएगा। और मजा यह है कि मन वहां था नहीं। खबर उस से देनी पड़ती है, जो वहां था नहीं। और जो वहां था, वह कभी लौटता नहीं। उसे तुम ला नहीं सकते वापस। उसे लाने का कोई उपाय नहीं।

तुम गये सागर-तट पर। एक बड़ा प्रसिद्ध कवि था, वह गया सागर-तट पर। उसकी प्रेयसी बीमार पड़ी है अस्पताल में। सागर बड़ा सुंदर था। नीलिमा सागर की, सुबह की ताजी हवाएं, सूरज की ताजी किरणें, सागर के तट पर बड़ा सौंदर्य था। हवाएं बड़ी सुगंधित थीं। वह बहुत पुलकित और आनंदित हुआ। उसने सोचा कि काश! मेरी प्रेयसी भी यहां होती। वह तो नहीं आ सकती, अस्पताल में बीमार पड़ी है, उसके लिए क्या करूं? उसके लिए थोड़ी भेंट ले जाऊं। तो वह एक बड़ी पेटी लाया और पेटी में उसने सागर की हवाएं और रोशनी, जो भी बन सकता था पेटी खोलकर और जल्दी से बंद करके ताला लगाकर सीलमोहर लगा दी।

पहुंचा अस्पताल, बड़ा खुश था। सोचता था रोशनी भर लाया हूं, ताजी हवाएं भर लाया हूं। लेकिन पेटियों में कहीं हवाएं ताजी रहती हैं? कितनी ही ताजी हवा भरो, पेटी में जाते ही बासी हो जाती है। और पेटियों में कहीं रोशनी पकड़ी जाती है? जब उसने पेटी खोली थी तो सूरज की किरणें चमकती उसने देखी थीं पेटी पर पड़ती हुई, जल्दी से पेटी बंद कर दी थी तो सोच रहा था कि भीतर होंगी। कुछ चीजें हैं जो पकड़ में नहीं आतीं। उसने तो पेटी बंद कर दी थी और सब तरफ से मोम लगा दिया और ताले भी लगा दिये, लेकिन सूरज की किरणें कोई रुपये-पैसे तो नहीं हैं कि तुमने तिजोड़ी में बंद कर दी और ताला लगा दिया। सूरज की किरणें तो पेटी के बंद होते ही निकल गयीं। उन्हें बंद करने का कोई उपाय नहीं। कोई उन पर मुट्ठियां थोड़े ही बांध सकता है।

पर बड़ा खुश था, बड़ा प्रसन्न था। कल्पना कर रहा था कि पेटी जब खोलूंगा अस्पताल में, जगमगा उठेंगी मेरी प्रेयसी की आंखें। जब पेटी खोली तो प्रेयसी थोड़ी हैरान थी, उसने कहा, तुम लाये क्या, खाली पेटी? उसने भी पेटी में देखा, उसने कहा, यह बड़ी हैरानी की बात है। जब मैंने बंद की थी तो खाली नहीं थी। जब बंद की थी तो सूरज की किरणें नाचती थीं और ताजी हवा बहती थी, मैं तो यही सोचकर इतनी दूर इसे लाया कि थोड़ा सागर का अनुभव तुम्हारे लिए ले चलूं।

बस ऐसी ही हालत है। जब तुम जाते हो उस परमात्मा के किनारे—प्रभु तीरे—उस तट से जब तुम अनुभव लाते हो, यहां तक लाते-लाते, जिन पेटियों में तुम लाते हो—शब्दों की पेटियां—उनमें सब मर जाता है। उसकी अनुभूति उस समय होती है, जब मन नहीं होता। और जब तुम बताते हो, तब मन का सहारा लेना पड़ता है। मन की गवाही, मन का उपयोग करना पड़ता है। इसलिए उस अनुभव की जो उपपत्ति है, वही इतनी भिन्न है, वही इतनी अनूठी है कि उसे तुम शब्दों में नहीं पकड़ पाते। शब्दों के पार जाते हो तभी वह पकड़ में आती है। और जब शब्दों में लाने की कोशिश करते हो, तभी छूट-छूट जाती है।

फिर भी सदगुरु बोलते हैं। इसलिए नहीं कि वे सोचते हैं बोलकर कहा जा सकेगा, बल्कि इसलिए कि बोलकर प्यास जगायी जा सकेगी। अब तुमने यह कवि की मूढ़ता देखी? फिर भी मैं कहता हूं, उस ने ठीक ही किया। इतना तो हुआ होगा कम से कम प्रेयसी को, कवि की आंखों को देखकर, कवि पेटी भरकर लाया। नहीं ला सका जो लाना था, मगर भरकर लाया, तो जरूर लाने योग्य कुछ रहा होगा, प्यास तो जगी होगी उस प्रेयसी में! उसके मन में एक पुलक तो आयी होगी कि मैं भी जाऊं सागर-तट पर। जब स्वस्थ हो जाऊंगी तब जाऊंगी। आज नहीं कल, मैं भी यात्रा करूंगी।

स्वस्थ अगर हुई होगी कभी तो उसने जो पहली बात कही होगी, मुझे ले चलो सागर-तट। तुम लाना चाहे थे कुछ, नहीं ला पाए, लेकिन मेरे भीतर एक प्यास जग गयी है। उस दिन से मैं सो नहीं पायी ठीक से, उस दिन से मुझे सपना सागर का आ रहा है, उस दिन से मैं बार-बार उसी-उसी विचार से भर गयी हूं। यद्यपि मुझे कुछ

पता नहीं कि तुमने क्या देखा था वहां, लेकिन तुमने देखा जरूर था। तुम्हारी अवाक आंखें, तुम्हारा विस्मय-विमुग्ध चेहरा, तुम्हारे लाने का भाव, तुम्हारी भंगिमा, तुम्हारा जिस प्रेम से तुमने पेटी खोली थी और जैसे किंकर्तव्यविमूढ़ तुम खड़े हो गये थे पेटी को खाली देखकर, उससे एक बात तो मुझे समझ में आ गयी थी कि तुम कुछ जरूर भरकर लाये थे, अन्यथा तुम पेटी न ढोते। तुम कुछ संपदा लाये थे, जो लायी नहीं जा सकी। संपदा थी जरूर। तुम जैसे थके-हारे रह गये थे, तुम्हें जैसे भरोसा नहीं आया था, तुमने बार-बार पेटी उघाड़कर खोलकर देखी थी कि हुआ क्या? किरणें गयीं कहां, हवा कहां है, वह सागर का जो थोड़ा सा टुकड़ा लाया था वह कहां है? तुम्हारी उस सारी मनोस्थिति ने मेरे मन में एक प्यास जगा दी थी कि जैसे ही ठीक होऊं, जैसे ही चल पाऊं, सागर जाना है।

बस यही होता है। शांडिल्य कहें, कि कपिल कहें कि कणाद, कि नारद, कि काश्यप, कि बादरायण, कौन कहे, किस ढंग से कहे, किस तरह की पेटी लाए—बड़ी, कि छोटी; कि सोने की, कि लोहे की, कि लकड़ी की; कि सुंदर, कि असुंदर; कि नक्काशी वाली; किस ढंग की पेटी लाये, मूल्यवान कि कम मूल्यवान, इससे कुछ भेद नहीं पड़ता, इतनी बात पक्की है कि जब भी बादरायण लौटे, काश्यप लौटे, शांडिल्य लौटे, तब उनके प्रेमियों ने अनुभव किया कि कुछ है जो हमने नहीं देखा, उन्होंने देखा है। कुछ है, जो उनके जीवन में घट गया है और हमारे जीवन में घटना चाहिए, घटने योग्य कुछ है।

और यह भी देखा कि वह कह नहीं पा रहे हैं; उनकी जबान लड़खड़ाती है। बड़े से बड़े संत भी तुतलाते हैं, क्योंकि परमात्मा का अनुभव ऐसा है। उसे कहो कैसे? गूंगे केरी सरकरा। गूंगे ने शक्कर चख ली है; कहो कैसे? लेकिन गूंगा तुम्हारा हाथ पकड़ता है कि आओ, तुम्हें भी ले चलूं! गूंगा शोरगुल मचाता है—गूंगा है, बोल नहीं सकता, लेकिन शोरगुल तो मचा सकता है। उसकी आंखें तो तुम्हें कह सकती हैं कि इसने कुछ देखा है, चलो इसके साथ चलकर थोड़ा देख लें। यह इतना आनंदित हो रहा है, व्यर्थ ही नहीं हो रहा होगा। और वह तुम्हारा हाथ खींचता है कि चलो।

काश! तुम चल पाओ, तो तुम भी पहुंच जाओ। और बिना पहुंचे जीवन में कोई सार्थकता नहीं है। बिना पहुंचे जीवन में कोई कृतार्थता नहीं है।

उभयपरां शांडिल्यः। शांडिल्य कहते हैं कि उभयपरक है वह अनुभूति, संध्याकाल जैसी है।

वैषम्यात् असिद्धं इति चेन्न अभिज्ञानवत् वैशिष्ट्यात्।

'वैषम्य होने से यह असिद्ध नहीं होगा, क्योंकि यह ज्ञान की नाईं अविशिष्ट है।' तुम्हारे मन में यह सवाल उठेगा, शांडिल्य उसका जवाब देते हैं। तुम्हारे मन में यह सवाल उठेगा—इतने लोगों को परमात्मा का इतना अलग-अलग अनुभव होता है क्या? अलग-अलग भाषा अलग-अलग अनुभव की सूचक है क्या? भिन्न-भिन्न लोग भिन्न-भिन्न बातें कहते हैं, एक ही परमात्मा है या बहुत परमात्मा हैं? कौन जाने इनके अनुभव भी अलग-अलग परमात्मा के होते हों! इतना वैषम्य है अभिव्यक्ति में

तो क्या परमात्मा में भी इतना वैषम्य है? शांडिल्य कहते हैं: नहीं, उसमें कोई वैषम्य नहीं है। वह विराट है। वह विराट है, इसीलिए वक्तव्यों में वैषम्य है। वह इतना बड़ा है कि जो भी देखकर आया है, एक पहलू को ही बता पाए तो बहुत।

फिर प्रत्येक व्यक्ति अपने ढंग से खबर लाता है। जब तुम कोई खबर लाते हो, तो उस खबर में तुम्हारी खबर भी सम्मिलित होती है। मीरा नाची, चैतन्य नाचे, बुद्ध बिना नाचे बैठे रहे, क्राइस्ट बगावत ले आए, और बहुत हुए ज्ञानी जिनका नाम भी पता कभी न चला, क्योंकि वे बोले ही नहीं, वे चुप ही रह गये; अलग-अलग लोगों ने अलग-अलग ढंग से अभिव्यक्ति की, सवाल उठना स्वाभाविक है—इन सबका अनुभव एक था? शांडिल्य कहते हैं: अनुभव तो एक था, अनुभव तो दो नहीं हो सकते। क्यों नहीं हो सकते दो? क्योंकि अनुभव तभी होता है जब मन मिट जाता है। जहां मन मिट गया, वहां भेद मिट गये। अभिव्यक्ति भिन्न-भिन्न है, क्योंकि अभिव्यक्ति करते वक्त फिर मन को वापस लाना होता है।

यहां तुम इस बगीचे में चार लोगों को ले आओ। एक हो कवि, एक हो चित्रकार, एक हो संगीतज्ञ, एक हो नर्तक, उन चारों को तुम इस बगीचे में ले आओ। यह बगीचा एक है। वे चारों एक ही वृक्ष की छाया में बैठेंगे, एक से फूलों की सुगंध उनके नासापुटों को भरेगी, वृक्षों से छनती हुई सूरज की किरणें उन पर पड़ेंगी वे एक हैं, हवाएं जो बहेंगी वे एक हैं, पक्षी जो गीत गाएंगे वे एक हैं। फिर वे चारों यहां से विदा हो जाएं, फिर उन चारों से तुम कहोगे कि तुमने जो उस बगीचे में देखा हो हमें समझाने की कोशिश करो। कवि गीत गाएगा, गीत गा सकता है इसलिए। गीत को ही पाएगा कि निकटतम माध्यम है कह देने का, उसी में वह कुशल है। वह गीत गाएगा इस बगीचे के संबंध में। और संगीतज्ञ वीणा के तार छेड़ेगा। अब गीत में और वीणा के तारों में कहां साम्य? और नर्तक पैर में घूंघर बांधकर नाचेगा। नर्तक नाचकर खबर देगा कि हवाएं कैसी नाचती थीं और वृक्ष कैसे मस्त थे! गायक गाकर, गीत लिखकर कहेगा कि पक्षियों की गुनगुनाहट में क्या छिपा था, और हवाएं जब वृक्षों से निकलती थीं तो कैसा ध्वनि, कैसा नाद पैदा हो रहा था! और चित्रकार चित्र बनाएगा, उस में रंग होंगे। न उस में शब्द होंगे, न नृत्य होगा, न ध्वनी होगी, रंग होंगे। ये चारों की अपनी विशिष्टताएं प्रविष्ट हो जाएंगी अभिव्यक्ति में। इससे यह पता नहीं चलता कि इन्होंने जो जाना था, वह अलग-अलग था। जाना तो एक था, लेकिन जनाते वक्त अलग-अलग हो गया। वैषम्य होने से यह असिद्ध नहीं होता कि परमात्मा एक नहीं है। परमात्मा तो एक है। एक का नाम ही परमात्मा है। जो एक सभी में समाया हुआ है, जो समग्र का प्राण है, उसका नाम परमात्मा है। समग्रता का नाम परमात्मा है। लेकिन उसका जो अनुभव होता है, वे प्रत्येक का अपना-अपना होता है, अभिव्यक्ति में भेद पड़ जाते हैं। परमात्मा विशिष्ट-विशिष्ट ढंग से प्रकट नहीं होता। उसका होना तो अविशिष्ट है। यह बड़ा महत्वपूर्ण वचन है—

वैषम्यात् असिद्धं इति चेन्न अभिज्ञानवत् वैशिष्ट्यात्'।

उसमें कोई वैशिष्ट्य नहीं है। वह तो सामान्य है, अविशिष्ट है, जिसको झेन

फकीर कहते हैं, आर्डिनरी, अति सामान्य; उसमें कुछ विशिष्टता नहीं है। एक झेन फकीर से किसी ने पूछा कि तुम निर्वाण को उपलब्ध हो गए, तुमने प्रभु को जान लिया, अब तुम्हारे जीवन की विधि क्या है? पहले तुम्हारी जीवन की विधि क्या थी? उस फकीर ने कहा, पहले? लकड़ी काटता था, कुएं से पानी खींचता था। अब? उस फकीर ने कहा, हाऊ मार्वलस, हाऊ वंडरस! कैसा विस्मय, कैसी चकित करने वाली घटना है, अब भी मैं जंगल से लकड़ी काटता हूं, कुएं से पानी भरता हूं! आदमी ने पूछा, फिर फर्क क्या है? फर्क बहुत है। फर्क जो देख ले, उसके पास आंख है। पहले भी जंगल से लकड़ी काटता था, लेकिन तब मैं था, लकड़ी काटने वाला था। कुएं से पानी भरता था, तब मैं था, मैं भरने वाला था। अब भी कुएं से पानी भरा जा रहा है और अब भी लकड़ी काटी जा रही है—हाऊ मार्वलस! और चकित करने वाली बात क्या है, इतना विस्मय होने की बात क्या है? यह फकीर यह क्यों कहता है, कितना आश्चर्य? अब भी लकड़ी काटी जाती है, अब भी कुएं से पानी भरा जाता है न कोई मरने वाला है, न कोई काटने वाला है। मैं तो गया, अब वही काटता है; अब मैं नहीं बचा।

लेकिन जगत तो जैसा है वैसा ही चलता है। तुम बदल जाते हो, तुम्हारा मैं गिर जाता है। परमात्मा में जब तुम्हारा मैं गिर जाता है तो और कुछ नहीं बदलता, फिर भी तुम दुकान पर बैठोगे, बैठना ही चाहिए; फिर भी तुम बजार में जाओगे, जाना ही चाहिए; लेकिन तुम नहीं बचे। तुम जाओगे फिर भी कोई नहीं जाएगा; दुकान पर तुम बैठोगे, फिर भी कोई नहीं बैठेगा। वही तो कृष्ण ने अर्जुन से कहा कि तू लड़, तू बीच में मत आ, तू अपने को छोड़, जो उसे करना है करने दे, तू वाहन बन, तू निमित्त हो जा। तू चिंता मत कर कि इन लोगों को मार डालेगा—जिनको मरना है वे मर चुके हैं, तू सिर्फ बहाना होगा—तू कर्ता की भ्रांति छोड़, कर्ता वही एक है।

तो जो साधु-संत अपने अनुभव के कारण विशिष्ट होने का दावा करने लगते हैं, समझ लेना उन्हें अनुभव नहीं हुआ। यह विशिष्टता का दावा तो अहंकार का ही नया रूप है। कहते हैं: मैं त्यागी, मैं ऐसा, मैं वैसा; जो सिंहासनों पर बैठ जाते हैं, विशिष्टता का दावा करने लगते हैं, वे गलती में हैं, अनुभव नहीं हुआ। जिनको अनुभव हुआ है, वे तो एकदम सामान्य हो जाएंगे। वे तो तुम्हारे जैसा ही सामान्य होंगे। उन में तुम में कुछ भेद नहीं होगा, भेद अगर होगा तो भीतर होगा जो तुम्हें दिखायी भी नहीं पड़ सकता। भेद अगर होगा तो आंतरिक होगा, वे ही जानेंगे अपने भेद को। और उनके जीवन में यही सामान्यता होगी—भूख लगेगी तो भोजन करेंगे, प्यास लगेगी तो पानी पीएंगे, रात आएगी तो सो जाएंगे, वे तुम जैसे ही होंगे।

मगर मनुष्य का अहंकार बड़ा अजीब है। मनुष्य चाहता है कि जो ज्ञानी हों, पहुंचे हुए हों, वे विशिष्ट होने चाहिए। इसलिए तुम झूठी कहानियां गढ़ते हो विशिष्टता के लिए। तुम्हारे भीतर विशिष्ट होने का दंभ पड़ा है, उसी दंभ के कारण तुम अपने संतों-महात्माओं के आसपास भी विशिष्टता की कहानियां गढ़ते हो। मुसलमान कहते हैं कि मोहम्मद जब चलते थे, तो उनके ऊपर बदलियां चलती थीं छाया करने को, रेगिस्तान अरब का। जैन कहते हैं, महावीर धूप में भी चलते तो

उनके शरीर से पसीना नहीं निकलता था। ईसाई कहते हैं कि जीसस का जन्म कुंवारी मरियम से हुआ। ये सब फिजूल की बातें हैं। यह विशिष्ट बनाने की कोशिश की जा रही है। परमात्मा विशिष्ट नहीं है। परमात्मा सामान्य से भी सामान्य है, क्योंकि परमात्मा सामान्य में ही छिपा है। परमात्मा वहां आकाश में नहीं बैठा है, परमात्मा तुम में मौजूद है।

इसलिए परम ज्ञानी बिलकुल सामान्य हो जाता है। शायद तुम्हें रास्ते पर मिले तो तुम पहचान भी न सको। शायद तुम्हारे पास ही बैठा हो और तुम्हें खबर न चले। जापान में एक सम्राट सदगुरु की तलाश में था—बूढ़ा हो गया था। जितने-जितने बड़े-बड़े नाम थे सब साधुओं के पास गया, महात्माओं के पास गया, लेकिन कहीं उसका मन न भरा। उसने अपने बूढ़े वजीर से कहा कि मैं करूं क्या, मेरा मन नहीं भरता? मैं बड़े-बड़े महात्माओं के पास हो आया, लेकिन अभी मुझे वह आदमी नहीं मिला जो मेरा सदगुरु हो जाए। उस वजीर ने कहा, तुम्हें मिलेगा भी नहीं, क्योंकि तुम विशिष्ट की तलाश में हो। तुम सोचते हो, मैं सम्राट, सम्राट का गुरु भी बहुत विशिष्ट होना चाहिए। और जो परम ज्ञानी है, वह सामान्य हो जाता है। तुम्हें मिल भी जाए परम ज्ञानी, तुम पहचान न सकोगे, क्योंकि तुम्हारी आदत खराब है। तुम सोचते हो, उस पर चांद-तारे जड़े होने चाहिए, हीरे-जवाहरात लगे होने चाहिए; तुम्हारी आदत खराब है। तुम सिंहासन पर बैठते-बैठते सोचते हो कि वह मुझ से बड़े सिंहासन पर बैठा होगा, उस में कुछ खूबी होगी। तुम्हें मिल भी जाए तो तुम पहचान न सकोगे।

उस सम्राट ने कहा, यह तो बड़ी अजीब बात हुई। तो तुम किसी को जानते हो जो मुझे मिल जाए तो मैं पहचान सकूंगा? उसने कहा, हां मैं जानता हूं, और तुम नहीं पहचान सकोगे। यह तुम्हारे सामने जो द्वार पर खड़ा हुआ बूढ़ा है, यही है। इस से मैं तीस साल से सत्संग कर रहा हूं। और इस से जो मैंने पाया है, उस की तुम्हारे तथाकथित महात्माओं को खबर भी नहीं है। सम्राट ने कहा, यह पहरेदार मेरा, यह ज्ञानी! तुम होश में हो, पागल तो नहीं हो गये हो! वजीर ने कहा, मैंने आप से पहले ही कहा था कि आप न पहचान सकेंगे, आप विशिष्ट की खोज कर रहे हैं।

अक्सर ऐसा है। कभी तुम्हारे घर में हो सकता है परम ज्ञानी हो, और तुम बाहर खोजो। तुम्हारे पड़ोस में हो, और तुम बाहर खोजो। और तुम हिमालय जाओ खोजने, और ज्ञानी बाजार में बैठा हो। क्योंकि ज्ञानी किसलिए हिमालय जाएगा? बाजार भी उसका है, हिमालय भी उसका है, सब उसका है। ज्ञान कोई विशिष्ट घटना नहीं है। तुमने जिस दिन अपनी सामान्यता को पहचान लिया, सहजता को पहचान लिया, उसी दिन घट जाता है।

इस सूत्र को याद रखना—

न च क्लिष्टः परमस्मात् अनन्तरं विशेषात्।

'परमात्मा में वैषम्य-दोष स्पर्श नहीं करता, क्योंकि ज्ञान द्वारा विशेष भावों की उपलब्धि हुआ करती है।' ये जो इतनी विशिष्टताएं अलग-अलग संप्रदाय, अलग-अलग धर्म, अलग-अलग कहने वाले परमात्मा की बताते हैं, ये परमात्मा की

विशिष्टताएं नहीं हैं, इन ज्ञानियों की विशिष्टताएं हैं, ज्ञान के कारण। इनके ज्ञान के ढंग के कारण पैदा हो रही हैं। ज्ञान द्वारा विशेष भावों की उपलब्धि हो रही है।

जो संगीतज्ञ है, उसका ज्ञान संगीत का है। जब वह परमात्मा को अनुभव करेगा तो वह कहेगा, परमात्मका परम संगीत है, ओंकार है। यह इस की वजह से हो रहा है। जो परमात्मा को किसी और रास्ते से खोजा है और जिसका ढंग और है, जैसे समझो—

पश्चिम के बहुत बड़े यूनानी विचारक प्लेटो ने अपनी एकेडमी के बाहर लिखवा छोड़ा था कि जो गणित न जानते हों, वे भीतर न आएं। क्योंकि प्लेटो कहता था, परमात्मा जगत का सबसे बड़ा गणितज्ञ है। प्लेटो गणितज्ञ था, यह बात सच है! मगर गणितज्ञ जब परमात्मा के संबंध में सोचेगा तो परमात्मा को भी गणितज्ञ बना देगा। और उसके पास सोचने का उपाय भी नहीं है। वह हर जगह गणित देख लेता था। और देखता था,अहा! परमात्मा कैसा गणित बिठाया है, हर जगह गणित है, गणित में कहीं कोई भूल-चूक नहीं होती! गणितज्ञ अकेला विज्ञान है जो पूर्ण है। बाकी सब विज्ञान में भूल-चूक होती है, सुधार होता रहता है, गणित थिर है। गणित के सिद्धांत शाश्वत मालूम होते हैं। तो प्लेटो कहता था, परमात्मा गणित है। इसलिए जो गणित न जानते हों, वे मेरे आश्रम में प्रवेश न करें, गणित सीखकर आएं। गणित ही नहीं जानते, तो परमात्मा से कैसे संबंध जुड़ेगा।

यह भी अजीब बात हो गयी। तुम ने कभी सुनी न होगी कि गणित भी कोई शर्त है परमात्मा को जानने में। लेकिन प्लेटो के आश्रम में थी। प्लेटो गणित की भाषा जानता था। अलग-अलग लोग अलग-अलग भाषा बोलेंगे। उनकी भाषा तुम्हें पकड़नी होगी। उमरखैयाम परमात्मा की बात करता है, तो शराब की बात करता है। वह उस की भाषा है। शराबी मत समझ लेना उस को। यह मत समझ लेना कि वह शराब के गुणगान कर रहा है। शराब का उसने अनुभव किया है, और जब उसने परमात्मा का अनुभव किया, तो उसे याद आया कि यह शराब का ही परम अनुभव है। क्योंकि शराब में भी थोड़ी देर को मैं भूल गया था, और परमात्मा में आया तो मैं सदा के लिए भूल गया। तो यह शराब का ही अनुभव हुआ न! मगर यह शराबी को हो सकता है। जिसने शराब पी ही न हो...। अब तुम महावीर से पूछो, तो महावीर कहेंगे, हद्द हो गयी, परमात्मा और शराब! तुम बात क्या कर रहे हो?

प्रत्येक व्यक्ति का अपना ज्ञान परमात्मा में वैशिष्ट्य को आरोपित कर देता है। लेकिन परमात्मा इससे विशिष्ट नहीं होता। न तो परमात्मा गणित है, और न शराब है, और न संगीत है। परमात्मा सब है, क्योंकि परमात्मा किसी एक विशिष्ट से बंधा नहीं है। परमात्मा सब है, परमात्मा में सब समाहित है।

ऐश्वर्ये तथा इति चेन् न स्वाभाव्यात्।

'ऐश्वर्यों में दोष स्पर्श नहीं करता, क्योंकि वे स्वाभाविक हैं।' और परमात्मा की यह जो समग्रता है, यह उसका ऐश्वर्य है। वह सब है—सारा काव्य उसका है, और सारा गणित भी उसका, सारा नृत्य भी उसका, सारा प्रेम भी उसका, सारी शराब

भी उसकी, सब उसका है—अच्छा-बुरा सब उसका है—यह सारा उसका ऐश्वर्य है। और ऐश्वर्यों में दोष स्पर्श नहीं करता, क्योंकि वे स्वाभाविक हैं। यह परमात्मा का ऐश्वर्य स्वभाव है उसका।

फर्क समझना।

जब आदमी ऐश्वर्य को उपलब्ध होता है, तो यह उसका स्वभाव भी हो सकता है, न भी हो। जैसे तुमने धन इकट्ठा किया और लोग कहते हैं, बड़ा ऐश्वर्य पा लिया। मगर धन तुम्हारा स्वभाव नहीं है; चोरी जा सकता है, सरकार नोट कैंसिल कर सकती है; तुम्हारे ऐश्वर्य की कीमत कितनी; एक क्षण में तुम दरिद्र हो जाओ, कम्यूनिज्म आ सकता है, हजार बातें घट सकती हैं—घर में आग लग सकती है, बैंक फेल हो सकता है, साझीदार धोखा दे जाए; पत्नी ही ले भागे! भरोसा किसका करोगे? तुम्हारे पास जो संपत्ति है, वह स्वभाव नहीं है। इसलिए उस संपत्ति में विपत्ति छिपी ही रहेगी। तुम्हारा जो यश है, वह स्वाभाविक नहीं है। वह दूसरों पर निर्भर है। तुम्हें दूसरों को रिश्वत देनी पड़ेगी, दूसरों की तुम्हें खुशामद करनी पड़ेगी। अगर तुम चाहते हो कि लोग तुमको भला कहें, तो तुम्हें लोगों को भला कहना पड़ेगा।

लोग उसी को भला कहते हैं, जो उन को भला कहता है। अगर तुम चाहते हो लोग तुम्हें ज्ञानी मानें, तो तुम जो भी आए उस को कहना—आप महाज्ञानी हैं, महात्मा हैं। वह भी लोगों से कहेगा कि भई, ऐसा महात्मा नहीं देखा है। तुम अगर चाहते हो कि दूसरे तुम्हारे सामने झुकें, तो तुम उनके चरण छूते रहना, वे तुम्हारे सामने झुकते रहेंगे। यह सब लेन-देन है। मगर यह सब निर्भर है दूसरों पर, इससे वास्तविक ऐश्वर्य उपलब्ध नहीं होता।

वास्तविक ऐश्वर्य स्वाभाविक ऐश्वर्य है जो किसी और पर निर्भर नहीं है; जो तुम्हारी अंतर्चेतना से उमगता है, जो तुम्हारा है, जो फूल तुम में खिलता है। क्या तुम सोचते हो जंगल में जो फूल खिलता है वह कम ऐश्वर्यवान होता है, क्योंकि उसकी कोई प्रशंसा नहीं करता, और क्योंकि किसी गुलाब की प्रदर्शनी में उसे रखा नहीं जाता, क्योंकि फोटोग्राफर उसके फोटो नहीं निकालते, अखबारों में उसकी खबर नहीं छपती। शायद जंगल से कोई गुजरे भी नहीं, वह फूल खिले, नाचे हवाओं में, सुगंध को बिखेरे, गिर जाए, खो जाए, इतिहास में कभी उस का अंकन न हो। मगर क्या तुम सोचते हो वह फूल ऐश्वर्यवान नहीं था? वह ऐश्वर्यवान था। वह जीया, नाचा—और क्या चाहिए। वह अपने स्वभाव को उपलब्ध हुआ।

दो तरह के ऐश्वर्य हैं। एक, कल्पित ऐश्वर्य जो दूसरों पर निर्भर होता है। कल्पित ऐश्वर्य में जो ज्यादा खो गया, वह स्वाभाविक ऐश्वर्य को नहीं खोज पाता। जो फालतू धन में उलझ गया है, वह असली धन से वंचित रह जाता है। एक स्वभाविक ऐश्वर्य है, जो किसी पर निर्भर नहीं है। तुम पर ही निर्भर है। उसे कोई चुरा नहीं सकता। उसका कोई खंडन नहीं कर सकता। उसे तुमसे कोई छीन नहीं सकता। जो छिन जाए, वह तुम्हारा नहीं, इसको तुम कसौटी मानना। अगर इतनी कसौटी तुम्हें खयाल में आ जाए, तुम्हारे जीवन में क्रांति हो जाएगी—जो छिन सकता है, वह मेरा

नहीं। फिर तो क्या बचता है तुम्हारे पास? सिर्फ तुम्हारे भीतर का बोध बचता है, ध्यान बचता है, जागरूकता, चैतन्यता बचती है।

कृष्ण उसी के लिए अर्जुन से कहे हैं—नैनं छिंदन्ति शस्त्राणि, नैनं दहति पावकः। वह जो भीतर है, उसे न तो शस्त्र छेद सकते और न आग जला सकती। वही तुम हो। वही तुम्हारा ऐश्वर्य है।

जब शांडिल्य परमात्मा के ऐश्वर्य की बात कर रहे हैं, तो वह ऐसे ही ऐश्वर्य की बात कर रहे हैं। उसके ऐश्वर्य में दोष स्पर्श नहीं करता। तुम्हारे ऐश्वर्य में बड़ा दोष स्पर्श करता है।

समझो।

तुम्हें धनी होना है, तो बहुतों को गरीब बनाए बिना तुम धनी न हो सकोगे। यह दोषी हो गयी बात। तुम्हें धनी होना है, तो एक ही उपाय है कि हजारों लोग गरीब हो जाएं। तुम्हें यशस्वी होना है, तो एक ही उपाय है कि हजारों लोग यशस्वी न हो पाएं। उतना साफ नहीं दिखायी पड़ता है तुम्हें, लेकिन बात वही की वही है। कितने लोग राष्ट्रपति हो सकते हैं इस देश में? साठ करोड़ आदमी हैं, साठों करोड़ को तुम राष्ट्रपति घोषित कर दो, फिर राष्ट्रपति कौन होने का मतलब रहा? राष्ट्रपति होने का मतलब तभी तक है, जब तक एक ही राष्ट्रपति हो सकता है। साठ करोड़ राष्ट्रपति न हो पाएं, इस की चेष्टा करनी पड़ेगी। तो ही मजा है। तो एक राष्ट्रपति होता है। लेकिन इस में बड़ी हिंसा हो गयी। एक राष्ट्रपति हो गया और एक को छोड़कर बाकी साठ करोड़ दीन-हीन रह गये। उनकी दीनता-हीनता पर तुम्हारा गौरव खड़ा है। तुम अमीर हो गये और लाखों लोगों की जिंदगी सड़ गयी तुम्हारी अमीरी के कारण। तुमने एक बड़ा महल खड़ा कर लिया और अनेक लोगों के झोपड़े छिन गये। यह तो दोष से भरी बात है। यह बात असली ऐश्वर्य की नहीं। असली ऐश्वर्य तो वही है कि किसी से तुम कुछ न छीनो। तुम्हारी अभिव्यक्ति हो और किसी से कुछ छिने न।

समझो।

अगर तुम ध्यान में आगे बढ़ो, तो किसी का ध्यान नहीं छिनता। और तुम अगर प्रेम में आगे बढ़ो, तो किसी का प्रेम नहीं छिनता। तुम अगर शांत होने लगो, तो ऐसा नहीं है कि कुछ लोगों को अशांत होना पड़ेगा तब तुम शांत हो पाओगे। किसी को अशांत होने की कोई जरूरत नहीं है। सच तो यह है कि तुम जितने शांत होओगे, दूसरे लोग शांत हो जाएंगे। क्योंकि तुम से शांति की तरंगें पैदा होंगी।

इसको जीवन में एक बुनियादी कसौटी समझना। जो होने में दूसरे का छिनता हो कुछ, समझ लेना कि वह सांसारिक है। और जिस होने में किसी का कुछ न छिनता हो, वरन उलटा तुम्हारे होने से दूसरे का भी बढ़ता हो, उसे समझना कि वह स्वाभाविक है। स्वभाव यानी परमात्मा।

'ऐश्वर्यों में दोष स्पर्श नहीं करता, क्योंकि वे स्वाभाविक हैं।' परमात्मा को हमने सदा से इस देश में लक्ष्मीनारायण कहा है। गांधी ने एक बेहूदा शब्द जरूर शुरू किया—दरिद्रनारायण। वह शब्द बेहूदा है। गांधी समझे नहीं ऐश्वर्य का यह भेद।

उन्होंने तो समझा कि जो ऐश्वर्य यहां का होता है, वही ऐश्वर्य परमात्मा का भी, तो परमात्मा को लक्ष्मीनारायण कहना ठीक नहीं। लेकिन परमात्मा की जिस लक्ष्मी की बात हो रही है, वह लक्ष्मी और है, वह स्वाभाविक है, वह उसकी अंतःस्थिति है। और जब भी कोई व्यक्ति परमात्मा को उपलब्ध होता है, तब फिर ऐश्वर्य को उपलब्ध होता है। तब वह पुनः फिर ईश्वर हो जाता है।

प्रत्येक व्यक्ति भगवान हो सकता है। भगवान शब्द का अर्थ इतना ही होता है—स्वाभाविक, भाग्य, भाग्यवान, लेकिन स्वाभाविक होना चाहिए। किसी से छीना-झपटी न हो। अपना हो, निज का हो। जो दूसरे से लिया गया है, उसमें पाप है। जो किसी से छीनकर लिया गया है, उसमें हिंसा है। तुम उसी ऐश्वर्य में प्रमुदित और प्रफुल्लित होना, जो तुम्हारा है, और तुम परमात्मा से अपने को दूर न पाओगे। उसी ऐश्वर्य में बढ़ते-बढ़ते तुम ईश्वर हो जाओगे।

अप्रातिषिद्धं पर ऐश्वर्य तत् भावात च न एक इतरेषाम्।

'ईश्वर के ऐश्वर्य कभी भी प्रतिषिद्ध नहीं होते हैं; उसकी नित्यता ही देखने में आती है; परंतु जीवगणों में वैसा नहीं है।'

'ईश्वर के ऐश्वर्य कभी प्रतिषिद्ध नहीं होते हैं।' उन्हें कभी छीना नहीं जा सकता, नष्ट नहीं किया जा सकता, असिद्ध नहीं किया जा सकता, खंडित नहीं किया जा सकता। 'लेकिन जीवगणों में वैसा नहीं है।' क्योंकि जीवगणों ने जिस ऐश्वर्य को ऐश्वर्य समझ लिया है, वह ऐश्वर्य ही नहीं है। विपत्ति को संपत्ति समझे बैठे हैं। विपदा को संपदा समझे बैठे हैं। पराये को अपना समझे बैठे हैं। फिर अड़चन होती है। और तुमने देखा, दुनिया का खेल तुमने देखा; एक आदमी पद पर होता है, लोग बड़ा सम्मान देते हैं। पद से नीचे उतरते ही सारा सम्मान तिरोहित हो जाता है। सम्मान ही तिरोहित हो जाता है इतना नहीं, बदला लेते हैं। जिन्होंने फूलमालाएं पहनायी थीं, वे ही फिर जूते फेंकते हैं। वे ही लोग। असल में जब वे तुम्हारा सम्मान किये थे, तब भी उनके भीतर तुम्हारे प्रति क्रोध था। क्योंकि तुमने उनका यश छीनकर अपना यश बना लिया था। वे तुम्हें क्षमा नहीं कर पाते। सत्ता में तुम होते हो तो बर्दाश्त कर लेते हैं, सत्ता में तुम होते तो तुम्हारा विरोध भी नहीं कर सकते हैं; तुम्हारे हाथ में शक्ति है, तुम नुकसान पहुंचा सकते हो, इसलिए झुके रहते हैं; प्रतीक्षा करते हैं, जब मौका मिल जाएगा।

अब तुम देखते हो, इंदिरा के खिलाफ कितनी किताबें लिखी जा रही है! ये सारे लोग कहां थे? ये सारे लोग इंदिरा के पक्ष में लिख रहे थे और बोल रहे थे। ये सारे लोग अचानक इंदिरा के विरोध में क्यों हो गये? वह जो सम्मान किया था, उस में भीतर कष्ट था। वह जो फूलमालाएं चढ़ायी थीं, अब उनका बदला ले रहे हैं। और ये दूसरों के साथ भी वैसा ही करेंगे। अब दूसरे जो सत्ता में हैं वे शायद सोचते होंगे कि सारा देश उनके पक्ष में बोल रहा है। वही भ्रांति है, आदमी की भ्रांति टूटती ही नहीं। कल जब तुम सत्ता से उतरोगे, तब तुम्हें पता चलेगा कि जिन्होंने तुम्हारी प्रशंसा के गीत गाए, स्तुतियां लिखीं, वे ही तुम्हें गालियां देने लगे। जो सत्ता में है, लोग उस

का सम्मान करते हैं। करना पड़ता है। जो सत्ता से गया उस का सम्मान चला जाता है, अपमान शुरू कर देते हैं। क्योंकि लोगों को भी अनुभव होता है यह कि तुम राष्ट्रपति बने बैठे हो, तो मेरे राष्ट्रपति होने का मौका तुम ने छीना है। मुफ्त नहीं तुम राष्ट्रपति बन गये हो। मेरी कीमत पर बन गये हो। होना तो मुझे चाहिए था, और हो तुम गये हो। ठीक है, अभी हो तो ठीक है। जब नहीं होओगे तब देखेंगे! जब तुम्हारे हाथ में ताकत न होगी, तब तुम्हें इसका पूरा अर्थ समझाएंगे।

तुम देखते हो, धनी को लोग सम्मान भी करते हैं और भीतर से गाली भी देते हैं। और प्रतीक्षा करते हैं कब इसके भवन में आग लग जाए, कब इसका दिवाला निकल जाए। कौन अमीर आदमी कि दिवाली चाहता है, दिवाला चाहते हैं! लोग प्रशंसा भी करते हैं ऊपर से, भीतर ईर्ष्या और जलन से भरते भी हैं। राह देखते हैं कि कभी तो वह घड़ी भी आएगी सौभाग्य की कि जब देखेंगे हम तमाशा। लोग बड़े आतुर हैं। और उसका कारण है। क्योंकि उनसे छीना गया है।

मनुष्य की सारी समृद्धि, ऐश्वर्य, यश, पद-प्रतिष्ठा, सब छीना-झपटी है। सब चोरी है। ईश्वर का ऐश्वर्य भिन्न प्रकार का है। वह उसका स्वभाव है। तुम भी उसी स्वभाव की तरफ चलो। तुम भी उसको ही खोजो जो तुम्हारा स्वभाव है। तुम किसी से छीनकर अपनी संपदा को, अपने व्यक्तित्व को, अपनी गरिमा को बड़ा मत करो। यह धोखा थोड़ी देर का ही होगा, ये पानी के बबूले थोड़ी देर ही बहेंगे, ये कागज की नावें ज्यादा दूर न जाएंगी, ये डूब जाएंगी। इसके पहले कि ये डूब जाएं, तुम अपनी जीवन की नैया बनाओ, अपनी,अपने स्वभाव की। उसे ही ध्यान कहो, प्रीति कहो, प्रार्थना कहो, आराधना-पूजा कहो, जो भी नाम देना हो दो। मगर शांडिल्य के सूत्र महत्वपूर्ण हैं। स्वाभाविक ऐश्वर्य को पा लेना ही ईश्वर को पा लेना है।

और तुमने कभी सोचा या नहीं कि तुम्हारे भीतर एक स्वाभाविक संपदा पड़ी है, जिस को तुम बढ़ाते ही नहीं। तुम्हारी हालत ऐसे है जैसे कोई बीज वृक्षों से भीख मांगता फिरता हो कि एक फूल मुझे दे दो, कि एक पत्ता मुझे दे दो, कि थोड़ी देर मैं भी तुम्हारे पत्ते से हरा हो लूं, कि तुम्हारे फूल के नीचे दबकर मैं भी खुश हो लूं। एक बीज, जो कि खुद जमीन में गिर जाए और टूट जाए तो बड़ा वृक्ष पैदा हो, और जिसमें हजारों-लाखों पत्ते लगें, बड़ी हरियाली हो और बड़े फूल खिलें—बीज भीख मांग रहा है। ऐसे तुम बीज हो और तुम भीख मांग रहे हो। तुम लक्ष्मीनारायण हो सकते हो, लेकिन दरिद्रनारायण बने हो। और जब तक तुमने अपने को दरिद्रनारायण मान रखा है और इस में ही मजा ले रहे हो, तब तक तो बहुत मुश्किल है, तब तक तो बड़ी कठिनाई है।

तुम लक्ष्मीनारायण हो। सारी संपदा तुम्हारी है। सारे जगत का ऐश्वर्य तुम्हारा है। सारे फूल, सारे चांद-तारे तुम्हारे हैं। तुम्हारी मुट्ठी में होने की जरूरत ही नहीं है, क्योंकि तुम्हारे हैं ही। मुट्ठी बांधने की कोई आवश्यकता नहीं है। तुम एक बार अपने स्वभाव में उतरने लगो, अपनी शांति में, अपने शून्य में; अपने अंतस्तल की सीढ़ियों को पार करो, अपने केंद्र पर खड़े हो जाओ, वहां खड़े होते ही बीज टूट

जाएगा—बीज यानी अहंकार। अहंकार की खोल टूट जाएगी। उसके टूटते ही तुम वृक्ष बन जाओगे। और तब तुम्हारे भीतर से जो नाद पैदा होगा, वह अलग-अलग होगा। घटना एक ही घटेगी, लेकिन नाद अलग-अलग पैदा होगा। क्योंकि तुम्हारे व्यक्तित्व अलग-अलग हैं। तुम्हारे व्यक्तित्वों के भेद से परमात्मा के अनुभव में भेद नहीं पड़ता। जीसस वही कहते, जो जरथुस्त्र। कृष्ण वही कहते, जो कबीर। सभी ने एक ही की तरफ इशारा किया है।

शांडिल्य के सूत्र भी उस एक की तरफ ही इशारे हैं। लेकिन शांडिल्य की शर्त यह है कि याद रखना, सब इशारे उसी की तरफ हैं, लेकिन सब इशारे अधूरे हैं; क्योंकि कोई इशारा उसके सारे पहलुओं को प्रकट नहीं कर सकता।

उभयपारं शांडिल्यः शब्दः उपपत्तिभ्याम्।

आज इतना ही।

प्रवचन 4

परमात्मा परमनिर्धारणा का नाम

प्रश्नसार

हसीद फकीरों ने मैं-तू भाव से;
सूफियों एवं भक्तों ने तू-भाव से;
वेदांत, उपनिषद एवं जैन परंपरा ने मैं-भाव से;
बुद्ध एवं झेन परंपरा ने न मैं-न तू-भाव से
और शांडिल्य ऋषि ने उभयपरां—स्वयाद्-भाव—से
ईश्वर को अभिव्यक्त किया।
पर आप तो पिछले सभी उपायों से अभिव्यक्ति दे रहे हैं!

आपने कहा, नेति-नेति ज्ञान का
और इति-इति भक्ति का उद्घोष है।
भक्ति के इस उद्घोष में तो
अंधेरा, कल्मष, पाप, सब आ जाते हैं।
क्या परमात्मा सब है?

तथ्य और सत्य में क्या अंतर है?

मैं असंतुष्ट हूं, हर बात से असंतुष्ट।
और कभी-कभी सोचता हूं कि आनंद मेरे भाग्य में ही नहीं।

पहला प्रश्नः हसीद फकीरों ने मैं-तू भाव से; सूफियों एवं भक्तों ने तू-भाव से; वेदांत, उपनिषद एवं जैन परंपरा ने मैं-भाव से; बुद्ध एवं झेन परंपरा ने न मैं-न तू-भाव से और शांडिल्य ऋषि ने उभयपरां—स्याद् भाव—से ईश्वर को अभिव्यक्त किया। पर आप तो पिछले सभी उपायों से अभिव्यक्ति दे रहे हैं!

मनुष्य प्रौढ़ हुआ है और प्रौढ़ता का सबसे महत्वपूर्ण लक्षण है, विरोधाभास का अंगीकार। तर्क अप्रौढ़ता का सूचक है। तर्क मनुष्य की चेतना की अंतिम ऊंचाई नहीं, सीढ़ी का प्रारंभ है। तर्क एकांगी होता है। तर्क की छाती बड़ी नहीं; तर्क का हृदय उदार नहीं, संकीर्ण है। अगर परमात्मा प्रकाश है, तो तर्क कहता है—अंधेरा फिर परमात्मा कभी नहीं हो सकता। तर्क कहता है—अ अ है ब ब है; अ ब नहीं हो सकता। तर्क का दायरा बड़ा छोटा है, आंगन बड़ा छोटा है! अतर्क का दायरा बड़ा है, आकाश जैसा विराट है। परमात्मा प्रकाश भी हो सकता है और अंधेरा भी। परमात्मा जीवन भी है और मृत्यु भी।

परमात्मा जीवन है तो फिर मृत्यु कौन होगा? मृत्यु का फल जीवन में ही तो लगता है। मृत्यु जीवन का ही तो चरम उत्कर्ष है, मृत्यु जीवन की ही तो समाप्ति है! मृत्यु का फूल जीवन के बाहर नहीं है, जीवन के भीतर है। जीवन की ही रसधार उस में बहती है। यदि परमात्मा जीवन है तो फिर मृत्यु भी उसे होना पड़ेगा। लेकिन तर्क के सामने अड़चन खड़ी होती है। तर्क कहता है, जो जीवन है, वह मृत्यु कैसे हो सकता है? तर्क कहता है, जो जीवन है, वह मृत्यु के विपरीत होना चाहिए। परमात्मा शुभ है, तो अशुभ के लिए शैतान खोजना पड़ता है—वह तर्क के कारण, क्योंकि परमात्मा कैसे अशुभ होगा? जीवन परमात्मा ने दिया, मृत्यु शैतान ने दी।

शैतान की ईजाद तुम्हारी तर्क की कमजोरी के कारण है। जितना कमजोर तर्क होगा, उतना ही जगत में द्वंद्व होगा; क्योंकि एक के मानने से काम नहीं चलेगा। एक में तुम दोनों को न समा सकोगे। तो तुम्हें दूसरी इकाई माननी पड़ेगी। परमात्मा खुशियां दे रहा है और शैतान दुख ला रहा है। परमात्मा स्वर्ग बना रहा है और शैतान नर्क बना रहा है। लेकिन शैतान कहां से आता है? तर्क को थोड़ा और आगे ले चलो तो अतर्क की समझ आने लगेगी। शैतान कहां से आता है? शैतान भी परमात्मा से ही आएगा; क्योंकि सभी उस से आता है। फूल भी उस से और कांटे भी उस से; स्वर्ग भी उस से और नर्क भी उस से। मगर बड़ी छाती चाहिए कि परमात्मा से दुख भी आता है, यह तुम स्वीकार कर सको। उसके लिए बड़ी प्रौढ़ता चाहिए।

तर्क बचकाना है। तर्क एक सीमा खींच देता है, एक लक्ष्मण-रेखा खींच देता है। कहता है, इसके भीतर जो है, वह ठीक, इसके बाहर जो है वह ठीक नहीं। लेकिन बाहर और भीतर जुड़े हैं। जो श्वास भीतर गयी, वही तो बाहर आती है। और जो श्वास बाहर गयी, वही तो भीतर आती है। तर्क कहता है, एक कुछ भी करो, श्वास भीतर लो तो फिर भीतर ही भीतर लेना। श्वास बाहर लो तो फिर बाहर ही बाहर लेना। मगर तर्क तुम्हें मार डालेगा। इसलिए तर्क में जो उलझ जाता है, उसके गले में फांसी लग जाती है। तर्क कहता है, जिससे प्रेम किया, प्रेम ही करना। जीवन ज्यादा विराट है। जिससे प्रेम किया है, उसी से घृणा होती है। जिससे मित्रता बांधी, उसी से झगड़ा हो जाता है। करुणा और क्रोध अलग-अलग नहीं हैं, एक ही ऊर्जा की तरंगें हैं। और जो बनाना चाहता है, उसे मिटाना पड़ेगा। कोई भी स्रष्टा बिना विध्वंस के स्रष्टा नहीं होता।

समझो। तुम एक चित्र बना रहे हो। कैनवास खाली है। जब तुम ने चित्र बनाया तो तुम ने कैनवास का खालीपन नष्ट कर दिया। बिना कैनवास का खालीपन नष्ट किये चित्र न बनेगा। तुम ने एक नया मकान बनाया, तो पुराने को गिराना पड़ा। और तुम ने एक बच्चे को जीवन दिया, तो कहीं कोई बूढ़ा मरा। जहां सृजन है, वहां कहीं पीछे विध्वंस होगा। विध्वंस के बिना कोई सृजन नहीं है।

हिंदू ज्यादा प्रौढ़ हैं, ईसाइयों-मुसलमानों से। इसलिए हिंदुओं को शैतान को मानने की जरूरत नहीं पड़ी। उन्होंने परमात्मा के ही तीन चेहरे बना दिये, एक के तीन चेहरे, त्रिमूर्ति बना दी। ब्रह्मा निर्माता है और विष्णु सम्हालने वाले और शिव विध्वंस करने वाले—मगर एक ही परमात्मा के तीन चेहरे हैं। इन तीनों को एक परमात्मा में डाल दिया। तर्क कहेगा कि जो बनाता है, वह मिटाएगा क्यों? अतर्क कहता है कि जो बनाता है, उसे मिटाना ही पड़ेगा, नहीं तो बन कैसे सकेगा? तुम चाहते हो जन्म तो परमात्मा ने दिया और मृत्यु कोई और कहीं से आती है, दुश्मन से आती है। जिससे जन्म आता, उसी से मृत्यु आती है। जो तुम्हें भेजता, वही एक दिन तुम्हें बिदा कर लेता। सब उसका है। लेकिन जब सब उसका है, तो अड़चनें खड़ी होंगी, क्योंकि तब चीजें साफ-सुथरी न रह जाएंगी।

तर्क की दुनिया में चीजें साफ-सुथरी होती हैं। तर्क की दुनिया ऐसी है जैसे तुम्हारे आंगन में लगा बगीचा—सब साफ-सुथरा है। अतर्क की दुनिया ऐसी है जैसे

जंगल—वहां कुछ भी साफ-सुथरा नहीं है, सब उलझन है। तुम यह जानकर चकित होओगे कि जो बात बिलकुल साफ-सुथरी मालूम पड़े, समझ लेना आदमी की बनायी हुई है। जो बात बिलकुल साफ-सुथरी मालूम पड़े, समझ लेना सत्य नहीं हो सकती। साफ-सुथरापन और सत्य साथ-साथ नहीं जाते। साफ-सुथरापन चाहिए हो तो सत्य को सूली चढ़ा देनी होती है। सत्य की कीमत पर साफ-सुथरापन होता है। और अगर सत्य चाहिए हो, तो सत्य तो रहस्य है, साफ-सुथरा नहीं है। सत्य तो बड़ा जटिल है और उलझा हुआ है। गुत्थी है, जो सुलझाए नहीं सुलझी और सुलझाए नहीं सुलझेगी। जो कभी नहीं सुलझेगी। जिसका होना ही रहस्यपूर्ण है। हम कभी उसे जान न पाएंगे। और हम कभी ठीक-ठीक अपने कटघरों में सत्य को बिठा न पाएंगे। हमारी कोटियों में हम सत्य को बांट न पाएंगे।

परमात्मा को जो अतीत में अलग-अलग ढंगों से कहा गया, वे तर्क की सरणियां हैं। एक तर्क पकड़ो तो परमात्मा के लिए एक तरह की अभिव्यक्ति देनी जरूरी हो जाएगी। दूसरा तर्क पकड़ो, तो परमात्मा को दूसरी तरह की अभिव्यक्ति देनी जरूरी हो जाएगी। मैं अतर्क्य हूं। मैंने कोई तर्क की लकीर नहीं पकड़ी है। परमात्मा जैसा है, अनंत रहस्यपूर्ण, उसे अनंत मार्गों से कह रहा हूं। और आज यह संभव है। यह कल संभव नहीं था। मनुष्य जाति प्रौढ़ हुई है, चेतना विकसित हुई है। लेकिन तुम्हारे मन में एक धारणा बिठायी गयी है कि सतयुग पहले था और अब कलियुग है। और मैं तुमसे उलटा करने को कह रहा हूं, मैं कह रहा हूं, कलियुग पहले कभी रहा होगा, अब सतयुग है। बेचैनी मालूम होती है। क्योंकि बड़ी रूढ़ धारणा है कि स्वर्णयुग बीत चुका है।

दुनिया में तीन तरह के लोग हैं। एक, जिनका स्वर्णयुग बीत चुका है। तथाकथित धार्मिक लोग; हिंदू, मुसलमान, ईसाई, यहूदी, जैन, बौद्ध, इनका स्वर्णयुग बीत चुका है, दुनिया उतार पर है, पतन हो रहा है। इसलिए ईसाइयत को डार्विन का विकासवाद जंचा नहीं। क्योंकि डार्विन का विकासवाद कहता है, विकास हो रहा है। और ईसाइयत कहती है, पतन हो रहा है। आदम का पतन हुआ तो तब से पतन जारी है। दुनिया के किसी धर्म ने डार्विन के विकासवाद को अंगीकार नहीं किया। क्योंकि दुनिया के सभी धर्म मानते हैं, उनका अतीत सुंदर था। स्वर्णकलश चमकते हुए उन्हें अतीत में दिखायी पड़ते हैं। कल्पना का जाल है वह अतीत, वैसा अतीत कभी था नहीं। तुम पुरानी से पुरानी किताब देखोगे तो तुम्हें समझ में आ जाएगा। पुरानी से पुरानी किताबें यह कहती हैं कि स्वर्णयुग पहले था। एक किताब नहीं है मनुष्य के पास, जो कहती हो स्वर्णयुग अभी है। वेद भी कहते हैं, स्वर्णयुग पहले था। लाओत्सु की किताब भी कहती है—ताओ-तेह-किंग—कि स्वर्णयुग पहले था। धन्य थे वे प्राचीन पुरुष। जो सबसे पुराना शिलालेख मिला है बेबीलोन में, छह हजार साल पुराना—वह भी कहता है : धन्य थे वे पुराने लोग।

तो ये पुराने लोग कब थे? एक भी प्रमाण नहीं है जब कोई कहता हो कि ये पुराने लोग अभी है, यह स्वर्णयुग अभी हैं। नहीं, इसके पीछे कुछ मनोवैज्ञानिक भ्रांति है।

इसके पीछे वैसी ही मनोवैज्ञानिक भ्रांति है जैसा तुम अपने पिता से बात करो तो पिता कहेंगे, अरे! वे दिन जो हमने देखे तुम क्या खाक देखोगे! और तुम पिता के पिता से पूछो, वह भी यही कहते हैं कि अरे! इसने क्या देखा है? यह मेरे बेटे ने क्या देखा? स्वर्णदिन हमने देखे! और तुम पूछते चले जाओ, और हर बाप यह कहेगा कि स्वर्णदिन हमने देखे, अतीत में। दिन गये, असली मजे के दिन तो गये। अब तो दुख के दिन हैं।

इसके पीछे मनोविज्ञान है। मनोवैज्ञानिक इसके विश्लेषण में जाता है, तो तथ्य पकड़ में आता है। तथ्य यह है कि हर आदमी को ऐसा खयाल है कि बचपन सुंदर था। और बचपन बीत गया है। कविताएं हैं, कहानियां हैं बचपन के सौंदर्य और बचपन की स्तुति में लिखी गयी कि वे प्यारे दिन! हर आदमी को यह खयाल है कि बचपन बड़ा सुंदर था। इस खयाल में पीछे कुछ कारण है। एक तो यह, कोई उत्तरदायित्व नहीं था, कोई चिंता नहीं थी, कोई फिक्र-फांटा नहीं था; न काम था न धाम था, जिंदगी मौज ही मौज थी, विश्राम ही विश्राम था। जिंदगी एक खेल थी, क्रीड़ा थी। फिर जिंदगी में अड़चनें आनी शुरू हुई। जैसे-जैसे उम्र बढ़ी, स्कूल जाना पड़ा। स्कूल से किसी तरह छूटे तो बाजार, घर-गृहस्थी—जाल बढ़ता गया। चिंता का बोझ गहन होता गया। सिर भारी होता गया। फिर वे बचपन के दिन जब तितलियों के पीछे दौड़ते थे, तुलना में बड़े सुंदर मालूम होने लगे। वे बचपन के दिन जब सागर के तट पर शंख-सीप बीनकर प्रसन्न हो लेते थे, बड़े स्वर्णिम मालूम होने लगे।

फिर बच्चे का मन काल्पनिक होता है। बच्चे को सपने में और सत्य में फर्क नहीं होता है। उसका सत्य और सपना मिश्रित होता है। इसलिए तुम जिस बचपन की याद करते हो, वह जरूरी नहीं कि हुआ हो। उसमें बहुत कुछ तो तुम्हारा सपना मिला हुआ है। बहुत कुछ तो तुम्हारा निर्मित किया हुआ है, बनाया हुआ है। और जितना तुम्हारे जीवन में दुख बढ़ता है, चिंता बढ़ती है, उतना ही तुम उसका संतुलन बनाने के लिए बचपन में और थोड़ा सौंदर्य बढ़ा देते हो। तुम बचपन को लीपते-पोतते चले जाते हो, रंगते चले जाते हो। आखिर आदमी को कहीं तो सहारा चाहिए। आज तो दुख है, इस दुख से शरण पाने के लिए कहीं कोई शरण-स्थल चाहिए। तो सारे दुनिया के धर्मों ने अतीत में स्वर्णयुग रखा है।

फिर एक दूसरे तरह के लोग हैं, कम्युनिस्ट हैं फेसिस्ट हैं—राजनैतिक धर्म—उनका स्वर्णयुग भविष्य में है। वे कहते हैं, उटोपोया आने को है। आएगा, अभी आया नहीं है। अभी मेहनत करनी है, संघर्ष करना है, अभी जद्दो-जहद करनी है, अभी बड़ी कठिनाई है, लेकिन अंधेरी रात कटेगी, सुबह आने वाली है। किसी को सुबह जा चुकी है, किसी की सुबह आने वाली है। ये दो तरह के लोगों की भीड़ है दुनिया में। और इन दोनों की वजह से सुबह नहीं आ पाती। क्योंकि एक कहता है, आएगी कल। कल कभी आता है? और एक कहता है, गयी कल। अब जो गयी, गयी। जो आया नहीं, वह आएगा नहीं। कल सदा कल है। एक कहता है, अतीत के गुणगान गाओ, पुरखों की स्तुति करो, वेदों और बाइबिल की पूजा करो। और दूसरा कहता है, दास कैपिटल, मार्क्स और लेनिन और एंजील्स और माओ, इनकी सुनो,

इनके द्वारा स्वर्णयुग आने वाला है। और उस स्वर्णयुग के लिए जो भी कुर्बानी करनी है, करो। एक कहता है, पुरखों के लिए मर जाओ। एक कहता है, आने वाले बच्चों के लिए मर जाओ। लेकिन तुम से कोई नहीं कहता है कि अपने लिए जीओ।

मैं तुम से वही कहना चाहता हूं कि अपने लिए जीओ। मैं तीसरे तरह का आदमी हूं। जो कहता है कि स्वर्णयुग अभी है—और अभी है तो ही कभी हो सकता है। अगर अभी नहीं है, तो कभी नहीं होगा। क्योंकि संसार में समय का एक ही ढंग है—अभी। अतीत नहीं हो चुका, भविष्य अभी हुआ नहीं, जो है हमारे हाथ में संपदा वह वर्तमान की है। और वर्तमान की संपदा ही सदा होती है। तुम्हारे पुरखों के हाथ में भी जो समय था, वह वर्तमान था। तुम्हारे बच्चों के हाथ में भी जो समय होगा, वह भी वर्तमान होगा। समय के घटने का ढंग वर्तमान है। अतीत स्मृति है, भविष्य कल्पना है।

तुम किताबों में लिखा देखते हो कि समय के तीन रूप हैं—अतीत, वर्तमान, भविष्य। वह बात गलत है। वह दृष्टि गलत है। समय का तो एक ही ढंग है—वर्तमान। स्मृति में अतीत है और कल्पना में भविष्य है, वे समय के हिस्से नहीं हैं। इन वृक्षों से पूछो, कोई अतीत है? कोई अतीत नहीं है। कोई भविष्य है? कोई भविष्य नहीं है। फूल अभी खिले और सदा अभी खिलते हैं। वृक्ष अभी हरे हैं और सदा अभी हरे होते हैं। अगर आदमी जमीन से बिदा हो जाए, तो कोई अतीत होगा? कोई इतिहास होगा? या कि कोई उटोपिया होगा? दोनों विदा हो जाएंगे। आदमी के मन के खेल थे। अस्तित्व एक ही घड़ी को जानता है, वह वर्तमान की घड़ी है।

मैं चाहता हूं कि तुम इस बात को समझो कि न तो पीछे अपने स्वर्णयुग को रखो, न आगे अपने स्वर्णयुग को रखो। दोनों हालत में तुम दुखी रहोगे, और दुख में ही मरोगे। स्वर्णयुग अभी है। और अगर जीने की कला आती हो, तो अभी आनंद बरसेगा।

मनुष्य प्रौढ़ है, इतना प्रौढ़ है जितना कभी भी नहीं था। मनुष्य पतित नहीं हो रहा है। डार्विन सच है, मनुष्य विकसित हो रहा है। यह गंगा सागर के करीब पहुंच रही है। गंगोत्री में गंगा की धारा बड़ी क्षीण है। फिर रोज-रोज बड़ी होती जाती है, क्योंकि रोज-रोज नये नाले, नये नद, नये जलस्रोत मिलते जाते हैं। आज से पांच हजार साल पहले जिनके पास वेद था उन के पास सिर्फ वेद था, उन के पास बाइबिल नहीं थी। और जिनके पास बाइबिल थी, उन के पास सिर्फ बाइबिल थी, वेद नहीं था। आज तुम धन्यभागी हो, तुम्हारे पास वेद भी है, कुरान भी है, बाइबिल भी है, धम्मपद भी है। आज बहुत सी धाराएं आकर चेतना की गंगा में मिल गयी हैं। आज की दुनिया में जो कहता है: मैं सिर्फ मुसलमान हूं, उसे अजायबघर में रख दो। आज की दुनिया में जो कहता है—मैं सिर्फ हिंदू हूं, वह आदमी जिंदा नहीं है। आज की दुनिया में जो हिंदू, मुसलमान, ईसाई, जैन, बौद्ध, सब एक साथ नहीं है, वह आदमी ही नहीं है। आज तो सारी मनुष्य-जाति की वसीयत हमारी है। आज कुरान मेरा उतना ही है, जितना धम्मपद। और गीता मेरी उतनी ही है, जितना ताओ-तेह-किंग।

पृथ्वी एक हुई है। आदमी इकट्ठा हुआ है। सारी चेतना की अलग-अलग विकसित होती धाराएं एक गंगा में सम्मिलित हुई हैं। इसलिए आज यह संभव है कि

हम सारी अभिव्यक्तियों का उपयोग कर लें और कोई अड़चन न आए। इसलिए तो मैं जीसस पर बोलता हूं, कोई अड़चन नहीं है; महावीर पर बोलता हूं, कोई अड़चन नहीं है; बुद्ध पर बोलता हूं, कोई अड़चन नहीं है। कोई अड़चन का कारण नहीं है। अड़चन खड़ी होगी तर्कवादी को। वह कहेगा, जीसस ने ऐसा कहा और महावीर ने वैसा कहा। उसका सत्य बड़ा छोटा है। अगर जीसस का सत्य सत्य है, तो फिर महावीर असत्य हो जाते हैं।

मेरा सत्य बहुत बड़ा है। उस में जीसस ने जो कहा वह एक पहलू है, महावीर ने जो कहा वह दूसरा पहलू है। वे दोनों पहलू आपस में विपरीत हों, मगर वे एक ही सत्य के पहलू हैं। तुम्हारी पीठ और तुम्हारा चेहरा एक ही आदमी के हिस्से हैं, हालांकि एक-दूसरे के विपरीत हैं। तुम्हारी पीठ और तरफ, तुम्हारा चेहरा और तरफ; तुम्हारा बायां हाथ और तुम्हारा दायां हाथ एक-दूसरे के विपरीत हैं, और चाहो तो दोनों को लड़ा भी सकते हो, या नहीं लड़ा सकते? बाएं-दाएं हाथ को लड़ा सकते हो, इतने विपरीत हैं। और बाएं-दाएं हाथ का एक ही काम में सहयोग भी ले सकते हो। तुम पर निर्भर है। बाइबिल और कुरान लड़ेंगे, या साथ-साथ खड़े होंगे; तुम्हारा बायां और दायां हाथ लड़ेगा कि संयुक्त सहयोग करेगा, यह तुम पर निर्भर है।

जितना प्रौढ़ आदमी होगा, उतनी मनुष्य-जाति की सारी संपदा को अपनी मानेगा। यह सब तुम्हारा है। इस में कुछ भी छोड़ने जैसा नहीं है। और कहीं अगर तुम्हें अड़चन मालूम होती हो, तो उस तर्क को छोड़ देना जिसके कारण अड़चन मालूम होती हो। मगर इस विराट में भेद मत करना। सब ठीक कहते हैं। सब के ठीक उनके समय के ठीक हैं। उनके समय में जो बात कही जा सकती थी, उन्होंने कही। मेरे समय में जो बात कही जा सकती है, वह मैं तुमसे कह रहा हूं।

यहां मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं: अदभुत बात है, यहां हिंदू हैं, मुसलमान हैं, ईसाई हैं, जैन हैं, बौद्ध हैं, सब तरह के लोग हैं। आपने बड़ा समन्वय किया! मैं उनसे कहता हूं, समन्वय की बात ही नासमझी की। समन्वय का तो मतलब यह होता है कि हमने विरोध मान ही लिया। समन्वय का अर्थ होता है: विरोध था, हमने तालमेल जुड़ा दिया। मैं कहता हूं, विरोध है ही नहीं; समन्वय की बात बकवास है।

महात्मा गांधी दोहराते थे अपने आश्रम में—अल्लाह ईश्वर तेरे नाम, सबको सन्मति दे भगवान। उनको थोड़ा-न बहुत शक रहा होगा। नहीं तो दोनों नाम उसके हैं, इसको रोज-रोज दोहराने की कोई जरूरत नहीं थी। हैं ही, इसको दोहराना क्या? तुम रोज-रोज यह तो नहीं कहते कि यह दीवार दीवार है। तुम रोज-रोज यह तो नहीं कहते कि मैं पुरुष हूं, मैं स्त्री हूं। कोई जरूरत नहीं है। और जब महात्मा गांधी को गोली लगी तब पता चल गया कि मुंह से हे राम निकला! अल्ला-ईश्वर तेरे नाम खो गये। भीतर पड़ा हिंदू गहरे में पड़ा हिंदू प्रकट हुआ।

गांधी ने कुरान की कुछ आयातों की प्रशंसा की है। लेकिन उस प्रशंसा में बेईमानी है। वे आयतें वे ही हैं जो गीता से मेल खाती हैं। वह गीता की ही परोक्ष रूप से प्रशंसा है। जो आयतें गीता के विपरीत हैं, गांधी ने उनकी बात ही नहीं उठायी। यह

कोई बात हुई! गीता में जो-जो है, वह ठीक है, अगर कुरान में भी है तो ठीक होना ही चाहिए, क्योंकि गीता ही जब कह रही है। और गीता सत्य का मापदंड है। यह कोई समन्वय हुआ? यह ऊपर की लीपा-पोती हुई। यह राजनीति है। इस राजनीति का कोई मूल्य नहीं है।

इसलिए गांधी जिन्ना को धोखा न दे पाए। गांधी हिंदू थे तो जिन्ना मुसलमान था। और जितना ही मैंने इस पर सोचा है, मैंने पाया है, अगर गांधी न होते तो शायद हिंदुस्तान-पाकिस्तान न बंटता। क्योंकि गांधी की थोथी समन्वय की बात जिन्ना को कभी जमी नहीं। वह समन्वय थोथा था, ऊपर-ऊपर था; भीतर गहरे में हिंदू धारणा थी। हर चीज में हिंदू धारणा थी। हां, इतनी कुशलता थी कि हिंदू धारणा जहां-जहां किसी और से मेल खाती हो, उसको भी ठीक कहते थे। मगर उसको ठीक कहने का कोई प्रयोजन ही नहीं रहा। दूसरे को ठीक कहने का अर्थ तभी है, जब तुम्हारे विपरीत धारणा जाती हो। लेकिन तब समन्वय की बात नहीं उठती। तब तो सत्य एक है, उसके अनेक पहलू हैं। सब पहलू अपने ढंग से सही हैं, और कोई पहलू पूरे सत्य का प्रतिपादक नहीं है। और कोई पहलू पूरे सत्य का दावा नहीं कर सकता—न गीता, न कुरान, न बाइबिल; न मैं, न तुम, कोई कभी पूरे सत्य का दावा नहीं कर सकता। सत्य इतना विराट है कि उसके नये-नये पहलू रोज-रोज उघड़ते रहेंगे। मेरे बाद लोग होंगे और वे सत्य के और-और नये पहलू खोजेंगे। आदमी विकसित होता रहेगा, सत्य की नयी-नयी भूमियां टूटती रहेंगी। सत्य के नये-नये लोक खोजे जाते रहेंगे। और इसका कोई अंत नहीं है। यह यात्रा अनंत है। इसलिए कहीं सत्य समाप्त नहीं होता। जितना हमने जाना, उतना सत्य है, उसके पार भी सत्य है जो दूसरे जानेंगे, जो कभी जाना जाएगा।

समन्वय की बात नहीं है, विराट पर दृष्टि रखने की बात है। अनंत पर दृष्टि रखने की बात है।

इसलिए मैं इन सारी अभिव्यक्तियों का उपयोग करता हूं। ऐसी अभिव्यक्तियां जो कि बिलकुल ही विरोधी हैं, फिर भी मुझे विरोध नहीं दिखायी पड़ता। क्योंकि मैं दोनों के भीतर छिपे हुए एक ही परमात्मा को देखता हूं। जैसे समझो, इतनी विरोधी बात है—महावीर ने कहा : आत्मा ही एकमात्र ज्ञान है; जिसने आत्मा को जाना, उसने सब जाना; और बुद्ध ने कहा : आत्मा ही एकमात्र अज्ञान है; और जिसने आत्मा को माना, उस से बड़ा कोई अज्ञानी नहीं है। अब इससे विपरीत और क्या दो बातें खोजोगे? लेकिन फिर भी मैं तुमसे कहता हूं : ये दोनों पहलू एक ही सत्य के हैं। महावीर जब कहते हैं : आत्मा, तो एक पहलू प्रकट करते हैं। क्योंकि सत्य की परम अनुभूति में ही पता चलता है कि मैं हूं। मेरा होना तब तक तो रेत पर बना है, जब तक मुझे सत्य की अनुभूति नहीं हुई। तब तक तुम्हारे होने का क्या अर्थ है?

तुम से कोई पूछे कि तुम कौन हो, तो तुम क्या उत्तर दोगे? नाम बताओगे। लेकिन नाम तो सब झूठे हैं, रखे हुए हैं, जब तुम पैदा हुए थे। राम रख लेते तो चल जाता, रहीम रख लेते तो भी चल जाता। कुछ भी नाम रख देते तो चल जाता। सब

नाम रखे हुए हैं। नाम आज बदल सकते हो। जितनी दफे जिंदगी में नाम बदलना चाहो, बदल सकते हो। नाम का कोई भी मूल्य नहीं है। तुम से कोई पूछता है, आप कौन हैं, तो तुम नाम बता सकते हो। बहुत से बहुत अपनी तस्वीर बताओगे कि यह मैं हूं। पासपोर्ट पर यही तो होता है—नाम होता है और तस्वीर होती है। मगर तुम्हारी तस्वीर तुम हो? तुम्हारी तस्वीर भी तो कितनी बार बदल चुकी। जब तुम छोटे थे, तुम्हारी एक तस्वीर थीं; जब तुम जवान हुए दूसरी तस्वीर हो गयी; अब तुम बूढ़े हो, तीसरी तस्वीर हो गयी; रोज-रोज तस्वीरें बदलती गयी हैं। तुम तस्वीरों की एक धारा हो। सब बह रहा है। कौन सी तस्वीर तुम हो?

थोड़ा समझो।

पहले दिन जब तुम्हारे मां और पिता के वीर्याणु गर्भ में मिले, उसकी तस्वीर खींची जाती, वह भी तुम्हारी तस्वीर थी। उसको देखने के लिए खुर्दबीन की जरूरत पड़ती, उसको ऐसे देखा भी नहीं जा सकता। और कुछ खास दिखायी भी न पड़ता। पहला अणु—उस अणु में न नाक थी, न कान था, न चेहरा था, न रंग था, न रूप था। वह अणु तुम थे, वह तुम्हारी तस्वीर थी। आज तुम्हें कोई वह तस्वीर बताए, तो तुम मानने को राजी नहीं होओगे कि यह मैं कभी था।

फिर तुम मां के पेट में बढ़ते रहे। वैज्ञानिक कहते हैं कि तुमने वे सारी सीढ़ियां पर कीं, जो मनुष्य ने अपने विकास के अनंत काल में पार कीं। सबसे पहले तुम मछली जैसे थे मां के पेट में, और आखिर-आखिर तक तुम बंदर जैसे हो गये। वे सब तस्वीरें तुम्हारी थीं। जिस दिन तुम पहले दिन पैदा हुए थे, आज अगर वह तस्वीर तुम्हें बतायी जाए, क्या तुम पहचान सकोगे कि यह तस्वीर मेरी है? मगर तुम्हारी थी। और ऐसे ही जिस तस्वीर को तुम आज अपनी कह रहे हो, यह भी कल तुम्हारी न रह जाएगी। तुम कौन हो? तुम्हारा नाम? तुम्हारा रूप? तुम कौन हो? तुम्हारा धन? तुम्हारा बैंक बैलेंस? तुम्हारी तिजोड़ीं? तुम्हारी दुकान? तुम्हारा काम? तुम्हारा व्यवसाय? तुम कौन हो? ये सब बातें तुम्हारे कौन को प्रकट नहीं करतीं।

महावीर कहते हैं: जब सत्य जाना जाता है, जब कोई अपने अंतर्तम में प्रविष्ट हो जाता है, तब पहली बार जानता है कि मैं कौन हूं। वह उत्तर ही आत्मा है। बुद्ध कहते हैं: जब कोई पहली दफा उस जगह पहुंचता है जहां पता चलता है कि क्या है, तो वहां एक बात पता चलती है कि हूं तो जरूर, लेकिन मैं कोई भी नहीं मैं जैसा कोई भाव नहीं उठता वहां; सिर्फ शुद्ध अस्तित्व का बोध होता है। अहंकार की वहां कोई धारणा नहीं होती। चूंकि अहंकार की कोई धारणा नहीं होती, इसलिए बुद्ध कहते हैं वहां आत्मा नहीं होती।

दोनों सही कहते हैं।

महावीर कहते हैं: वहां पहली दफा आत्मा होती है; उसके पहले सब झूठ। और बुद्ध कहते हैं: उसके पहले तो सब झूठ था ही, यह आत्मा शब्द भी उसके पहले ही पकड़ा गया है, यह भी वहां नहीं होता। वहां निराकार होता है, निर्गुण होता है, शून्य-भाव होता है। दोनों ठीक कहते हैं। अगर दोनों को एक साथ कहो तो

विरोधाभासी वक्तव्य हो जाएगा।

जीसस ने यही कहा है। जीसस ने कहा है: जो अपने को खोएगा, वह पाएगा। जो अपने को मिटाएगा, हो जाएगा। जो अपने को बचाएगा, खो देगा। अगर अपने को पाना हो, तो अपने को मिटा दो। जीसस के वक्तव्य में बुद्ध और महावीर की, दोनों की बातें आ गयीं। बीज अपने को मिटाता है तो वृक्ष हो जाता है। बूंद अपने को मिटाती है तो सागर हो जाती है। मिटना और होना एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। महावीर ने एक पहलू पर जोर दिया, बुद्ध ने दूसरे पहलू पर जोर दिया। और दोनों के जोर देने के अपने-अपने कारण थे, अपना-अपना प्रयोजन था। और दोनों के जोर देने को हम गलत नहीं कह सकते। दोनों बातें सच हैं। दोनों बातें एक साथ सच हैं।

जब सारे शास्त्र एक साथ सच हो जाते हैं, तब तुम समझना कि तुम्हारे जीवन में छोटी-छोटी सीमाएं टूटीं, छोटे-छोटे आंगन मिटे, तुम आकाश बने। जिस दिन तुम एक ही साथ बाइबिल, कुरान और वेद के लिए गवाही दे सको, उस दिन समझना कि तुम प्रौढ़ हुए, उस दिन बचपन गया।

आज मनुष्य प्रौढ़ है। इसलिए यह संभव है कि जो मैं कह रहा हूं वह कहा जा सके। मेरी बातों में तुम्हें बहुत विरोधाभास मिलेंगे। अनिवार्य हैं। अगर सत्य कहना हो तो विरोधाभास होगा, पैराडाक्सिकल होगा। अगर असत्य कहना हो तो विरोधाभासी नहीं होता, कोई जरूरत नहीं है असत्य के विरोधाभासी होने की। असत्य साफ-सुथरा होता है। सत्य रहस्यपूर्ण है।

मगर यही तो मजा है सत्य का कि वह रहस्यपूर्ण है। मैं चाहूंगा कि तुम भी इस रहस्य में उठो। तर्क के साफ-सुथरेपन को छोड़ो, तर्क की बनायी हुई बगिया को छोड़ो, सत्य के जंगल में प्रवेश करो। वहीं आनंद है, क्योंकि वहां परमात्मा के हाथ की छाप है। तुम्हारे बगीचे में सब कृत्रिम है।

मेरे इस बगीचे में लोग आते हैं, वे कहते हैं, यह कैसा जंगल जैसा है। जानकर यह जंगल जैसा है। मैं भी जंगल जैसा हूं।

तुम ने पश्चिम के बगीचे देखे? पश्चिम के बगीचे बिलकुल कटे-छंटे होते हैं। इसी अर्थ में कुरूप होते हैं। सिमिट्रिकल होते हैं। एक तरफ एक वृक्ष लगाया; तो ठीक वैसा वृक्ष दूसरी तरफ लगाया, दोनों को एक जैसा काटा। जंगल में कहीं तुम दो वृक्ष एक जैसे पा सकते हो? एक जैसे कटे, एक जैसे लगे। जंगल की खूबी क्या है? जंगल की खूबी यह है कि वहां सिमिट्री नहीं है।

झेन बगीचा होता है जापान में, उस में सिमिट्री नहीं होती। वह जंगल के करीब होता है। और वहां तुम ज्यादा सौंदर्य पाओगे, क्योंकि सौंदर्य की जब भी सीमा बनायी जाती है तभी सौंदर्य सिकुड़ जाता है। सौंदर्य जीता ही असीम में है। एक पक्षी को पिंजड़े में बंद करके रख दिया है, यह भी पक्षी है माना, मगर क्या बहुत पक्षी है? ज्यादा पक्षी नहीं। क्योंकि पक्षी उतना ही होता है जितना खुला आकाश उसे उपलब्ध होता है। पक्षी का सौंदर्य तब है, जब वह अपने पंखों पर उड़ा होता है। जब सारा आकाश उसे उपलब्ध होता है, और जहां जाना हो वहां जाने की स्वतंत्रता होती है।

और जैसा होना हो, वैसे होने की स्वतंत्रता होती है। उड़े तो उड़े, न उड़े तो न उड़े, लेकिन सब उसके ऊपर निर्भर होता है, सब उसकी अंतरात्मा पर निर्भर होता है।

इस पक्षी को तुमने सोने के पिंजड़े में बिठा दिया। पिंजड़ा तुमने बहुत कारीगरी से बनाया, साफ-सुथरा भी रखते हो—ऐसा साफ-सुथरा यह पक्षी अपने नीड़ को नहीं रख सकता था—लेकिन फिर भी क्या तुम्हारे साफ-सुथरे पिंजड़े में पक्षी रहने को राजी होगा? चाहेगा उड़ जाए आकाश में।

तर्क पिंजड़े जैसा है। साफ-सुथरा, सोने का बना, हीरा जड़ा। अतर्क खुले आकाश जैसा है। तर्क के साथ सुरक्षा मालूम होती है, क्योंकि तर्क तुम्हारी मुट्ठी में होता है। सत्य के साथ असुरक्षा मालूम होती है, क्योंकि तुम सत्य की मुट्ठी में होते हो। इसलिए लोग तर्क को पकड़ लेते हैं। तर्क है अंधे आदमी की लकड़ी, लंगड़े आदमी की बैसाखी। फेंको बैसाखियां, खतरा मोल लो, क्योंकि बिना खतरा मोल लिये कोई सत्य तक नहीं पहुंचता है।

मैं तुम्हें सब पहलुओं से कह रहा हूं, एक बात याद दिलाने को कि तुम्हारे मन में यह बात साफ हो जाए कि किसी एक पहलू को पकड़ना संकीर्ण होना है। सारे पहलुओं को साथ आने दो। आने दो सब लहरों को, आने दो सब दिशाओं से परमात्मा को, आने दो सब रूपों में। और तुम उसे हर रूप में पहचानने में सफल हो जाओ, यह मेरी चेष्टा है। जिस दिन तुम उसे हर रूप में पहचानने में सफल हो जाओगे, तुम उसे सब जगह पाओगे—क्योंकि सब रूप उसके हैं। वृक्षों में भी वही, पहाड़ों में भी वही, चांद-तारों में भी वही, लोगों में भी वही। तुम्हारे पत्नी और तुम्हारे पति और तुम्हारे मित्र और तुम्हारे शत्रु में भी वही, जरा तुम्हारी आंख पहचानना शुरू कर दे।

दूसरा प्रश्नः आपने कहा कि नेति-नेति ज्ञान का उद्घोष है और इति-इति भक्ति का। भक्ति के इस उद्घोष में तो अंधेरा, कल्मष और पाप, सब आ जाते हैं। क्या परमात्मा सब है?

तुम्हारा मन हिम्मत ही नहीं कर पाता। तुम परमात्मा पर सीमा लगाने को बड़े आतुर हो। परमात्मा असीम हो, इससे तुम्हें भय लगता है। कि कहीं असीम के साथ दोस्ती की, तो खो न जाएं। तुम चाहते हो कि साफ-सुथरा हो जाए परमात्मा के संबंध में सब। हम उसे भी जैसे हम कबूतरों को उनके दड़बों में बंद कर देते हैं, ऐसे परमात्मा को भी एक दड़बे में रख दें। कैटेगरी, एक कोटि बना दें उसकी, कि यह रहा परमात्मा, और यह रही पहचान, और सम्हालो अपना पासपोर्ट—यह तुम्हारा नाम है और यह तुम्हारी शकल है, और भूल मत जाना, और यहां-वहां पासपोर्ट गंवा मत देना—तो हम निश्चिंत हो जाएं। तुम देखते हो, तुम्हें राह में कोई आदमी मिल जाता है तो तुम उस से क्या पूछते हो? तुम निश्चिंत होने के लिए पूछते हो—ट्रेन में कोई आदमी मिल जाता है, अजनबी आदमी, तुम जल्दी से निश्चिंत होना चाहते हो—कौन है? आपका नाम? कहां से आ रहे हैं? जाति? कौन सा धंधा करते हैं? तुम क्या कर

रहे हो? तुम यह कर रहे हो कि आदमी पड़ोस में बैठा, पक्का तो हो जाए—डाकू है, कि चोर है, कि और भी खतरनाक राजनीतिज्ञ है, कि व्यवसायी है, कौन है? निश्चिंत हो जाएं इसके बाबत। यह बगल में ही बैठा है, जेब भी इसके पास ही है हमारी, कब हाथ डाल दे? गर्दन भी पास है, रात सोना भी पड़ेगा, यह आदमी यहां बैठा है।

मैं एक दफा एक ट्रेन में सवार हुआ। बंबई के स्टेशन पर मित्र मुझे छोड़ने आए थे। उस डिब्बे में एक सज्जन और थे, वे देख रहे थे सारे लोग, फूल मालाएं, लोग चरण छू रहे। वह प्रतीक्षा कर रहे थे कि जैसे ही मैं अंदर आऊं, गाड़ी चले। जैसे ही मैं अंदर आया और गाड़ी चली, वह एकदम साष्टांग उन्होंने दंडवत की कि महात्मा जी, बड़ी ईश्वर की कृपा कि आपका सत्संग मिल गया। मैंने कहा, आप बड़ी भूल में हैं, मैं हिंदू महात्मा नहीं हूं। मैं मुसलमान फकीर हूं। उनका चेहरा देखने लायक था। मुसलमान के पैर छू लिये! बोले, नहीं-नहीं, ऐसा कैसे हो सकता है? जैसे कि मुझे मुसलमान होने में कोई अड़चन है—ऐसा कैसे हो सकता है? नहीं-नहीं आप मजाक कर रहे हैं। अब वह अपने को समझाने लगे कि आप मजाक कर रहे है। मैंने कहा, मजाक क्यों करूंगा? सच्ची बात आप से कह दी, वैसे आपकी मर्जी, हिंदू मानना हो, हिंदू मान लो। अब उनको बड़ी बेचैनी हो गयी। पैर छू लिये! मैंने कहा, आपको ज्यादा बेचैनी हो तो मैं आपके पैर छू लूं; तो उधार खतम। नहीं-नहीं, उन्होंने कहा, ऐसी कोई बात नहीं है। मगर आप लगते तो हिंदू हैं। मैंने कहा, बड़ी मुश्किल है। मैं कहता हूं कि मैं मुसलमान हूं, आप कहते हैं कि आप लगते हिंदू हैं। आपको सिर्फ अपना बचाव करना है, वह जो पैर छू लिये।

फिर वह अपना अखबार पढ़ने लगते। फिर बार-बार देखते, कोशिश करते कि आदमी हिंदू है कि मुसलमान है। मैंने उनसे कहा, नाहक न परेशान हों, मैं हिंदू ही हूं, ऐसे ही मजाक कर रहा था। फिर उन्होंने दंडवत किया। उन्होंने कहा कि वह मैं जानता ही था। आप बिलकुल हिंदू मालूम पड़ते हैं। जो लोग छोड़ने आए थे, वे भी हिंदू थे। आपने भी खूब मजाक किया! उन्होंने फिर जब पैर छू लिये, मैंने कहा, अब यह और झंझट हो गयी। मैं मजाक अब कर रहा था। तब जरा बात ज्यादा हो गयी। तब तो वह थोड़े भयभीत हो गये कि पता नहीं यह आदमी पागल है! जैसे ही टिकट कलेक्टर आया, वह बाहर गये और उस से बोले कि मुझे दूसरे कमरे में जाना है। टिकट कलेक्टर ने पूछा, क्या तकलीफ है आपको? कहा, तकलीफ की मत पूछो, मैं इसमें सो न सकूंगा।

तुम निश्चिंत होना चाहते हो। अगर हिंदू है तो फिर तुम पूछते हो, ब्राह्मण हो कि क्षत्रिय कि वैश्य? तुम कोशिश कर रहे हो कि इस आदमी को ठीक से एक हिसाब में बिठा लें तुमने हिसाब बना रखे हैं। अगर तुम हिंदू हो तो तुम सोचते हो—मुसलमान खतरनाक! अगर तुम मुसलमान हो तो तुम सोचते हो—हिंदू बेईमान, चालबाज, धूर्त! अगर तुम हिंदू हो और ईसाई है, तो तुम सोचते हो—म्लेच्छ, अपवित्र! अगर तुम ईसाई हो और दूसरा हिंदू है, तो तुम सोचते हो—भ्रष्ट, अधार्मिक, भटका हुआ, काफिर। तुमने कोटियां बना रखी हैं। जब भी

एक नया आदमी मिलता है, तुम उसको कोटि में बिठा देते हो। कोटि में बिठाने से तुम्हें निश्चिंतता हो जाती है। क्योंकि अब तुम जानते हो इस आदमी के साथ कैसा व्यवहार करना, और इससे क्या अपेक्षा रखनी। और मजा यह है कि सब कोटियां झूठी हैं। यह आदमी तुम्हें पहली बार मिला है, और ऐसा आदमी तुम्हें कभी नहीं मिला, और दो आदमी दुनिया में एक-जैसे नहीं होते, इसलिए सब कोटियां फिजूल हैं। दो आदमी एक-जैसे होते ही नहीं। परमात्मा डुप्लीकेट बनाता ही नहीं। परमात्मा के उस विराट से आदमी ऐसे नहीं आते जैसे फोर्ड के कारखाने से कारें निकलती हैं—कतार बंधी एक सी कारें।

प्रत्येक आदमी अनूठा है, विशिष्ट है। कोटियां व्यर्थ हैं। आदमी पर कोटि नहीं लगती, लेकिन तुम परमात्मा पर भी कोटि लगाना चाहते हो। तुम अपनी धारणाएं अपने पर तो थोपे ही हुए हो, तुम परमात्मा पर भी थोपना चाहते हो। तुम कहते हो, जिसको मैं शुभ मानता हूं, वह तो परमात्मा में हो तो मैं आज्ञा दूंगा; लेकिन जिसको मैं अशुभ मानता हूं, उसको कैसे परमात्मा मैं मानूं?

तुम्हारे शुभ-अशुभ की धारणा का मूल्य कितना है? क्या शुभ है, क्या अशुभ है? किस बात को तुम शुभ कहते हो? तुम ने जाना कैसे कि शुभ क्या है? किस बात को तुमने अशुभ तय कर लिया है, कैसे तय कर लिया है? कोई आदमी मर गया तो अशुभ है? इससे सिर्फ इतना ही सिद्ध होता है कि तुम्हारी जीवेषणा प्रबल है और कुछ नहीं। तुम सदा जीना चाहते हो, इसलिए मौत को अशुभ मानते हो। इससे मौत अशुभ नहीं होती, इससे सिर्फ तुम्हारी जीवन की प्रबल वासना सिद्ध होती है। तुम सदा जीना चाहते हो। हालांकि तुम्हारे जीवन में कुछ भी नहीं, मगर अपने को घसीटे रखना चाहते हो। किसी भी तरह जीना है। किसी भी कीमत पर जीना है। जीना तो है ही, चाहे नालियों में सड़ना पड़े, चाहे भूखों मरना पड़े, चाहे कैंसर से दबा रहना पड़े, जीना तो है ही। जीना शुभ है, जीवन शुभ है और मृत्यु अशुभ है।

तो सवाल उठता है कि परमात्मा कैसे मृत्यु का देने वाला हो सकता है? नहीं-नहीं, मृत्यु कहीं और से आती होगी। कोई शैतान होगा स्रोत मृत्यु का। तुम कहते हो, फूल तो सुंदर है, कांटे सुंदर नहीं हैं। मगर यह तुम्हारी धारणा है। तुम्हारी धारणा परमात्मा मानने को मजबूर नहीं है। अच्छा तो यह हो कि तुम भी उसी तरह निर्धारणा में हो जाओ जैसे परमात्मा है। फूल भी सुंदर हैं और कांटे भी सुंदर हैं।

तुमने कांटे का सौंदर्य नहीं देखा? छोटी सी बात से तुम अटक गये हो कि कभी-कभी कांटा तुम्हारे हाथ में चुभ जाता है। हाथ से लहू निकल आता है। लेकिन लहू का रंग और फूल का रंग एक है। जैसे तुम्हारे हाथ से लहू निकला है, ऐसे ही, ऐसे ही इस कांटों से भरी झाड़ी में गुलाब निकला है। ये कांटे उस गुलाब की रक्षा कर रहे हैं, ये उस गुलाब के दुश्मन नहीं हैं। ये उसके पहरेदार हैं, ये उसके बाडीगार्ड हैं, अंगरक्षक हैं। ये कांटे भी सुंदर हैं।

फिर तुम देखते हो, सौंदर्य की भी तो धारणाएं बदलती रहती हैं। जमाने गये जब गुलाब सुंदर हुआ करता था, अब कैक्टस सुंदर हो गया है। अब जो पढ़े-लिखे

लोग हैं, सुसंस्कृत लोग हैं, उनके घर से गुलाब विदा हो गया—गुलाब यानी बुर्जुआ। गुलाब यानी मध्यमवर्गीय। गुलाब यानी रूढ़िग्रस्त, परंपरागत लोग। अब जो आधुनिक कवि हैं, वे गुलाब के गीत नहीं गाते। गुलाब के गीत कौन गाएगा? कैक्टस! उसके सुंदर कांटों, इरछे-तिरछे कांटों के गीत गाते हैं। कैक्टस को घर में सजाते हैं—बैठकखाने में। कैक्टस पहले भी लोग लगाते थे, खेत वगैरह की बागुड़ पर लगाते थे कि जंगली जानवर भीतर प्रवेश न कर जाएं, कोई चोर न घुस जाए। अब कैक्टस बैठकखाने में आ गया। गुलाब जा चुका गुलाब प्रतीक हो गया अरिस्ट्रोक्रेसी का, आभिजात्य का। कैक्टस—सर्वहारा, प्रोलिटेरिएट, गरीब, दरिद्रनारायण।

भाषाएं बदल जाती हैं। पहले अगर परमात्मा गुलाब का फूल था, तो अब कैक्टस का पौधा है। परमात्मा के ऊपर कोई धारणा नहीं लगती। धारणाएं तुम बनाते हो। फिर तुम थक जाते हो एक धारणा से, तो धारणा बदल लेते हो, ऊब जाते हो, तो धारणा बदल लेते हो। फिर नयी धारणा कर लेते हो। उस से भी ऊब जाओगे। जो व्यक्ति सभी धारणाओं से ऊब गया, वही धार्मिक है। जो कहता है, कोई धारणा न बिठाऊंगा। मैं हूं कौन? मेरा इस अस्तित्व पर बस क्या है? मैं अपने ढांचे में क्यों बिठालना चाहूं जगत को? मैं क्यों कहूं यह कुरूप, वह सुंदर? और परमात्मा सुंदर ही होना चाहिए, कुरूप नहीं? परमात्मा न तो सुंदर है और न कुरूप है। सुंदर और कुरूप की धारणाएं मनुष्य की ईजादें हैं।

तुम जरा सोचो। तीसरा महायुद्ध हो गया और सारे आदमी समाप्त हो गये, पृथ्वी पर कुछ सुंदर होगा, कुछ असुंदर होगा? गुलाब भी होंगे, कैक्टस भी होंगे, तुम न होओगे। लेकिन तब गुलाब और कैक्टस में फर्क करने वाला कोई न होगा। तब दोनों होंगे—न सुंदर, न असुंदर। रात भी आएगी और कोई डरेगा नहीं। और दिन भी आएगा और कोई सूरज की प्रार्थना और स्तुति नहीं करेगा। जिंदगी भी चलेगी, पौधे होंगे, पक्षी होंगे और मौत भी आएगी। लेकिन न तो जिंदगी का कोई स्वागत करने वाला होगा, न मौत का कोई इनकार करने वाला होगा। आदमी गया कि सब धारणाएं गयीं। आदमी गया कि द्वंद्व गया।

तीसरे महायुद्ध की प्रतीक्षा मत करो। द्वंद्व को तुम गिरा दो अपने भीतर अभी, और तुम अचानक पाओगे कि द्वंद्व के गिरते ही न तो कुछ शुभ है, न कुछ अशुभ है। न कुछ नीति है, न कुछ अनीति है। और मैं तुमसे यह नहीं कह रहा हूं कि तुम जाकर मनुष्यों के साथ ऐसा-तैसा-कैसा भी व्यवहार शुरू कर दो। क्योंकि मनुष्य परमात्मा नहीं हैं, वे बर्दाश्त नहीं करेंगे। तुम यह मत कहना कि जब कुछ नीति नहीं, कुछ अनीति नहीं, तो बाएं क्यों चलूं? मैं दाएं चलूंगा, या बीच रास्ते में चलूंगा, जहां मौज होगी वैसे चलूंगा। वह जो पुलिस वाला खड़ा है, वह कोई परमहंस नहीं है। वह थाने ले जाएगा पकड़कर, उस पर भी ध्यान रखना। बाएं ही चलना, लेकिन इतनी बात जान लेना कि बाएं चलो कि दाएं चलो, सब व्यावहारिक है, पारमार्थिक नहीं है। इनका मूल्य व्यावहारिक है।

अमरीका में लोग दाएं चलते हैं। इससे कुछ नुकसान नहीं हुआ जा रहा। हिंदुस्तान में बाएं चलते हैं, क्योंकि अंग्रेज बाएं चलने की आदत छोड़ गये। बाएं चलो

कि दाएं चलो, लेकिन एक बात तय है कि जहां भीड़-भाड़ है, वहां कुछ नियम बनाना होगा। नियम सिर्फ व्यावहारिक है। अगर भीड़-भाड़ न हो तो नियम की कोई जरूरत नहीं होती। इसलिए छोटे देहात में बाएं चलो कि दाएं चलो, कौन फिक्र करता है? जहां मर्जी हो वहां चलो। कोई रोकने वाला भी नहीं है, कोई चिंता लेने वाला भी नहीं है। जैसे-जैसे नगर बड़ा होगा, वैसे-वैसे व्यवस्था आनी शुरू होगी। जितना महानगरी होगी, उतने नियम आ जाएंगे। जितनी भीड़ होगी, उतने नियम लाने ही पड़ेंगे। अकेला आदमी बिना नियम के जी सकता है। जब तुम दूसरे से जुड़ते हो तो नियम अनिवार्य हो जाता है। लेकिन ध्यान रखना, नियम अनिवार्य है, फिर भी व्यावहारिक है, पारमार्थिक नहीं है। उसकी कोई अंततोगत्वा सत्ता नहीं है, वह कोई सत्य नहीं है।

परमात्मा न तो सुंदर है, न असुंदर। तुम ने परमात्मा की सुंदर मूर्तियां बनायी हैं, वह तुम्हारे सौंदर्य की धारणा तुम ने परमात्मा पर बिठा दी। इसलिए तुम देखो दुनिया के अलग-अलग लोग परमात्मा की अलग-अलग ढंग की मूर्तियां बनाते हैं। क्योंकि उनकी सौंदर्य की धारणा अलग-अलग है। चीनी जब बनाएगा तो चपटी नाक बनाएगा। परमात्मा की सही, लेकिन चपटी नाक बनेगी। जब हिंदू बनाएगा, तो कश्मीरी नाक खोदेगा। जब नीग्रो, अफ्रीकी बनाएगा तो मोटे ओठ बनाएगा। क्योंकि अफ्रीकी मानता है, मोटे ओठ सुंदर। ओठों को मोटा करने के लिए अफ्रीकी औरतें और अफ्रीकी पुरुष बड़े उपाय करते हैं। पत्थर बांध-बांधकर लटकाते हैं। सौंदर्य का प्रसाधन है वह। जिसके ओठ जितने चौड़े, उतना ही उसका चुंबन गहरा और जकड़ गहरी और पकड़ गहरी होती है। पतला ओठ भी क्या खाक चूमेगा? पता ही नहीं चलेगा। उनकी धारणा में भी कुछ तो बात है।

लेकिन मोटा ओठ हमें बेहूदा लगता है। जितनी भी आर्य-जातियां हैं, उनके ओठ पतले होते हैं—इसलिए पतला ओठ सुंदर। उनकी नाक लंबी होती है, इसलिए लंबी नाक सुंदर। जितनी आर्य-जातियां हैं, उनका स्वाभाविक रंग गोरा है, इसलिए गोरा रंग सुंदर। राक्षसों को तुम काला बनाते हो, गोरा नहीं। हालांकि गोरों में भी बड़े राक्षस होते हैं, और कालों में भी देवता पुरुष मिल जाते हैं। काले और गोरे से देवता और राक्षस का क्या लेना-देना? लेकिन तुम्हारी काले की धारणा।

हेराडोटस ने कहा है : अगर गधे और घोड़े अपना भगवान बनाएं तो आदमी की शकल में नहीं बनाएंगे। स्वाभाविक। तुम अपनी धारणाएं परमात्मा पर आरोपित करते हो। अपनी धारणाओं को बिदा कर लो। तुम्हारी धारणाएं अड़ंगे हैं, बाधाएं हैं।

क्या कल्मष है? तुम कहते हो कि परमात्मा अगर सब है तो फिर अंधेरा, कल्मष और पाप, वह भी सब उसी में होगा। कौन सी चीज पाप है? अर्जुन ने कृष्ण से कहा कि मैं नहीं काटूंगा इनको, ये मेरे सगे-संबंधी, ये मेरे मित्र, ये मेरे साथ पढ़े सहपाठी ये मेरे परिवार से जुड़े हैं—चचेरे भाई हैं, ममेरे भाई हैं, हम सब साथ बड़े हुए हैं, यह सब मेरा ही परिवार बंटकर खड़ा है—आधा इस तरफ आधा उस तरफ—इनको मैं नहीं काटूंगा। उसकी पाप की एक धारणा है, कि अपनों को नहीं मारना। अगर ये अपने न होते, तो बेधड़क काटता। मगर अपने हैं, यह अड़चन है।

अर्जुन को काटने में अड़चन नहीं है, आज तक नहीं आयी थी अड़चन, महाभारत के पहले भी उसने बहुत लोग काटे थे, जिंदगीभर से ही योद्धा था। लड़ना-मारना उसकी जीवन-पद्धति थी, जीवन-शैली थी, लेकिन यह प्रश्न कभी नहीं उठा था। आज यह प्रश्न क्यों उठा? अपने को मारना, इस में अड़चन है। अपने को कैसे मारें? अपने को मारने में पाप है।

कृष्ण ने पूरी गाती में एक ही बात समझाने की कोशिश की है कि तू कौन है पाप और पुण्य का निर्णायक? कौन अपना, कौन पराया? यहां न तो कोई अपना है, न कोई पराया है। और तू कैसे मारेगा? जब तक परमात्मा ने निर्णय न ले लिया हो कि किसी को बिदा कर लेना है, तू नहीं मार सकेगा। मैं देखता हूं कि ये मर चुके हैं, सिर्फ तू एक निमित्त होगा। तू निमित्त नहीं होगा, तो कोई और निमित्त होगा। तू कर्ता बनने की धारणा छोड़।

लेकिन अर्जुन की बात बड़ी नैतिक है। वह बार-बार यही दोहराता है कि आप मारना, हिंसा, हत्या, इसको शुभ कह रहे हैं? ये अशुभ हैं। लेकिन जगत में यह अशुभ घट रहा है, विराट पैमाने पर। एक पक्षी आता है, सरकते हुए पतिंगे को खा जाता है; ऊपर से एक बाज झपट्टा मारता है, पक्षी को खा जाता है। छोटी मछली बड़ी मछली के द्वारा खायी जा रही है। सारे जगत में हर चीज एक-दूसरे का भोजन है। अगर हिंसा पाप है तो ये सारा अस्तित्व पाप से भरा है। मगर हिंसा पाप है, यह हमारी धारणा है। हिंसा क्यों पाप है? क्योंकि हम नहीं चाहते हैं, कोई हमें मारे। वह भय है भीतर कि कोई हमें मारे न। प्रकट में हिंसा पाप है ऐसा सिद्धांत बन जाता है।

इसलिए तुमने देखा, जितने कमजोर और कायर लोग होते हैं, अहिंसा परमो धर्मः के सिद्धांत को जल्दी से मान लेते हैं। और अहिंसा परमो धर्मः के सिद्धांत ने लोगों को कायर भी बनाया। इस देश में जो हजार साल तक गुलामी चली, वह न चली होती—अहिंसा परमो धर्मः! लेकिन यह बड़े मजे की बात है कि जो कहता—अहिंसा परमो धर्मः, उसमें तो इतनी हिम्मत होनी चाहिए कि मारे न, ठीक है। लेकिन मरने को तो तैयार हो। लेकिन जैन मरने को भी तैयार नहीं हैं। असल में बात ही छिपायी जा रही है। मरने का भय है, इसको सीधे-सीधे नहीं कह सकते कि हमें मारो मत, इसको ढंग से कहना होता है कि हिंसा में पाप है। मारोगे तो पाप लगेगा, नर्क में सड़ोगे। और देखो, हम भी नहीं मारते। देखो, हम पैर फूंक-फूंककर रखते हैं। लेकिन हिंसा से मुक्ति नहीं होती, सिर्फ हिंसा नये और सूक्ष्म रूप ले लेती है।

जैनों ने खेती-बाड़ी बंद कर दी, क्योंकि लगा कि इस में हिंसा होती है। पौधे में जान है, फिर पौधे को उखाड़ना पड़ेगा, फसल काटनी पड़ेगी, तो जैनों ने खेती-बाड़ी बंद कर दी। वे सब दुकानदार हो गये, उन्होंने सब ने दुकानें खोल लीं। लेकिन कभी नहीं सोचा कि वे जो दुकान पर ब्याज ले रहे हैं, वे जो दुकान पर जो लाभ ले रहे हैं, वह भी शोषण है और हिंसा है। वृक्ष काटने बंद कर दिये, आदमी काटने शुरू कर दिये। मगर काटना सूक्ष्म हो गया, ऊपर-ऊपर दिखायी नहीं पड़ता।

पुरूधो ने कहा है : सब धन चोरी है। क्योंकि सब धन में छीना-झपटी है। धन ऐसे ही है जैसे खून। जैसे खून के बिना आदमी नहीं जी सकता है, वैसे धन के बिना

मुश्किल हो जाता है। खून पीना बंद कर दिया, धन पीना शुरू कर दिया। तुम ऐसा समझो कि एक आदमी को तुम ने गुलाम बनाया और रातभर उस से पैर दबवाए, यह हिंसा है। और तुमने हजार रुपये कमा लिए। हजार रुपये से तुम चाहो तो हजार आदमियों से रातभर पैर दबवाओ। हजार रुपये से तुम चाहो तो हजार तरह के काम ले लो। हजार रुपये में कई चीजें छिपी हैं। एक गुलाम में तो एक ही गुलाम था, हजार रुपये में हजार काम छिपे हैं। तुम्हारी जेब में एक रुपया पड़ा है—किसी से पैर दबवाओ, एक गिलास दूध पी लो, कि सिर की चंपी करवाओ, कि किसी से नाक रगड़वाओ—कहो कि तीन दफे नाक रगड़ो, रुपया दूंगा—या जो भी चाहो, एक बोझ ढुलवाओ, किसी की गर्दन पर बैठ जाओ, किसी से रिक्शा चलवाओ, तुम्हारा एक रुपया कई चीजें लिये बैठा है। रुपये की बिसात बड़ी है। एक आदमी को तुम गुलाम बना लो, उस से कोई ज्यादा काम नहीं ले सकते, सीमा है। मगर एक रुपये की सीमा बड़ी है।

इसीलिए आदमी से भी ज्यादा मूल्यवान रुपया हो गया। सब चीजों से मूल्यवान रुपया हो गया। क्योंकि रुपये के विकल्प बहुत छिपे हैं, एक रुपये में न मालूम कितनी बातें छिपी हैं। जरा हुक्म दो और चीजें हाजिर हो जाएंगी—चाय चाहिए, चाय; शरबत चाहिए, शरबत; ठंडा तो ठंडा, गर्म तो गर्म, आदमी तो आदमी, औरत तो औरत, जो चाहिए! वह एक रुपया तुम्हारी जेब में क्या पड़ा है, तुम सारी दुनिया को अपनी जेब में रखे हुए हो। एक दफा यह बात समझ में आ गयी, कौन खेती-बाड़ी करे फिर! फिर आदमी की खेती-बाड़ी शुरू हुई। फिर आदमी की लोग फसलें काटने लगे। और नारा जारी रहा—अहिंसा परमो धर्मः। और नारे के नीचे हिंसा ने नये रूप ले लिये।

कृष्ण अर्जुन से कह रहे हैं: अगर परमात्मा को हिंसा स्वीकार है, तो तू परमात्मा से ऊपर उठने की कोशिश मत कर। अगर उसके इस जीवन-व्यवस्था में हिंसा अनिवार्य है, तो ठीक ही होगी। हम कौन हैं निर्णायक? कौन सी चीज पाप है? कैसे तुम तय करते हो कि यह पाप? एक ही पाप है मेरे देखे, और वह है—अज्ञान में जीना। फिर उस से सारे पाप निकलते हैं। परमात्मा—जैसे ही तुम ज्ञान में जीना शुरू करते हो—ध्यान में जीना शुरू करते हो, प्रीति में जीना शुरू करते हो, दिखायी पड़ता है। और जब परमात्मा दिखायी पड़ता है, तो सारे द्वंद्व लीन हो जाते हैं। फिर न कुछ पाप है, न पुण्य; न कुछ शुभ, न कुछ अशुभ।

और इसका यह मतलब नहीं है कि तुम पाप करने लगोगे। यह बात खयाल रखना, मैं फिर दोहरा दूं, इसका यह मतलब कतई नहीं कि तुम पाप करने लगोगे। पाप बचता ही नहीं, तुम्हीं नहीं बचते। जब परमात्मा का बोध होता है, तब तुम्हें यह बात साफ हो जाती है कि जो वह करवाए, करवाए; मैं उसका उपकरण होकर रहूंगा, माध्यम होकर रहूंगा; उसका निमित्त होकर रहूंगा। मैं साधन मात्र हूं। युद्ध तुम्हें लड़वाए, तो युद्ध में लडूंगा। और अस्पताल में सेवा करवाए, तो अस्पताल में सेवा करूंगा। जो उसकी मर्जी, वही मेरी मर्जी। और निश्चित ही जगत द्वंद्व से बना है। द्वंद्व के बिना जगत बन ही नहीं सकता। अगर यहां अहिंसा ही अहिंसा हो, तो जगत बन

ही नहीं सकता। यहां हिंसा और अहिंसा दोनों की ईंटें होनी चाहिए। यहां क्रोध ही क्रोध हो, तो जगत नहीं बनता। और करुणा ही करुणा हो, तो भी जगत नहीं बनता। यहां एक ईंट क्रोध की और एक ईंट करुणा की, तो यह महल खड़ा होता है। यह द्वंद्व की ईंटों से बनता है। यहां एक रात और एक दिन, इस तरह ईंटें चाहिए।

तुम जरा सोचो, एक आदमी ऐसा पैदा हो कि उसे बचपन से ही क्रोध न हो; वह जी ही नहीं सकेगा। उसमें रीढ़ ही नहीं होगी, उस में बल नहीं होगा। कोई उसे एक धक्का देगा और वह वहीं गिर रहेगा। उस में प्राण ही नहीं होंगे। और जिस में क्रोध नहीं है, उस में कभी करुणा पैदा नहीं होगी। क्योंकि क्रोध का ही आत्यंतिक रूपांतरण करुणा है।

यह आश्चर्यजनक नहीं है कि इस देश के सबसे बड़े अहिंसक क्षत्रिय घरों से आए थे। जैनों के चौबीस तीर्थंकर क्षत्रिय थे, बुद्ध भी क्षत्रिय थे। बुद्ध के जो चौबीस अवतारों की बात है पहले, वे भी सब क्षत्रिय थे। क्षत्रिय घरों से अहिंसा का उदघोष आया, इस से कुछ अर्थ समझो। और जब से जैन वणिक हुए, तब से एक तीर्थंकर पैदा नहीं हुआ। कुछ गड़बड़ हो गयी। क्रोध ही न रहा। बल न रहा, ऊर्जा न रही; एक तरह की नपुंसकता छा गयी। महावीर हो सके अहिंसक, पहले हिंसक तो होना ही पड़े तो ही कोई अहिंसक हो सकता है। पहली सीढ़ी हिंसा, दूसरी सीढ़ी अहिंसा। पहली सीढ़ी क्रोध, दूसरी सीढ़ी करुणा। पहली सीढ़ी नास्तिकता, दूसरी सीढ़ी आस्तिकता। पहली सीढ़ी संसार, दूसरी सीढ़ी निर्वाण। और जो पहली सीढ़ी को इनकार कर दे, दूसरी सीढ़ी का तो सवाल ही नहीं उठता।

और तुम सब जगह इसी तरह पाओगे।

जरा सोचो एक ऐसी दुनिया जहां पुरुष ही पुरुष हों, और स्त्रियां समाप्त हो गयी हों, वहां कितनी देर जिंदगी चलेगी? वहां से द्वंद्व समाप्त हो गया। या ऐसी दुनिया जहां स्त्रियां ही स्त्रियां हों और पुरुष न हों। वहां से द्वंद्व समाप्त हो गया, मृत्यु घट जाएगी। वैज्ञानिक कहते हैं कि विद्युत भी चलती है तो ऋण और धन छोरों के कारण, पाजिटिव और निगेटिव के कारण। जगत में चुंबक चलता है, चुंबकीय क्षेत्र चलते हैं, तो निगेटिव और पाजिटिव के कारण। और वैज्ञानिकों ने जो अंतिम खोज की है परमाणु के भीतर, वहां भी वही भेद है। वहां भी एक कण विधायक है और एक कण नकारात्मक है। वहां भी स्त्री-पुरुष का भेद है। उस के बिना विद्युत भी निर्मित नहीं होती। उस के बिना जगत में पदार्थ भी निर्मित नहीं होता।

यह द्वंद्व समझने जैसा है। पाप और पुण्य का द्वंद्व अनिवार्य है। और परमात्मा दोनों को घेरे है। दोनों बाजुएं परमात्मा की हैं, दोनों पंख परमात्मा के हैं। और जब दोनों बराबर होते हैं, तो एक-दूसरे को काट देते हैं और अतिक्रमण हो जाता है।

वह भी खयाल में ले लेना।

परमात्मा में पाप भी है, पुण्य भी है; दिन भी है, रात भी है; जीवन भी, मृत्यु भी। लेकिन दोनों बराबर मात्रा में हैं, इसलिए एक-दूसरे को काट देते हैं। और परमात्मा अतिक्रमण कर जाता है, दोनों के पार हो जाता है।

तुमने देखा, इस देश में, अकेले इस देश में हमने अर्धनारीश्वर की प्रतिमा बनायी है। परमात्मा आधा पुरुष, आधी स्त्री। वह महत्वपूर्ण है, बड़ी वैज्ञानिक है। दुनिया में वैसी प्रतिमा कहीं नहीं है। उतनी गहरी सूझ नहीं हुई। उतने गहरे लोग गये नहीं कि परमात्मा स्त्री-पुरुष दोनों होने चाहिए। इसलिए तुम यह जानकर भी चकित होओगे कि संस्कृत में ब्रह्म शब्द नपुंसकलिंग है। क्योंकि जब स्त्री-पुरुष दोनों मिल जाएंगे, एक-दूसरों को काट देंगे, फिर जो शेष बचेगा वह अतिक्रमण कर गया—वह न तो पुरुष है, न स्त्री है, वह दोनों के पार हो गया। लेकिन दोनों की मौजूदगी के कारण पार हुआ।

आपने कहा कि नेति-नेति ज्ञान का उदघोष है, न यह-न वह। और इति-इति भक्ति का, यह भी-वह भी। भक्ति के इस उदघोष में तो अंधेरा, कल्मष और पाप, सब आ जाते हैं। निश्चिंत आ जाते हैं। भक्त की छाती बड़ी है। भक्त अतर्क है। ज्ञानी की छाती छोटी है। ज्ञानी तर्क है। परमात्मा में सब आना ही चाहिए। उसके बाहर कुछ हो ही नहीं सकता। नर्क भी होगा तो उसके भीतर ही होगा। स्वर्ग भी होगा तो उसके भीतर ही होगा। इसलिए तुमसे कहता हूं, अगर नर्क में भी हो तो भी स्मरण रखो कि परमात्मा में हो। दुख में हो तो भी स्मरण रखो कि परमात्मा में हो। और जब कांटा चुभ रहा है तब भी स्मरण रखो, परमात्मा तुम्हें उतना ही छू रहा है जितना तब जब फूल तुम अपने गाल से लगाते हो। चिंता के क्षणों में भी तुम परमात्मा के उतने ही निकट हो, जितने ध्यान के क्षणों में होते हो। परमात्मा से दूर होने का उपाय नहीं है। परमात्मा के विपरीत जाने की जगह नहीं है। परमात्मा से बाहर जाने का कोई द्वार नहीं है। कहां जाओगे, सब वही है। परमात्मा वस्तुतः सब का नाम है, सर्व का नाम।

परमात्मा कोई व्यक्ति नहीं है, समग्रता की एक संज्ञा है। और इसीलिए परमात्मा को समझना कठिन हो जाता है। समझ बने तो कैसे बने? शुभ ही शुभ होता तो समझ जाते। अशुभ ही अशुभ होता तो भी समझ जाते। समझ एकदम ठिठककर खड़ी रह जाती है। जहां समझ ठिठक जाती है, वहीं प्रीति काम आती है।

शिगुफ्तगी का, लताफत का शाहकार हो तुम
फकत बहार नहीं, हासिले-बहार हो तुम
जो एक फूल में है कैद, वह गुलिस्तां हो
जो एक कली में है पिन्हां वह लालाजार हो तुम
हलावतों की तमन्ना, मलाहतों की मुराद
गुरूर कलियों का, फूलों का इनकिसार हो तुम
जिसे तरंग में फितरत ने गुनगुनाया है
वह भैरवी हो, वह दीपक हो, वह मल्हार हो तुम
तुम्हारे जिस्म में ख्वाबीदा हैं हजारों राग
निगाह छेड़ती है जिसको वह सितार हो तुम
जिसे उठा न सकी जुस्तजू वह मोती हो
जिसे गूंध न सकी आरजू वह हार हो तुम

जिसे बूझ न सका इश्क वह पहेली हो
जिसे समझ न सका प्यार भी वह प्यार हो तुम

समझ परमात्मा की संभव नहीं; प्रीति संभव है। प्रीति भी समझ नहीं पाएगी। लेकिन प्रीति अनुभव कर लेगी, प्रीति समझ की चिंता ही नहीं करती। प्रीति स्वाद ले लेती है। फिक्र क्या है कि मिठास को समझे या न समझे, मिठास का स्वाद आ गया, मिठास तुम्हारे रग-रेशे में फैल गयी, मिठास में तुम डूब गये, फिक्र क्या है समझे कि नहीं समझे, हो गये मिठास। प्रीति परमात्मा बन जाती है। भक्त भगवत्ता में लीन हो जाता है। समझ तो वह भी नहीं पाता। समझ तो समझदार भी नहीं पाते, भक्त भी नहीं पाता—समझ संभव ही नहीं है। क्योंकि समझ के लिए एक अनिवार्य शर्त है कि विरोधाभास न हो, पैराडाक्स न हो। और सत्य विरोधाभासी है। इसलिए समझ तो थककर गिर जाती है। समझ तो अवाक होकर रह जाती है। समझ तो कह देती है—इसके आगे और मेरी गति नहीं।

इसलिए जो समझपूर्वक जाते हैं, वे कभी धार्मिक नहीं हो पाते। समझदार धार्मिक नहीं हो पाते। और इसलिए उनकी समझदारी दुनिया की सब से बड़ी नासमझी सिद्ध होती है। धार्मिक होने के लिए नासमझी चाहिए, पागलपन चाहिए, हिम्मत चाहिए कि समझ को भी सिकोड़कर एक तरफ रख दो कि ठीक है, तू आगे नहीं जाती, हम जाते हैं, तू यहीं रह। इस घटना का नाम ही संन्यास है—समझ को एक तरफ छोड़कर आगे बढ़ जाना और कहना, समझ जहां तक ला सकती थी ले आयी, धन्यवाद, अब आगे हम अकेले जाएंगे। प्रीति ले जाती है अंततः। स्वाद, अनुभव, अनुभूति। फिर कौन फिकर करता है समझने की!

तीसरा प्रश्नः तथ्य और सत्य में क्या अंतर है?

तथ्य है सामयिक सत्य और सत्य है शाश्वत तथ्य। ऐसा समझो कि तथ्य है सागर में उठी लहर और सत्य है सागर। लहरें आती हैं, जाती है। लहरें क्षणभंगुर होती है, सागर शाश्वत होता है। तथ्य सत्य की लहर है।

तथ्य का अर्थ है—अभी है, सत्य का अर्थ है—सदा है। तथ्य का अर्थ है—अभी है, अभी नहीं हो जाएगा। जैसे समझो, तुम्हारी देह तथ्य है। एक दिन नहीं थी, आज से चालीस साल, पचास साल पहले तुम्हारी देह नहीं थी और आज से चालीस साल, पचास साल बाद फिर नहीं हो जाएगी—एक तथ्य था, पानी में उठी एक लहर थी, जो सत्तर-अस्सी साल या सौ साल रही। सौ साल का कोई ज्यादा मूल्य मत समझ लेना। संसार के बड़े पैमाने को देखते हुए सौ साल कुछ भी नहीं है, क्षणभंगुर भी नहीं है। तो देह तथ्य है। है तो जरूर, लेकिन नहीं हो जाएगी। इसके होने में नहीं-होना छिपा है। इसके होने में नहीं-होना बड़ा हो रहा है।

तुम एक दिन अचानक थोड़े ही मर जाते हो, जिस दिन पैदा होते हो उसी दिन से मरना शुरू हो जाते हो। फिर रोज-रोज धीरे-धीरे मरते-मरते एक दिन मृत्यु पूरी हो

जाती है। पहले दिन का बच्चा, एक दिन की उम्र का बच्चा भी एक दिन मर चुका, चौबीस घंटे मर चुका—चौबीस घंटे उम्र कम हो गयी। तुम जिनको जन्म-दिन कहते हो, अच्छा हो कि उनको मृत्यु-दिन कहो; उनका जन्म-दिन से कोई संबंध नहीं है। एक साल बीता, तुम कहते हो—जन्म-दिन आया! एक साल और कम हो गयी उम्र, मौत एक साल करीब आ गयी, तुम कहते हो जन्म-दिन आया! कि मौत करीब आ गयी? मौत निकट हो गयी। तथ्य का अर्थ है—जिसके भीतर नहीं-होना छिपा है और बड़ा हो रहा है—पानी का बबूला—जैसे-जैसे बड़ा हो रहा है, फूटने के करीब आ रहा है।

सत्य का अर्थ है—तुम्हारे भीतर वह जो साक्षी है, जो इस देह में रहे, उस देह में रहे, अनंत देहों में रहा है, अनंत देहों में रहेगा, फिर भी सदा है, वह जो साक्षीभाव है, वह जो ध्यान है, वह जो जागरूकता है भीतर, चैतन्य है, वह सदा है। ऐसा ही समझो, पानी का एक बबूला उठा—बबूला क्षणभंगुर है, जल्दी ही फूट जाएगा, लेकिन बबूले के भीतर जो हवा थी, वह बचेगी; और बबूले में जो पानी था वह भी बचेगा। बबूला संयोग था—बना टूटा। इस जगत में जो संयोग बनते हैं, उनका नाम तथ्य। और इस जगत में जो संयोग से नहीं बनता वरन शाश्वतता से है, जो सब संयोगों में होता है। लेकिन स्वयं संयोग नहीं है, उसका नाम सत्य। उसे परमात्मा कहो या जो भी नाम देना चाहो।

एक तो जरूर यहां कुछ है, जो सदा है। जो आता नहीं, जाता नहीं, जो सदा मौजूद है। जिसका कोई अतीत नहीं होता और जिसका कोई भविष्य भी नहीं होता, जो सदा वर्तमान है। वही सत्य है।

चौथा प्रश्नः मैं असंतुष्ट हूं, हर बात से असंतुष्ट। और कभी-कभी सोचता हूं कि शायद आनंद मेरे भाग्य में ही नहीं।

ऐसा आदमी ही कभी नहीं हुआ कि आनंद जिसके भाग्य में न हो। हालांकि ऐसे आदमी करोड़ों हैं जो आनंद को अनुभव नहीं कर पाते। लेकिन भाग्य को दोष मत देना। यह अपना दोष भाग्य के कंधों पर मत फेंको। यह तरकीब मत करो। दोषी तुम हो, भाग्य नहीं। तुम्हारे भाग्य के तुम ही निर्माता हो।

तुम असंतुष्ट हो तो अपने असंतोष को समझने की कोशिश करो कि क्यों असंतुष्ट हूं। तुम कारण खोज लोगे। उन कारणों को मत दोहराओ, असंतोष खो जाएगा। लेकिन कारण तुम खोजना नहीं चाहते। क्योंकि हो सकता है कारण तुम्हीं होओ, तुम्हारा होना ही कारण हो; यह तुम्हारा मैं जो संतुष्ट होना चाहता है, यही कारण हो; तो तुम उस खतरे को मोल नहीं लेना चाहते हो किसी पर दोष डाल दो।

आदमी सदियों से दोष टालता रहा है। बहाने बदल लेता है, लेकिन दोष टालता है। पहले कहता था तो भाग्य। तुम पुराने ढंग के आदमी मालूम होते हो—भाग्य, भगवान! फिर लोग बदले, लेकिन कुछ ज्यादा नहीं बदले। मार्क्स ने कहा कि अगर तुम दुखी हो, तो समाज जिम्मेवार है। अब यह समाज भी वैसे ही

थोथा शब्द है जैसे भाग्य, कुछ फर्क नहीं पड़ा। मार्क्स में मैं कोई बड़ी क्रांति नहीं देखता। क्योंकि असली क्रांति एक ही है कि तुम टालो मत, तुम दूसरे पर मत फेंको, दूसरे के कंधे पर बंदूक रखकर मत चलाओ, बहाने मत खोजो, साक्षात करो सीधी-सीधे, अपने जीवन के रोग का ठीक-ठीक विश्लेषण करो, डायग्नोसिस करो, निदान करो, तो चिकित्सा भी हो सके, उपचार भी हो सके। लेकिन तुम बीमार हो और तुम कहते हो भाग्य। तो डाक्टर के पास जाने की कोई जरूरत नहीं, दवा लेने की कोई जरूरत नहीं—भाग्य की कोई दवा तो होती नहीं। या तुम कहते हो समाज। अब समाज बदलेगा तब बदलेगा, तब तक तुम न बचोगे। फिर फ्रॉयड आया और फ्रॉयड ने कहा कि न समाज, न भाग्य बल्कि तुम्हारा बचपन; तुम्हारी मां, तुम्हारे पिता, उन्होंने तुम्हें ऐसे गलत संस्कार दिये, उन्होंने तुम्हें इस तरह से दमित किया, इसलिए तुम उलझे हो। अब यह तो तब दुबारा मां-बाप मिलें और बेहतर मां-बाप मिलें! तो यह तो भूल हो चुकी, अब इसमें कोई उपाय नहीं।

फ्रॉयड ने कहा है—आदमी कभी सुखी नहीं हो सकता है। कैसे होगा? तुमने जो विधि बतायी, वह ऐसी है जो कि हो ही चुकी। तुमने पहली भूल कर ही दी कि अपने मां-बाप को चुना—ढंग के मां-बाप चुनने थे। मगर तुम चुनते कैसे ढंग के मां-बाप? तुम थे कहां? तुमने चुने कब? यह तो घटना घटी। अब तो घट गयी, अब पीछे लौटने का कोई उपाय नहीं। अब तो किसी तरह अपने को राजी कर लो, समझा-बुझा लो और चला लो, गुजार लो।

न तो फ्रॉयड ने कोई क्रांति की है, न मार्क्स ने कोई क्रांति की है। क्रांति तो की है बुद्ध ने। क्रांति तो की है महावीर ने। क्रांति तो की है कृष्ण ने, पतंजलि ने, जीसस ने। क्या क्रांति की? उन्होंने कहा कि तुम्हारा हाथ है तुम्हारे असंतोष में। समझो। क्यों तुम असंतुष्ट हो, क्यों हर चीज तुम्हें असंतुष्ट करती है? पहली तो बात, तुम्हारी मांगें असंभव होंगी। जैसे एक सज्जन मेरे पास आए और उन्होंने कहा कि मुझे किसी स्त्री में रस नहीं आता, मैं एक परम सुंदर स्त्री चाहता हूं। एक पूर्ण स्त्री चाहता हूं।

मैंने उन से कहा कि मैंने एक कहानी सुनी है एक आदमी की, वह भी पूर्ण स्त्री खोजना चाहता था। जिंदगीभर खोजता रहा, नहीं मिली। तो मित्रों ने पूछा कि तुमने जिंदगीभर खोजी और नहीं मिली? उसने कहा—ऐसा नहीं है कि नहीं मिली, मिली, एक बार मिली। तो फिर क्या हुआ? तो उसने कहा कि दुर्भाग्य मेरा कि वह पूर्ण पुरुष खोज रही थी।

अब तुम पूर्ण स्त्री खोजने चले हो, इसकी बिना फिक्र किये कि तुम पूर्ण पुरुष हो या नहीं। पूर्ण पुरुष हो जाओ तो शायद पूर्ण स्त्री मिल जाए—शायद तुम्हारे पड़ोस में ही रहती हो। पूर्ण को पूर्ण दिखायी पड़ता है। अपूर्ण को तो पूर्ण दिखायी भी नहीं पड़ सकता, दिखायी भी पड़ जाए तो पहचान में नहीं आ सकता।

अब तुम अगर पूर्ण स्त्री खोजने चले, तो दुख में रहोगे। तुम्हारी मांगें असंभव हैं, तो असंतोष होगा। मांगों को सीमा में लाओ आदमी की। तुम मांगते ही चले जाते हो। तुम इसकी फिकिर ही नहीं करते कि मैं क्या मांग रहा हूं, यह मिल भी सकेगा कि

नहीं! तुम शाश्वत जीवन मांगते हो। यह देह सदा रहनी चाहिए। फिर मौत आती है तो असंतोष होता है। तुम कहते हो, यश मुझे ऐसा मिले जो सदा रहे। मगर हवा बदल जाती है। तुम्हारी लहर कभी चली, फिर किसी और की लहर चलने लगती है। आखिर किसी और की भी लहर चलने दोगे कि नहीं चलने दोगे! तुम्हारी ही तुम्हारी चलती रहे तो बाकी लोग असंतुष्ट रह जाएंगे। और जब तुम्हारी चली थी तो किसी की रुक गयी थी, वह तुम भूल गये? वह असंतुष्ट हो गया था। यश तो क्षणभंगुर होगा। यह तो पानी की लहर है—आयी और गयी। अब तुम चाहो कि यह शाश्वत हो जाए; तुम चाहो कि गुलाब का फूल जो सुबह खिला, अब कभी मुर्झाए न, तो फिर तुम प्लास्टिक के फूल खरीदो, तुम असली गुलाब न चाहो। लेकिन प्लास्टिक का फूल नकली मालूम पड़ता है, उस से दिल भरता नहीं। अब तुम एक असंभव मांग कर रहे हो। असली फूल से नकली फूल जैसे होने की मांग कर रहे हो। यह हो नहीं सकता, तो असंतोष होगा।

तुम अपनी मांगों में तलाशो। भाग्य में मत। कोई भाग्य नहीं है। तुम्हारी मांगें कुछ ऐसी होंगी, तुमने अपने ऊपर कुछ ऐसी मांगे बिठा रखी होंगी, कुछ ऐसे आदर्श बिठा रखे होंगे, जो पूरे नहीं होते। पूरे नहीं होते तो पीड़ा होती है। मैं तुम्हें राज बताता हूं, संतुष्ट होने का राज है—मांगो ही मत, जीओ। जो है, उसको जीओ। असंभव मांगें मत करो। जीवन की सामान्यता को स्वीकार करो।

परसों एक युवती पश्चिम से आयी। रोने लगी, कहने लगी कि जब मैं वहां से चली थी तो बड़ी आशाएं लेकर चली थी। यहां आयी हूं तो मैं अपने को बहुत साधारण पाती हूं। तो दुखी हो रही हूं। उसकी हालत समझो, वही तुम्हारी हालत होगी। चली होगी अपने घर से तो सोचा होगा कि जब आश्रम में पहुंचेगी, तो बैंडबाजा बजेगा, कोई हाथी वगैरह पर बिठालकर जुलूस निकाला जाएगा, कोई स्वागत किया जाएगा। सभी के मन में ऐसी धारणाएं होती हैं। सभी ऐसी कल्पनाओं में जीते हैं। फिर ये कल्पनाएं पूरी नहीं होतीं। न कोई जुलूस निकालता, न कोई हाथी-घोड़े पर बिठालता, न कोई बैंडबाजे बजाता—एकदम से लगता है, अरे, मैं साधारण!

जब चली होगी तो अपने गांव में अकेली संन्यासिनी थी। यहां आयी तो देखा कि यहां एक हजार संन्यासी। स्वभावतः एक संन्यासी हो एक गांव में तो सबकी नजर उस पर पड़ेगी। जहां एक हजार संन्यासी हों, कौन देखता है? एक हजार संन्यासी में चेहरा ही खो जाएगा। सब गैरिक वस्त्रधारी एक जैसे मालूम होते हैं। साधारण मालूम होने लगी होगी। अब पीड़ित हो रही है। लेकिन पीड़ा किस कारण हो रही है? असाधारण होने की आकांक्षा की थी। विशिष्ट होने की आकांक्षा की थी। उसी आकांक्षा ने यह कष्ट पैदा किया है। इसको न समझोगे तो कष्ट जारी रहेगा।

अपनी साधारणता को स्वीकार करो। सुना नहीं तुमने शांडिल्य ने कहा कि परमात्मा विशिष्ट नहीं है, साधारण है, अविशिष्ट है। ऐसे ही तुम भी साधारण हो जाओ। झेन फकीर लिंची से किसी ने पूछा कि तुम्हारी साधना क्या है? उसने कहा, जब भूख लगती है तो खाना खा लेता, जब प्यास लगती तो पानी पी लेता, और जब

नींद आती तब सो जाता। तो पूछने वाले ने कहा, लेकिन यह तो सभी साधारण लोग करते हैं! तो लिंची ने कहा, मैं कौन असाधारण हूं? मैं साधारणों में भी साधारण हूं। उस आदमी ने पूछा, फिर फायदा क्या है? लिंची ने कहा, फायदा बहुत है, संतुष्ट हूं। और क्या फायदा।

तुम अगर जीवन की छोटी-छोटी चीजों में रस लेने लगो, तो संतुष्ट हो जाओ।

मुझे आज फिर तुमसे मिल के ना उम्मीदी हुई है
वही तर्जे-गुफ्तार, चेहरे पे उदासी का आलम
जमाने की बेदाद, हालात की फज अदाई का शिकवा
तग-ओ-ताज, तकदीर की नारसाई का मातम
तही-दामनी पर पशेमान होने की मासूम कोशिश
जवां खूबसूरत महकते हुए रोज-ओ-शब का तसव्वुर
निशात-आफरीं महफिलों में कभी बारियावी का अरमां
गुलाबों की मानिंद खिलते हुए जिस्म छूने की ख्वाहिश
मुझे कब से हसरत है इक शब कभी तुम
मेरी महफिले-नाज में यूं भी आते
मुझे जिस्म-ओ-जां की सभी राहतें सौंप देने में
कोई तकल्लुफ न होता
यह कोई प्रेयसी कह रही है अपने प्रेमी से—
मुझे आज फिर तुमसे मिल के ना उम्मीदी हुई है
वही तर्जे-गुफ्तार, चेहरे पर उदासी का आलम

वही तुम्हारी पुरानी बातचीत, वही पुरानी आदत, वही ढर्रा, चेहरे पर बड़ी उदास स्थिति—

जमाने की बेदाद, हालात की फज अदाई का शिकवा

और जमाने भर के अत्याचार, दुर्घटनाएं, टेढ़ेपन की चर्चा कि दुनिया बड़ी बुरी है, कि दुनिया में बड़ा अत्याचार हो रहा है, कि दुनिया में बड़ा शोषण है, कि दुनिया में कहीं शांति नहीं है, बड़े युद्ध हो रहे हैं। शिकायत और शिकायत और शिकायत—

तग-ओ-ताज तकदीर की नारसाई का मातम

जिंदगी की भागदौड़ आपाधापी की शिकायत, भाग्य की शिकायत, वही रोना, वही पुराना रोना—

तही-दामनी पर पशेमान होने की मासूम कोशिश

और अपने आप पर निरंतर दुखी होने की, अपने आप पर दया करने की चेष्टा—

जवां खूबसूरत महकते हुए रोज-ओ-शब का तसव्वुर

और बड़ी कल्पनाएं कि ऐसा होना चाहिए; जो है, गलत, और जो होना

चाहिए वह होता नहीं, और ऐसा होना चाहिए—

जवां खूबसूरत महकते हुए रोज-ओ-शब का तसव्वुर
निशात-आफरीं महफिलों में कभी बारियावी का अरमां
और बड़े आनंद के सपने—
गुलाबों के मानिंदा खिलते हुए जिस्म छूने की ख्वाहिश
और गुलाबों की तरह शरीर हों, उनको छूने की ख्वाहिश। वह प्रेयसी कह रही है—
मुझे कब से हसरत है इक शब कभी तुम
मेरी महफिले-नाज में यूं भी आते
मुझे जिस्म-ओ-जां की सभी राहतें सौंप देने में
कोई तकल्लुफ न होता

और मैं कब से राह देख रही हूं कि कभी तो तुम आते, मुझ साधारण स्त्री को अंगीकार करते, गुलाब के फूलों जैसे जिस्मों की आकांक्षा न करते, कभी तुम आते और दुनिया की शिकायत बाहर छोड़ आते; कभी तुम आते अनुग्रह से भरे, शिकायत और शिकवे से भरे नहीं।

मुझे कब से हसरत है इक शब कभी तुम
मेरी महफिले-नाज में यूं भी आते
मुझे जिस्म-ओ-जां की सभी राहतें सौंप देने में
कोई तकल्लुफ न होता

लेकिन वह मौका ही नहीं है। मेरे पास जो है, मैं तुम्हें सौंप ही नहीं पाती, क्योंकि तुम तो खोए हो अपनी उदासी में, अपनी शिकायतों में, दुनियाभर के उपद्रव, दुनियाभर की चिंताएं तुम लिये चले आते हो।

जिंदगी छोटी-छोटी बातों में है। और जिंदगी का राज छोटी-छोटी बातों में है। जिंदगी बड़ी छोटी-छोटी बातों से मिलकर बनती है। छोटी-छोटी ईंटें और जिंदगी का मंदिर बनता है। तुम्हारी आकांक्षाएं बड़ी-बड़ी होंगी। तुम फिजूल की बातों में पड़ गये होओगे। तुम्हारी कल्पनायें बड़ी-बड़ी होंगी। तुम चाहते हो, ऐसा होना चाहिए। जैसा होता है, वैसा होता है, तुम्हारे चाहने से कुछ होने वाला नहीं है। तुम्हारी चाह सिर्फ तुम्हें असंतुष्ट रखेगी, तुम्हें दुखी रखेगी, तुम्हें पीड़ित रखेगी।

यह आदत छोड़ो। भाग्य नहीं, यह सिर्फ आदत है। यह आदत छोड़ो, अनुग्रह से जीना शुरू करो। जो दिया है, वह बहुत है और ज्यादा मत मांगो। पहले इसे तो भोगो। तुम अगर इसे भोगने में समर्थ हो जाओ, तो तुम्हें और दिया जाएगा।

जीसस का एक बहुत अदभुत वचन है कि जिनके पास है, उन्हें और दिया जाएगा, और जिनके पास नहीं है उनसे वह भी छीन लिया जाएगा जो उनके पास है। यह बड़ा चमत्कारी वचन है। दुनिया भर के शास्त्रों में खोजकर भी ऐसा वचन मुझे दुबारा नहीं मिला। यह बड़ा अदभुत है। जिनके पास है, उन्हें और भी दिया जाएगा। मतलब? यह तो बड़ा अन्याय मालूम पड़ता है कि जिनके पास है उन्हें और भी दिया जाएगा। यह तो अमीर को और अमीर, गरीब को और गरीब बनाने की कोशिश, यह

तो बड़ी पूंजीवादी बात है।

लेकिन जीसस को समझना, जल्दी मत कर लेना। जीसस ठीक कहते हैं: तुम्हें जो मिला है, अगर तुम उसे आनंद से भोगो तो उसी आनंद के भोग के कारण तुम्हें और दिया जाएगा। तुम पात्र बन जाओगे। तुम्हें जो रूखी-सूखी मिली है, उसे स्वाद से खाओ; मिष्ठान्न आते होंगे। तुम्हें जो जिंदगी मिली है, उसे ऐसे भोगो जैसे यह स्वर्ग है, तो स्वर्ग भी आता होगा। तुम्हें जो मिला है पहले उसका धन्यवाद तो करो, तो देने वाले की हिम्मत बढ़े, तो देने वाले का मन फैले, तो देने वाला और तुम पर बरसे। लेकिन तुम शिकायत ही शिकायत से भरे हो।

तुम कहते: मैं असंतुष्ट हूं, हर बात से असंतुष्ट। और कभी-कभी सोचता हूं कि शायद आनंद मेरे भाग्य में ही नहीं है। ऐसा कोई आदमी ही कभी नहीं हुआ। आनंद सब की नियति है। आनंद सब के भाग्य में है। आनंद लिखकर ही भगवान प्रत्येक को भेजता है। आनंद से ही हम निर्मित हुए हैं, आनंद हमारा स्वभाव है। दुख में अगर तुम हो, तो तुम ने पैदा किया होगा। दुख आदमी पैदा कर लेता है। दुख आदमी की कुशलता है। दुख आदमी की कला है। आनंद भगवान का दान है, उसकी भेंट है, उसका प्रसाद है।

इसलिए शांडिल्य ने कहा है—भक्त प्रसाद में भरोसा करता है, प्रयास में नहीं। प्रयास से तो सिर्फ दुख ही दुख पैदा होता है। प्रयास से संसार, प्रसाद से निर्वाण।

तुम जरा एक बार अपनी जिंदगी पर फिर से पुनर्विचार करो। अपने ढंग, अपने रवैयों को परखो, पहचानो। असंतोष तुम पैदा कर रहे हो।

मैं एक घर में मेहमान हुआ। एअरपोर्ट से ले जाते वक्त मैंने देखा कि जो मेरे मेजबान हैं, बड़े उदास हैं। मैंने उनकी पत्नी से पूछा कि बहुत उदास दिखते हैं तुम्हारे पति, बात क्या है? जब मैं आता हूं, सदा उन्हें प्रसन्न पाता हूं। उनकी पत्नी ने कहा कि जरा मामला है। मामला ऐसा है कि वे कहते हैं, उन्हें बहुत हानि हो गयी है। मैंने पति से पूछा कि बात क्या है? उन्होंने कहा, पांच लाख का नुकसान हो गया है। पत्नी ने कहा, लेकिन आप इनकी बात पर भरोसा मत करना; मैं कहती हूं कि पांच लाख का लाभ हुआ है, ये कहते हैं, पांच लाख का नुकसान हुआ है; मैं खुश हूं और ये परेशान हैं। पति ने कहा कि हानि हुई है, क्योंकि दस लाख का लाभ होना चाहिए था और सिर्फ पांच हुआ है।

अब तुम असंतुष्ट न होओगे तो क्या होओगे?

जीवन के देखने के ढंग को बदलो। अपनी आदत बदलो। उस आदत की बदलाहट में ही संतोष है, शांति है। और जहां संतोष है, शांति है, वहां आज नहीं कल सत्य निश्चित ही आ जाता है।

आज इतना ही।

प्रवचन 5

भक्ति अंतिम सिद्धि है

सूत्र

सर्वानृते किमितिवेर्ण्णवं बुद्धयानन्त्यात् ।। ३६।।

प्रकृत्यन्तरालादर्वैकार्यचित्त्वेनानुवर्तमानत्वात् ।।३७।।

तत्प्रष्ठिागृहपीठवम् ।।३८।।

मिथेपेक्षणादुभयम् ।।३९।।

चैंत्याचितोर्नन्रितीयम् ।।४०।।

एक दृष्टि पूर्व-सूत्रों पर।

शांडिल्य ने कहा—भक्ति परम दशा है। परम दशा यानी भगवत्ता। जहां भक्त और भगवान में भेद न रह जाए। जब तक भेद है, तब तक अज्ञान है। जब तक दूरी है, तब तक मिलने की प्यास, मिलने की पीड़ा कायम रहेगी। इंचभर भी दूरी हो, तो दुख मौजूद रहेगा। सारी दूरी मिट जाए, भक्त भगवान में लीन हो जाए, भगवान भक्त में लीन हो जाए—जैसे नदी सागर में गिर गयी और अब कोई अंतराल न रहा, नदी सागर हो गयी और सागर नदी हो गया—ऐसी परम दशा का नाम भगवत्ता है। जहां भक्त भी नहीं और भगवान भी नहीं। जहां दुई समाप्त हुई, द्वैत मिटा।

ऐसी परम दशा में स्वभावतः श्रवण, मनन, निदिध्यासन आदि की कोई आवश्यकता नहीं रह जाती। न जप, न तप; न मंत्र, न तंत्र; न विधि, न विधान। भक्ति अंतिम सिद्धि है। उसके पार कुछ पाने को नहीं है। इसलिए पाने के साधनों का कोई प्रयोजन भी नहीं है। शांडिल्य ने भक्त को परमहंस कहा। पा लिया जो पाना था, अब पाने को कुछ भी नहीं है। इसलिए भक्त की सारी यात्रा समाप्त हो गयी। तीर्थ आ गया, यात्रा समाप्त हो गयी।

भक्ति के बाद फिर कुछ करने की बात ही नहीं उठती। फिर भक्त सिर्फ आनंदमग्न हो जीता है। फिर उसका जीवन एक उत्सव है, साधना नहीं। समझ लेना इसे ठीक से।

भक्ति का जीवन उत्सव का जीवन है, साधना का जीवन नहीं। प्रयास नहीं प्रसाद। इस सिद्धि को ही शांडिल्य ऐश्वर्य कहते हैं।

तामैश्वर्य्यपदां काश्यपः परत्वात्।

काश्यप ने भी उसे ऐश्वर्यपदा कहा है। उस घड़ी में सारे जगत का ऐश्वर्य

तुम्हारा है। सारी गरिमा, सारा गौरव, सारा वैभव। चांद-तारे तुम्हारे हैं। सूरज और पृथ्वी तुम्हारी है। वृक्ष और पशु-पक्षी तुम्हारे हैं। क्योंकि तुम नहीं रहे। जब तक तुम थे, तब तक बाधा थी। अब अधिकार करने वाला चूंकि कोई नहीं रहा, अधिकार है।

इस बात को खयाल में लेना।

जब तक तुम चाहते हो मालिक हो जाऊं, तब तक तुम मालिक न हो सकोगे। मालिक होने की भावना में ही मालकियत नहीं है, इस बात की घोषणा छिपी है। तुम मालिक होना चाहते हो, यही बताता है कि तुम अभी मालिक नहीं हो। मालिक होने की चाह में तुम्हारी दीनता छिपी है। जो पद के लिए दौड़ता है, उसके भीतर हीनता की ग्रंथि होगी। जो धन के लिए दौड़ता है, वह निर्धन होगा। जो सुंदर होना चाहता है, वह निश्चित ही कुरूप होगा। तुम वही तो पाना चाहते हो जो तुम्हारे पास नहीं है।

स्वामी राम अपने को बादशाह कहते थे। अमरीका गये तो किसी ने पूछा—आप के पास कुछ भी नहीं और बादशाह! दो लंगोटियां हैं आपके पास, भिक्षा का पात्र है आपके पास, यह आपकी बादशाहत है! यह आपका साम्राज्य है! राम ने कहा कि इन्हीं के कारण थोड़ी साम्राज्य में बाधा है। इन्हीं के कारण साम्राज्य पूरा-पूरा नहीं है। और कोई अड़चन नहीं रही, ये दो लंगोटियां हैं और यह भिक्षापात्र है, इसी से थोड़ा मेरे सम्राट होने में कमी रह गयी। इतने पर मैं अभी अधिकार रखना चाहता हूं। जितने पर अधिकार रखना चाहता हूं, उतनी ही मेरी दीनता है।

इसलिए हमने बुद्ध और महावीर को सम्राट कहा, जो भिखारी हो गये। और भिखारियों और सम्राटों में हमने कोई फर्क नहीं पाया। भिखारी भी मांगता है, सम्राट भी मांगते हैं। बड़े से बड़े सम्राट में भी भिखमंगापन कायम रहता है। भिखमंगेपन का अर्थ होता है—अभी मांग कायम है; अभी कुछ सिद्ध करके दिखाना है; अभी कुछ कमी खलती है, अखरती है।

भक्त की वह दशा परम ऐश्वर्य की दशा है। ऐश्वर्यपदा है। सब छोड़ा कि सब पाया। अपने को गंवाया कि परमात्मा को पाया। इधर बूंद मिटी नहीं कि उधर सारे सागरों से एक हो गयी। इधर बीज टूटा नहीं कि वृक्ष हुआ। इधर तुम मरे नहीं, मिटे नहीं कि उधर तुम शाश्वत के साथ एक हुए, कि अमृत तुम्हारा हुआ। काश्यप ठीक ही कहते हैं—तामैश्वर्य्यपदां काश्यपः परत्वात्।

और यह सिद्धि ऐश्वर्य की ही सिद्धि नहीं है कि बाहर के विराट पर तुम्हारा साम्राज्य फैल गया, यह आत्म सिद्धि भी है। यह और भी समझ लेने की बात है। जिस दिन तुम अपने को खोते हो, उसी दिन अपने को पाते हो। खोये बिना कोई पाना नहीं है। जितना अपने को पकड़ते हो, उतना गंवाते हो। जितना जोर से पकड़ते हो, उतने ही सिकुड़ जाते हो। निर्भय हो, जाने दो, छोड़ो; जो जाना है, जाने दो; जो तुम्हारे छोड़ने पर भी बच रहे, वही आत्मा है; जो बिना बचाये बच रहे, जिसे तुम छोड़ना भी चाहो और न छोड़ सको, वही आत्मा है। जो तुम्हारे छोड़ने से छूट जाए, वह छाया थी, आत्मा नहीं थी; माया थी, आत्मा नहीं थी।

यह परम ऐश्वर्य बाहर का ही नहीं है, भीतर का भी है। अंतर और बाहर यहां एक हो गये हैं।

आत्मैकपरां बादरायणः।

इसलिए बादरायण ने कहा कि वह परम दशा आत्मपर है। वह स्वयं की परम अनुभूति है; सर्व की और स्वयं की।

काश्यप ने सर्व पर जोर दिया, बादरायण ने स्वयं पर जोर दिया। यह उसी एक सत्य को कहने के दो ढंग हैं। काश्यप ने कहा—ईश्वर ही बचता है; बादरायण ने कहा—भक्त ही बचता है। बूंद जब सागर में गिरती है तो तुम यह भी कह सकते हो कि बूंद अब सागर हो गयी, और तुम यह भी कह सकते हो कि सागर अब बूंद हो गया। दोनों बातें सही हैं। वह स्थिति वस्तुतः दोनों है, क्योंकि वहां दोनों का मिलन है। वहां रेखाएं समाप्त हो गयीं, सीमाएं विलीन हो गयीं, क्योंकि भक्त और भगवान अब दो नहीं हैं। भक्त को ध्यान में रखें तो वह स्थिति है आत्मपरा, भगवान को ध्यान में रखें तो वह स्थिति है ऐश्वर्यपदा। शांडिल्य ने इसलिए निष्कर्ष दिया—उभयपरां शांडिल्यः। वह दोनों है, उभयपर है। एक ही सिक्के के दो पहलू हैं—भक्त और भगवान एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। न तो भक्त के बिना भगवान है, न भगवान के बिना भक्त है।

यहूदी फकीर बालसेन अपनी प्रार्थनाओं में कहता था—मुझे तुम्हारी जरूरत है, सच, लेकिन तुम्हें भी मेरी जरूरत है। तुम्हारे बिना मैं न हो सकूंगा भगवान, यह सच, लेकिन मेरे बिना तुम भी कैसे हो सकोगे? भक्त के बिना भगवान का क्या अर्थ होगा? गुरु के बिना शिष्य का कोई अर्थ नहीं है, शिष्य के बिना गुरु का कोई अर्थ नहीं है। अर्थ उभय है। दोनों मिलकर अर्थ को पैदा करते हैं। दोनों का मिलन जहां होता है, वहीं अर्थ की उत्पत्ति होती है।

उभयपरां शांडिल्यः शब्दोपपत्तिभ्याम्।

इनको दो कहो, ठीक नहीं; एक की तरफ से कहो, अधूरा है। शांडिल्य ने बड़ा समन्वय का सूत्र साधा। समन्वय में कहा—दोनों बातें ठीक हैं; दोनों महर्षि हैं, काश्यप भी और बादरायण भी, दोनों सही हैं, मगर दोनों से भी ज्यादा सही बात यह होगी कि हम एक पर जोर न दें। सब जोर एकांगी हो जाते हैं। एकांगी जोर असत्य हो जाते हैं। हम संतुलन रखें, समन्वय रखें, दोनों तराजू बराबर हों। जहां दोनों तराजू बराबर होते हैं, उस संतुलन में ही सत्य की अभिव्यक्ति होती है। इसलिए शांडिल्य ने काश्यप और बादरायण दोनों से ऊंची छलांग ली, अर्थात वह उभय है; दोनों है और दोनों नहीं है; दोनों है और दोनों के पार है। वह परम ऐश्वर्य की दशा है, जिसको शब्दों में कहना कठिन। शब्दों में कहा कि असत्य होना शुरू हो जाता है। शब्दों में कहा तो एक को चुनना पड़ेगा। एक को चुना तो दूसरे का निषेध हो जाता है। उसे तो मौन में ही कहा जा सकता है। उसे तो मस्ती और मादकता में कहा जा सकता है। उसे तो भक्त जब लीन होकर नाचता है तब उसके नृत्य में पढ़ना। जब कोई दीवाना अपना एकतारा बजाता है तब उसके एकतारे के नाद में सुनना। जब कोई भक्त उस परम रस में लीन होकर खो जाता है, अपना होश-हवास गंवा देता है, बेखुद हो जाता है, तब उसकी बेखुदी में पढ़ना। जब भक्त बोलेगा, सिद्धांत की भाषा में कहेगा, तब थोड़ी अड़चन हो जाएगी। क्योंकि शब्दों की सीमा है।

इतनी बात खयाल में रहे तो आज के सूत्र समझ में आने आसान होगें।

पहला सूत्र—

सर्व अनृते किम इति चेत न एवं बुद्ध्यानंत्यात्।

सब छोड़ देने पर फिर उसकी क्या आवश्यकता है! आवश्यकता अवश्य है; क्योंकि बुद्धि बहुत प्रकार की होती है।'

शांडिल्य संभावित शंकाओं का उत्तर दे रहे हैं। वे कहते हैं—यह शंका उठ सकती है किसी के मन में कि जब सब छोड़ दिया तब परमात्मा को पाया, अब सब छोड़ देने के बाद ऐश्वर्य की चर्चा क्यों उठायी जा रही है? सब तो छोड़ दिया, ऐश्वर्य भी छोड़ दिया, सारी पकड़ छोड़ दी, सारा परिग्रह छोड़ दिया, अब जब सब छोड़ दिया और परमात्मा का मिलन हुआ, तो अब शांडिल्य ऐश्वर्य की बात क्यों उठा रहे हैं? सूत्र पूरे हो गये हैं। जहां भक्त भगवान हो गया, वहां ये सूत्र समाप्त हो जाने चाहिए, किसी के मन में यह संदेह-शंका उठ सकती है। यह सार्थक शंका है। संगत है, उपयोगी है। शांडिल्य इसकी संभावना को मानकर उत्तर देते हैं।

वे कहते हैं—आवश्यकता अवश्य है, क्योंकि बुद्धि बहुत प्रकार की होती है। ये सूत्र किसी एक ही प्रकार की बुद्धि के लिए नहीं लिखे जा रहे हैं। ये सूत्र मनुष्य की समस्त बुद्धियों की संभावनाओं को मानकर लिखे जा रहे हैं। ये सूत्र सब के लिए लिखे जा रहे हैं, किसी एक वर्ग के लिए नहीं। एक वर्ग है जो कहेगा—जब शून्य आ गया, जब सत्य आ गया और जब अब कहते हैं इसके पार जानने की कोई जरूरत नहीं है, न अब तंत्र, न मंत्र, न योग, न तप, न श्रवण-मनन-निदिध्यासन, कुछ भी नहीं बचा, सब साधन समाप्त हो गये, तो अब चुप हो जाना चाहिए। इसलिए बहुत से संत जानकर चुप हो गये। फिर बोले नहीं। फिर बोलना असंगत है। लेकिन शांडिल्य चुप नहीं हैं। यह अवस्था आ गयी, अब वे इस अवस्था का वर्णन करते हैं। और यह भी कहते हैं कि अवस्था का वर्णन हो नहीं सकता, वर्णन के अतीत है।

मैंने तुम्हें कल कहा था, या परसों, पश्चिम के बड़े विचारक विटगिंस्टीन ने कहा है—जो न कहा जा सके, उसे कहना ही नहीं। नहीं तो भूल होगी। जो न कहा जा सके, उसके संबंध में चुप ही रह जाना। दैट व्हिच कैन नाट बी सेड शुड नाट बी सेड। जब नहीं कहा जा सकता, तो फिर कहने की भूल करोगे तो कुछ न कुछ गलती हो जाएगी।

लाओत्सु जिंदगीभर चुप रहा, अस्सी साल का हो गया था तब तक उसने एक शब्द नहीं लिखा, लोग पूछते और वह टालता; जितना पूछते उतना टालता, जितना टालता उतना लोग पूछते कि जरूर कुछ पा लिया है, गुमसुम होकर बैठ गया है। कबीर जैसा रहा होगा लाओत्सु। कबीर ने कहा न कि जब मिल गया रतन, गांठ गठियायो, जल्दी से अपनी गांठ बांधकर सम्हालकर रख लिया, अब उसको बार-बार क्या खोलना और लोगों को दिखाना! मिल गया मिल गया, सम्हाल लिया, रख लिया भीतर गांठ बांधकर।

अस्सी साल की उम्र में लाओत्सु देश का त्याग करके चला हिमालय की तरफ। हिमालय से सुंदर जगह कहां होगी अंतिम समाधि के लिए! कहते हैं मार्ग में

चीन को छोड़ते समय चीन की अंतिम सीमा पर द्वारपालों ने रोक लिया और द्वारपालों ने कहा कि ऐसे नहीं जाने देंगे। जो तुमने जाना है, लिख दो, तो बाहर जाने देंगे। सम्राट की खबर हमें आयी है कि लाओत्सु भाग न जाए। तो हम तुम्हें निकलने न देंगे देश के बाहर। इस मजबूरी में उन पहरेदारों के तंबू में बैठकर तीन दिन तक लाओत्सु ने ताओ-तेह-किंग नाम की किताब लिखी—छोटी सी किताब है। अदभुत किताब है। पहला ही सूत्र लिखा—जो कहा जा सकता है, वह सत्य नहीं। मजबूरी में कहना पड़ रहा है, लेकिन ध्यान रखना जो कहा जा सकता है वह सत्य नहीं होता। सत्य तो सदा अनकहा रह जाता है।

शांडिल्य कहते हैं ऐसे लोग हुए हैं, जो चुप रह गये। उन्होंने उस परम ऐश्वर्य की कोई बात नहीं की। उस परम ऐश्वर्य के सामने अवाक हो गये। हृदय की धड़कन बंद हो गयी, सांस ठहर गयी। वाणी खो गयी; गूंगे हो गये; गूंगे का गुड़ हो गया सत्य। ऐसे बहुत लोग हुए हैं जो चुप हो गये। जो चुप हो गये, हो गये। उनके लिए वही स्वाभाविक रहा होगा। शांडिल्य कहते हैं—लेकिन बुद्धियां बहुत प्रकार की हैं। एक बुद्धि का यह प्रकार है जो मौन हो गयी। जिसने फिर मोक्ष का वर्णन नहीं किया। यह जानकर कि नहीं किया जा सकता वर्णन, बात ही नहीं उठायी। मगर दूसरी एक बुद्धि भी है जो यह जानकर कि वर्णन नहीं किया जा सकता, चुनौती को स्वीकार कर लेती है; और इसीलिए वर्णन करने में लग जाती है कि वर्णन नहीं किया जा सकता। वर्णन करना ही होगा। जिसका वर्णन किया जा सकता है, उसका वर्णन क्या करना? जिसका नहीं किया जा सकता उसी का करना है। चुनौती वहां है। प्रतिभा के लिए मौका और अवसर वहां है। जो बातें कही जा सकती हैं, उनको क्या कहना?

यही फर्क है कवि और ऋषि का। कवि उन बातों को कहता है जो कही जा सकती हैं। कठिन हों भला कहना, लेकिन कही जा सकती हैं। ऋषि उन बातों को कहता है जो मौलिक रूप से कही ही नहीं जा सकतीं। कहने का जिन से कोई संबंध ही नहीं बनता। ऋषि असंभव को करने की चेष्टा करता है। यही उसकी गरिमा है। अच्छे थे वे लोग जो चुप रह गये। मगर अगर सभी जानने वाले चुप रह गये होते तो मनुष्य जाति का बड़ा भयंकर दुर्भाग्य होता। तो शांडिल्य के सूत्र तुम्हारे पास न होते, तो उपनिषद तुम्हारे पास न होते, तो कुरान तुम्हारे पास न होती, तो धम्मपद तुम्हारे पास न होता। तो तुम्हारे पास कुछ भी महत्वपूर्ण न होता। और जरा सोचो, अगर कुरान न हो, बाइबिल न हो, वेद न हों, धम्मपद न हो, गीता न हो, उपनिषद न हो; खजुराहो और कोणार्क के मंदिर न हों; अजंता-एलोरा की गुफाएं न हों, तो तुम्हारे पास क्या बचेगा? बीथोवन का संगीत न हो, माइकल एंजिलो की मूर्तियां न हों, तो तुम्हारे पास क्या बचेगा? एक सौ नाम मनुष्य जाति के इतिहास से निकाल लो और मनुष्य जाति का सारा इतिहास दो कौड़ी हो जाता है। ये वे ही सौ नाम हैं जिन्होंने असंभव को प्रकट करने की कोशिश की है। फिर चाहे पत्थर में खोदा हो, चाहे संगीत के स्वरों में छेड़ा हो, चाहे चित्रों में आंका हो, चाहे गीतों में गाया हो, चाहे शब्दों में बांधा हो, इस से कुछ फर्क नहीं पड़ता, ये तो अलग-अलग माध्यम हैं।

बुद्ध ने जो धम्मपद में कहा है, वही किसी ने अजंता-एलोरा में कहा है। वात्स्यायन ने जो काम-सूत्र में कहा है, वही किसी ने खजुराहो के पत्थरों में कहा है। किसी ने वीणा पर बजाया है और किसी ने तूलिका उठाकर चित्रों में रंगा है। ये माध्यम हैं अलग-अलग। लेकिन उसके कहने की अथक चेष्टा चलती रही है जो नहीं कहा जा सकता। जो अभिव्यक्ति योग्य नहीं है उसने बड़ी चुनौती दी है। उसकी चुनौती में ही मनुष्य जाति में प्रतिभा प्रगटी है।

उसकी चुनौती जिन्होंने स्वीकार की है, वे अपूर्व थे। वे सुपुत्र थे। जो चुप रह गये, उनका कुछ कसूर नहीं; भेद हैं बुद्धियों के।

शांडिल्य कहते हैं—ऐश्वर्य की बात करनी तो कठिन है, परमात्मा को शब्दों में उतारना तो कठिन है, फिर भी मैं कहूंगा। यह चुनौती मैं खाली न जाने दूंगा। यह अवसर ऐसे ही नहीं खो जाए, बोलूंगा। तुतलाहट ही क्यों न हो बोलना, तुकबंदी ही क्यों न हो—तुकबंदी ही सही, तुतलाहट ही सही—शायद किसी के कान में वे तुतलाहट से भरे हूए शब्द भी पड़ जाएं और मधुरस घोल जाएं; शायद कोई सोया जाग जाए; शायद कोई बंद आंख खुले, और देखे। संसार के वैभव में भागते हुए आदमी को इस वैभव की खबर मिल जाए शायद और उसके मन में सवाल उठे कि मैं जिसको वैभव समझ रहा हूं, वह तो वैभव ही नहीं है? मैंने जिसको अब तक ऐश्वर्य समझा है, वह ऐश्वर्य नहीं है, असली ऐश्वर्य तो कहीं और है। पता चले तो ही तो लोग यात्रा पर निकलते हैं। कोई कहे कि जरा और आगे बढ़ो, सोने की खदान है, जरा और कि हीरे की खदान है, तो आदमी खोज पर निकलता है। फिर सौ में से निन्यानबे न जाएं खोज पर, कोई फिकर नहीं, एक भी अगर गया तो भी पर्याप्त है। शृंखला जारी रहती है। करोड़ों-करोड़ों लोगों में एक आदमी भी सत्य को पाता रहे तो सत्य का झरना बहता रहता है। और जिनको प्यास लगे, उनके लिए जलस्रोत उपलब्ध होते हैं।

शांडिल्य कहते हैं—आवश्यकता अवश्य है, क्योंकि बुद्धि बहुत प्रकार की होती है। यह एक तरफ से मैंने बात कही, दूसरी तरफ से भी समझ लेनी चाहिए। ऐसे भी लोग हैं जो मौन से समझ लेंगे। मग़र वे बहुत विरल हैं। बुद्धि बहुत प्रकार की होती है। ऐसे लोग हैं जो मौन से ही समझेंगे। जिनके लिए चुप्पी ही संदेश होगी। जब बुद्ध चुप बैठे होंगे, तभी कुछ लोग बुद्ध के साथ संवाद कर पाएंगे।

ऐसा हुआ, एक आदमी आया बुद्ध के पास, भर दुपहरी थी, और उसने आकर बुद्ध को कहा कि मेरे कुछ प्रश्न हैं और मैं पूछना चाहता हूं, मैं ज्यादा देर ठहर भी नहीं सकता, मैं जल्दी में हूं—और जल्दी में तो सभी हैं, समय भागा जा रहा है, कल का भरोसा नहीं है। इसलिए आप टालना मत, मुझे उत्तर अभी चाहिए। और यह भी आप से निवेदन कर दूं कि मुझे शब्दों में उत्तर नहीं चाहिए, मुझे तो आप असली चीज कह दें, असली चीज दिखा दें, एक झरोखा खोल दें; एक झलक हो जाए, दरस-परस करवा दें। और उसकी आंखों से आंसू बहने लगे।

बुद्ध ने आंखें बंद कर लीं। आनंद जो उनके पास बैठा था बड़ा हैरान हुआ कि अब यह मामला कैसे हल होगा? यह आदमी कहता है—शब्द में कहें मत,

दरस-परस करवा दें! हमें सुनते-सुनते वर्षों हो गये तब दरस-परस नहीं हुआ और यह इतनी जल्दी में है! अधैर्य की भी एक सीमा होती है! और बुद्ध कुछ क्षण चुप रहे, फिर उन्होंने आंख खोली, उस आदमी ने झुककर चरण छुए और कहा—आप की बड़ी अनुकंपा है। मैं धन्यभाग! आप ने बड़ी कृपा की मैं किन शब्दों में धन्यवाद करूं? याद रखूंगा यह क्षण। यह भूले न भूलेगा। यह मेरे जीवन की सबसे बड़ी संपदा है। यह मेरे भीतर दीये की तरह जलेगा। मौत के क्षण में भी यह मेरे साथ होगा। मैं अनुगृहीत हूं। और वह आदमी झुकता है और झुकता है और झुकता है।

आनंद और चकित होता है।

उसके जाते ही वह बुद्ध से पूछता है—यह मामला क्या है? हुआ क्या? मैं भी बैठा था, मुझे तो कोई दरस-परस नहीं हुआ। कुछ दिखायी भी नहीं पड़ा, कुछ...और आप ने कुछ कहा भी नहीं, आप आंख बंद करके बैठ गये, वह आदमी बैठा रोता रहा, और इतनी जल्दबाजी में लेन-देन हो गया! न इस हाथ से उस हाथ में कुछ चीज गयी, न कुछ मुझे दिखायी पड़ा, और मैं भर अकेला यहां था जो ठीक-ठीक आंख खोले बैठा था—आप भी आंख बंद किये थे, उस आदमी की आंखें भी आधी बंद थीं। बुद्ध ने कहा—आनंद, मुझे याद है भलीभांति...आनंद बुद्ध का चचेरा भाई था, दोनों साथ-साथ बड़े हुए थे—आनंद बड़ा भाई था—साथ-साथ खेले थे, साथ-साथ घुड़सवारी की थी, शिकार किये थे, साथ-साथ गुरुकुल में रहे थे...बुद्ध ने कहा मुझे भलीभांति पता है आनंद, बचपन में तुझे घोड़ों का बड़ा शौक था, इसलिए तुझे उसी प्रतीक में कहता हूं—

ऐसे घोड़े होते हैं कि मारो और मारो तो भी चलते नहीं। आनंद ने कहा—यह बात सच है। ऐसे घोड़े मैं जानता हूं। और ऐसे भी घोड़े होते हैं आनंद, कि मारो तो चलते हैं, न मारो तो नहीं चलते। और ऐसे भी घोड़े होते हैं आनंद, कि मारने की जरूरत नहीं होती, सिर्फ कोड़ा फटकारना पड़ता है। और ऐसे भी घोड़े होते हैं आनंद कि कोड़ा फटकारना भी नहीं पड़ता, कोड़े की मौजूदगी काफी है। और तूने ऐसे भी घोड़े शायद देखे होंगे कि कोड़े की मौजूदगी की भी जरूरत नहीं, कोड़े की छाया काफी है। ऐसे कुलीन घोड़े भी होते हैं कि कोड़े की छाया काफी है। आनंद ने कहा—यह बात मेरी समझ में आती है। वह तो भूल ही गया इस आदमी को, वह तो घोड़ों की बात उसकी समझ में आयी—घोड़ों का प्रेमी था। बुद्ध ने कहा—यह ऐसा ही घोड़ा था, इसको सिर्फ छाया काफी है; फटकारना भी नहीं पड़ा, कोड़ा दिखाना भी नहीं पड़ा, सिर्फ छाया। इधर मैंने आंख क्या बंद कीं कि उधर उसने आंखें खोल लीं। लेन-देन हो गया है। मौन ही मौन में हो गया है। यह संतरण मौन है।

तो ऐसे लोग हैं जो मौन में समझ लेंगे। मगर बहुत विरले हैं ऐसे लोग। फिर जो लोग मौन में समझ लेंगे, उनके लिए किसी के द्वारा बताया जाना आवश्यक नहीं है। अगर यह आदमी बुद्ध के पास न आता, तो भी समझकर ही मरता। यह आदमी बिना समझे नहीं मर सकता था। हो सकता था किसी वृक्ष के पास बैठकर समझ जाता—क्योंकि वृक्ष भी मौन हैं। और हो सकता था किसी पहाड़ की कंदरा में बैठकर

समझ जाता—क्योंकि पहाड़ भी मौन हैं। और हो सकता था चांद को देखकर समझ जाता—क्योंकि चांद भी मौन है। यह आदमी देर-अबेर समझ ही जाता। बुद्ध के पास आने से चलो घटना जल्दी घट गयी। मगर यह आदमी समझता तो जरूर। जो इतने जल्दी समझ गया, जो इतनी त्वरा से समझा, इतनी तीव्रता से समझा, इसके भीतर गहन प्यास थी। यह आदमी निन्यानबे डिग्री पर उबलता हुआ पानी था। जरा सा धक्का कि सौ डिग्री हो गया और उड़ गया। शायद बुद्ध के पास न आता तो दो-चार साल लग जाते—या दो-चार जन्म—लेकिन क्या मूल्य है दो-चार जन्मों का भी इस लंबे विस्तार में? दो पल से ज्यादा मूल्य नहीं। मगर यह पहुंच तो जाता।

शांडिल्य कहते हैं—ऐसे लोग हैं जो मौन से समझ लेंगे। मगर वे तो विरले हैं। जो कोड़े की छाया से चलेंगे ऐसे घोड़े तो विरले हैं। अधिक तो ऐसे हैं जिन्हें शब्दों की जरूरत होगी। फिर शब्दों के मारे-मारे भी कहां चलते हैं? उनके लिए कहना होगा, उनके लिए बोलना होगा। और वे ही बहुमत में हैं, जो शब्दों से भी कहने पर नहीं समझ पाएंगे। जो शब्दों से कहने पर नहीं समझ पाते, वे मौन को तो कैसे समझेंगे? इसलिए बुद्धियां अलग-अलग प्रकार की हैं।

फिर और भी बात समझ लेना, इस सूत्र में कई बातें आ गयी हैं।

कुछ लोग हैं जो ईश्वर में उत्सुक हैं ऐश्वर्य में नहीं; और कुछ लोग हैं जो ऐश्वर्य में उत्सुक हैं, ईश्वर में नहीं। जो लोग ईश्वर में उत्सुक हैं, उन से अगर ऐश्वर्य की बात न करो तो चलेगा। ऐश्वर्य ईश्वर की छाया है। आ ही जाएगा। जीसस का प्रसिद्ध वचन है; सीक यू फर्स्ट द किंग्डम आफ गाड, देन आल एल्स शैल बी ऐडेड अनटू यू। पहले तुम प्रभु को खोज लो—या प्रभु के राज्य को खोज लो—फिर शेष सब वैभव, सारी संपदाएं अपने आप पीछे से चली आएंगी। मगर पहले प्रभु को खोज लो। ऐसे लोग हैं जो ईश्वर में उत्सुक हैं, उन्हें ईश्वर की चर्चा काफी है। ऐश्वर्य की चर्चा आवश्यकता नहीं। वे कहेंगे—व्यर्थ समय क्यों खराब करते हैं, बात पूरी हो गयी।

लेकिन ऐसे भी लोग हैं—और यह दूसरा वर्ग बड़ा है—जो अगर ईश्वर में भी उत्सुक होते हैं तो इसीलिए उत्सुक होते हैं कि उनकी उत्सुकता ऐश्वर्य में है। वे प्रभु में उत्सुक होते हैं क्योंकि प्रभुता में उनकी उत्सुकता है। उनकी उत्सुकता को भी ध्यान में रखना जरूरी है। और उनकी संख्या बड़ी है। संसार में आदमी धन को खोजता है—खोजता है और नहीं पाता—तब यही धन की खोज ध्यान की खोज बन जाती है। बाहर खोज लिया, नहीं पाया, अब सोचता है भीतर खोजें; मगर खोज तो धन की ही है। बाहर हार गया है तो अब भीतर चलता है, कहता है—चलो ठीक है, कोई जगह छूट न जाए, कोई दिशा छूट न जाए।

आदमी बाहर प्रभुता खोजता है, बाहर पद खोजता है, फिर हार जाता है—क्योंकि बाहर किस को कब पद मिलता है? जिनको नहीं मिलता उनको तो नहीं मिलता, जिनको मिलता है उनको भी कहां मिलता है? बाहर के सब पद थोथे हैं। दिखावा बड़ा है, भीतर कुछ भी नहीं है। छाछ भी हाथ नहीं आती। शोरगुल बहुत मचता है, परिणाम कुछ भी नहीं है।

एक न एक दिन आदमी को यह बात समझ में आ जाती है कि पद बाहर का मिलता नहीं। मिल जाए तो भी कुछ मिलता नहीं। उस दिन आदमी परमपद को खोजने निकलता है। लेकिन खोजता परमपद को है, परम ऐश्वर्य को। उस आदमी के लिए ईश्वर गौण है, ऐश्वर्य प्रमुख है। खोजने निकलता है ऐश्वर्य को, मिल जाता है ईश्वर—छाया की तरह यह दूसरी बात है।

इसलिए शांडिल्य कहते हैं—यह चर्चा ऐश्वर्य की करनी होगी। यह अधिक लोगों के काम की है। सब छोड़ देने पर इस ऐश्वर्य की चर्चा की जरूरत क्या है, कोई पूछे तो शांडिल्य कहते हैं—जरूरत है; क्योंकि बुद्धि बहुत प्रकार की होती है। और सदगुरु वही है जो सब प्रकार की बुद्धि के लिए सूत्र दे जाए।

गुरु और सदगुरु का फर्क क्या है?

गुरु का अर्थ होता है, जो एक प्रकार की बुद्धि के लिए सूत्र दे जाए। उसकी सीमा है। वह एक तरह की बात कह जाता है, उतनी बात जिनकी समझ में पड़ती है उतने थोड़े से लोग उसके पीछे चल पड़ते हैं। सदगुरु कभी-कभी होता है। सदगुरु का अर्थ होता है, जो मनुष्य मात्र के लिए बात कह जाए। जो किसी को छोड़े ही नहीं। जिसकी बांहें इतनी बड़ी हों कि सभी समा जाएं—स्त्री और पुरुष, सक्रिय और निष्क्रिय, कर्मठ और निष्क्रिय, बुद्धिमान और भाविक, तर्कयुक्त और प्रेम से भरे, सब समा जाएं, जिसकी बांहों में सब आ जाएं; जिसकी बांहों में किसी के लिए इनकार ही न हो।

बुद्ध ने बोला। वर्षों तक स्त्रियों को दीक्षा नहीं दी। इनकार करते रहे। वह मार्ग पुरुषों के लिए था। उसमें स्त्रियों की जगह नहीं है। स्त्रियों का थोड़ा भय भी है। और जब मजबूरी में, बहुत आग्रह करने पर बुद्ध ने दीक्षा भी दी स्त्रियों को, तो यह कहकर दी कि मेरा धर्म पांच हजार साल चलता, अब केवल पांच सौ साल चलेगा, क्योंकि स्त्रियों की मौजूदगी मेरे धर्म को भ्रष्ट कर देगी।

बुद्ध के सूत्र मौलिक रूप से पुरुष के लिए काम के हैं, क्योंकि प्रेम की वहां कोई जगह नहीं है। प्रीति का वहां कोई उपाय नहीं है। और स्त्रैण-चित्त तो प्रीति के बिना परमात्मा की तरफ जा ही नहीं सकता। तो खतरा है, बुद्ध गलत नहीं कह रहे हैं, बुद्ध ठीक ही कह रहे हैं। बुद्ध का भय साफ है कि मैंने स्त्रियों को ले लिया है। और मार्ग पुरुषों का है, और स्त्रियां बिना प्रीति के रह नहीं सकतीं, तो आज नहीं कल स्त्रियां अपनी प्रीति को डालना शुरू कर देंगी इस मार्ग पर और यह मार्ग शुद्ध ध्यान का है, प्रेम का और प्रार्थना का नहीं है। और स्त्रियों ने प्रीति डाल दी, उन्होंने बुद्ध पर ही प्रीति डाल दी, उन्होंने बुद्ध की ही पूजा शुरू कर दी—स्त्री बिना पूजा के नहीं रह सकती। पुरुष को पूजा करना बड़ा कठिन मालूम पड़ता है, झुकना कठिन मालूम पड़ता है, उसका अहंकार आड़े आता है। विरला है पुरुष जो झुक जाए।

समर्पण अगर कभी पुरुष करता भी है तो बड़े बेमन से करता है। बहुत सोच-विचार करता है, करना कि नहीं करना। स्त्री के लिए समर्पण सुगम है; संकल्प कठिन है। दोनों का मनोविज्ञान अलग है। पुरुष का मनोविज्ञान है संकल्प का विज्ञान।

लड़ना हो, जूझना हो, युद्ध पर जाना हो, सैनिक बनना हो, वह तैयार है। वह बात उससे मेल खाती है, तालमेल है। स्त्री को समर्पण करना हो, कहीं झुकना हो, तो स्त्री में लोच है। इसलिए स्त्रियों को हमने कहा है—वे लताओं की भांति हैं। पुरुष वृक्षों की भांति हैं। स्त्री में लोच है। लता को कहीं न कहीं झुकना ही है, कहीं न कहीं सहारा लेना ही है। बुद्ध के मार्ग पर परमात्मा की तो धारणा ही नहीं थी, इसलिए परमात्मा का तो सहारा नहीं था, तो स्त्रियों ने बुद्ध को ही परमात्मा में रूपांतरित कर दिया। बुद्ध भगवान हो गये।

एक नया रूप बुद्ध-धर्म का प्रकट हुआ स्त्रियों के प्रवेश से—महायान। वह कभी प्रकट न हुआ होता। हीनयान बुद्ध का मौलिक रूप है। महायान स्त्रियों की अनुकंपा है! लेकिन स्त्रियों के आने से बुद्ध के ध्यान की प्रक्रियाएं तो डांवाडोल हो गयीं।

कृष्ण के मार्ग पर कोई अड़चन नहीं है। कृष्ण के मार्ग पर पुरुष को जाने में थोड़ी अड़चन है। पुरुष जाता है तो थोड़ा सा संकोच करता और झिझकता। स्त्री नाचते चली जाती है। तुम देखते हो न, कृष्ण के रास की इतनी कथाएं हैं, उनके भक्तों में पुरुष भी थे, गोपाल भी थे, मगर तुमने रास में देखा होगा स्त्रियों को ही नाचते। एकाध गोपाल भी दाढ़ी-मूंछधारी वहां दिखायी नहीं पड़ते। सब स्त्रियां हैं। ऐसा नहीं कि कुछ गोपाल न रहे होंगे। लेकिन उनको भी दाढ़ी-मूंछ की तरह चित्रित नहीं किया है, क्योंकि वे उतने ही स्त्रैण-चित्त रहे होंगे जितनी स्त्रियां।

पश्चिम बंगाल में एक छोटा-सा संप्रदाय अब भी जीवित है—राधा संप्रदाय। उसमें पुरुष भी अपने को स्त्री मानता है, और जब कृष्ण की पूजा करना है तो स्त्री के वेश में करता है, स्त्री के कपड़े पहनकर करता है। और रात जब सोता है तो कृष्ण की मूर्ति को अपनी छाती से लगाकर सोता है। कृष्ण के साथ तो गोपी बने बिना कोई उपाय नहीं है। कृष्ण के साथ तो स्त्रैण हुए बिना कोई उपाय नहीं है। वहां तो नाता प्रीति का और प्रार्थना का है। पुरुष कृष्ण के मार्ग पर जाएगा तो भ्रष्ट कर देगा वैसे ही, जैसे बुद्ध के मार्ग को स्त्रियों ने भ्रष्ट कर दिया।

गुरु का अर्थ होता है, जिसने एक दिशा दी है, एक सुनिश्चित दिशा दी है। उस सुनिश्चित दिशा में जितने लोग जा सकते हैं, वे जा सकते हैं; जो नहीं जा सकते, वह उनके लिए मार्ग नहीं है, वे कहीं और तलाशें। सदगुरु मैं उसे कहता हूं, जिसकी बांहें इतनी बड़ी हैं कि स्त्री हों कि पुरुष, कि कर्म में रस रखने वाले लोग हों कि अकर्म में, कि बुद्धि में जीने वाले लोग हों कि हृदय में; जितने ढंग की जीवन-प्रक्रियाएं हैं, शैलियां हैं, सबके लिए उपाय हो, सबका स्वीकार हो। गुरु तो बहुत होते हैं, सदगुरु कभी-कभी होते हैं।

शांडिल्य सदगुरु हैं।

इसलिए शांडिल्य कहते हैं—मेरे भक्ति के मार्ग में अगर तुम योग साधते हो, उसका उपयोग कर लेंगे। चित्त-शुद्धि के लिए उपयोग हो जाएगा। अगर तुम ज्ञान साधते हो, उसका उपयोग कर लेंगे। तुम्हारी जिज्ञासा को प्रगाढ़ करने में, तुम्हारी प्यास को निखार करने में, तुम्हारी उत्कंठा को अभीप्सा बनाने में उसका उपयोग कर

लेंगे। आओ, सब आओ, किसी के लिए निषेध नहीं है, वर्जना नहीं है। इसलिए शांडिल्य कहते हैं कि बहुत प्रकार की बुद्धियां हैं और मैं सब के लिए बोल रहा हूं।

प्रकृति अंतरालात इव कार्य चित्त सत्त्वेन अनुवर्तमानत्वात्।

'प्रकृति से अलग रहकर चित्त-सत्ता की स्वतंत्र अधिकारिता सिद्ध है।'

भक्त और भगवान एक हो जाते हैं, संसार और निर्वाण एक हो जाते हैं, पदार्थ और चैतन्य एक हो जाते हैं, देह और आत्मा एक हो जाते हैं, द्वंद्व समाप्त हो जाता है। ऐसी उदघोषणा शांडिल्य ने की है। शंका उठेगी। शंका उठ सकती है। प्रकृति से अलग रहकर चित्त-सत्ता की स्वतंत्र अधिकारिता है या नहीं?

प्रकृति और पुरुष दो शब्दों को ठीक से समझ लें। ये भारतीय मनीषा के बड़े ही विचारणीय शब्द हैं। प्रकृति का अर्थ होता है, वह जो स्त्री-तत्व समाया है जगत में। पुरुष का अर्थ होता है, पुरुष-तत्व। जगत संकल्प और समर्पण के मेल से बना है। अंग्रेजी में प्रकृति के लिए, पदार्थ के लिए शब्द है—मैटर। तुम जानकर चकित होओगे कि मैटर संस्कृत की मूल धातु मातृ से बना है—माता। उसी से मदर भी बना है, उसी से मैटर भी बना है। मैटर यानी स्त्रैण, वह जो मातृ शक्ति है, वह जो मां है—प्रकृति यानी मां। पुरुष तत्व यानी संकल्प का तत्व, विचार का तत्व। प्रकृति यानी प्रीति का तत्व, ये दोनों हैं।

एक बहुत पुरानी असीरियन किताब घोषणा करती है; परमात्मा अकेला था और अपने को जानना चाहता था, अपने को जानने के लिए उसने स्वयं को दो में विभाजित किया—जानने के लिए। जानने के लिए विभाजन जरूरी है। क्योंकि जब भी तुम कुछ जानना चाहो तो जानने वाले को जाने जाने से अलग होना चाहिए। तुम अपने चेहरे को भी जानना चाहो तो दर्पण की जरूरत पड़ेगी। तुम्हारा चेहरा है, जान क्यों नहीं लेते सीधा-सीधा, दर्पण की क्या जरूरत है? दर्पण की जरूरत पड़ेगी, तो अपने चेहरे का प्रतिबिंब देख सकोगे।

प्रकृति दर्पण है, जहां पुरुष अपने को देखता। बिना दूसरे से संबंधित हुए, बिना किसी गहरे आंतरिक संबंध के तुम अपने को जानने में समर्थ नहीं हो पाते।

इसलिए कृष्णमूर्ति ठीक कहते हैं कि संबंध दर्पण है। संबंधित होकर ही बोध होता है। वह जो पहाड़ की तरफ भाग जाता है, वह दर्पण तोड़कर भाग रहा है, उसे पहाड़ पर अपने चेहरे का पता कैसे चलेगा? वह आंख बंद करके बैठ सकता है, लेकिन आत्मबोध को उपलब्ध नहीं होगा। आत्मबोध तो यहां है जहां लोग हैं, जहां हजार तरह के चलते-फिरते आईने हैं—चारों तरफ चल रहे हैं, आईने ही आईने घूम रहे हैं, तुम जहां देखो वहीं तुम्हें अपना चेहरा दिखायी पड़ेगा। किसी आईने में तुम क्रोधित दिखायी पड़ते हो, यह भी तुम्हारी पहचान है। और किसी आईने में तुम बड़े प्रसन्न दिखायी पड़ते हो, यह भी तुम्हारी पहचान है। ये सब तुम्हारे चेहरे हैं। और तुम्हारे अनंत चेहरे हैं। और उन सब चेहरों को पहचानना जरूरी है। इन सब चेहरों को पहचान लो तो तुम्हारे भीतर जो चेहरों के पार है, उसकी पहचान हो सके। जंगल में भाग जाओगे, क्या जानोगे? गुफा में बैठ जाओगे, क्या जानोगे? दर्पण तोड़कर चले आए। समाज दर्पण है।

असीरियन कथा ठीक है कि परमात्मा अकेला था और अपने को जानना चाहता था, इसलिए उसने अपने को दो में तोड़ा। पदार्थ और चेतना में तोड़ा। चेतना यानी देखने वाली और पदार्थ अर्थात जिस में देखा जाना है। इसलिए हिंदू मनीषा ने स्त्री-पुरुष को अलग नहीं किया—कभी अलग नहीं किया। बौद्ध और जैन इस अर्थ में एकांगी हैं। उनकी विचार-दृष्टि में थोड़ी कमी है। महावीर अकेले खड़े हैं; लेकिन राम के साथ सीता है। इतना ही नहीं, जब भी हिंदू राम और सीता का नाम लेते हैं तो पहले सीता का नाम लेते हैं—सीताराम कहते हैं। राधाकृष्ण कहते हैं शंकर—शिव-पार्वती साथ हैं। विष्णु और लक्ष्मी साथ हैं। हिंदू मनीषा ने स्त्री-पुरुष को साथ-साथ देखा है, पुरुष प्रकृति को साथ-साथ देखा है। दोनों संयुक्त हैं। और दोनों को अलग करने की कोई जरूरत नहीं। यद्यपि अलग किये जा सकते हैं।

जैन चेतना को अलग कर लेते हैं प्रकृति से; वे कहते हैं—प्रकृति से मुक्त हो जाना मोक्ष है। तुम शुद्ध चैतन्य रह जाओ और प्रकृति से तुम्हारा कोई संबंध न रह जाए, तो सब बंधन समाप्त हो गये। हिंदू मनीषा कहती है—जब तुम्हें बंधनों में बंधन मालूम न पड़े, तब मोक्ष है। जब तुम्हें जंजीरें भी आभूषण मालूम पड़ें, तब मोक्ष है। जब कांटे भी फूल हो जाएं, तब मोक्ष है। जब पदार्थ भी परमात्मा हो जाए, तब मोक्ष है।

लेकिन भेद किया जा सकता है और इसलिए शांडिल्य का यह सूत्र समझना—'प्रकृति से अलग रहकर चित्त-दशा की स्वतंत्र अधिकारिता सिद्ध है।' अगर कोई चाहे तो अपने को प्रकृति से अलग कर सकता है और शुद्ध चैतन्य में ठहर सकता है और मान ले सकता है कि मैं सिर्फ चेतना हूं, मात्र चेतना हूं। यह संभावना है, इसीलिए तो जैन और बौद्ध जैसी जीवन-दृष्टियां पैदा हो सकीं। कि यह संभावना है कि तुम दर्पण को छोड़कर गुफा में बैठ जाओ, यह संभावना है। इस संभावना को शांडिल्य स्वीकार करते हैं। लेकिन यह संभावना निषेध की संभावना है, नकार की। यह निगेटिव है। इसलिए जैन-विचार नकारात्मक है। उसमें विधेय नहीं है। सिकोड़ देता है, फैलाता नहीं। जैन-मुनि उदास हो जाता है, पंगु हो जाता है, हाथ-पैर कट गये। जैन-मुनि नाच नहीं सकता, वीणा लेकर गीत नहीं गा सकता; जैन-मुनि में मस्ती और मादकता नहीं हो सकती, उस तरह की सारी बातों का निषेध है, उसे तो सूखना है जब उसमें एक फूल न लगे और एक हरा पत्ता भी न बचे। जब वह ग्रीष्म में खड़े हुए एक सूखे-रूखे वृक्ष की भांति हो जाए, जिसमें हरियाली नहीं आती, तब उसके मानने वाले कहते हैं—अब कुछ हुआ। तब वे कहते हैं—यह वैराग्य है।

यह विराग नकारात्मक है। यह विराग आत्मघाती है। निश्चित ही इसमें शांति मिलती है, क्योंकि अशांति के सारे कारणों से आदमी दूर हट गया। चिंता चली जाती है, निश्चिंतता आती है, लेकिन आनंद नहीं आता।

शांति और आनंद के फर्क को खयाल में रखना।

शांति केवल दुख का अभाव है। आनंद सिर्फ दुख का अभाव नहीं है, सुख का अवतरण भी है। बुद्ध ने कहा—मोक्ष यानी दुख-निरोध। आनंद की बात नहीं की। क्यों आनंद की बात नहीं की? नकार की प्रक्रिया में आनंद के लिए कोई जगह नहीं

है। नकार की प्रक्रिया ज्यादा से ज्यादा शांति और शून्यता तक ले जाती है, उसके पार गति नहीं है; उसके पार तो विधेय चाहिए; नहीं के साथ तुम इतने जा सकते हो, उसके आगे तो हां चाहिए। मगर यह संभावना है कि तुम चाहो तो साक्षी बन जाओ, दूर खड़े हो जाओ, तुम शुद्ध चेतना के साथ ही अपना संबंध रखो और सारे संबंध प्रकृति से तोड़ दो।

प्रकृति के भय के कारण ही आदमी स्त्री से भयभीत है; क्योंकि स्त्री प्रतिनिधि है प्रकृति की।

अब यह तुम हैरान होओगे जानकर कि कितने शास्त्र गालियां देते हैं स्त्री को। और ये ऐसे लोग गालियां देते हैं जिनसे गालियों की आशा नहीं की जानी चाहिए। स्त्री नर्क का द्वार है। स्त्री पाप है। एक भी स्त्री ने ऐसी बात पुरुषों के संबंध में अभी तक नहीं कही है। प्रीति इस तरह की बात कह ही नहीं सकती, प्रीति में स्वीकार होता है—हालांकि जितना नर्क स्त्रियों ने पुरुषों को दिया है, उससे ज्यादा ही नर्क पुरुषों ने स्त्रियों को दिया होगा, कम नहीं दिया है, क्योंकि पुरुष के हाथ में ताकत है, बल है, शोषण है। पुरुष ने ज्यादा सताया है स्त्रियों को। फिर भी किसी स्त्री ने नहीं कहा कि पुरुष नर्क का द्वार है। स्त्रियों ने कहा—पुरुष, पति परमात्मा है। और इधर तुम्हारे साधु-संत हैं—जिनको तुम साधु-संत कहते हो—वे लिखे चले जाते हैं, दोहराए चले जाते हैं। स्त्री नर्क का द्वार है।

तुलसीदास ने स्त्री को जोड़ दिया है पशुओं के साथ, गंवारों के साथ, शूद्रों के साथ और कहा—ये सब ताड़न के अधिकारी। इन सब को सताना ही चाहिए। इनको न सताओ तो ठीक नहीं। इनके साथ सताने का व्यवहार ही उचित व्यवहार है। स्त्री से इतना भय क्या है? स्त्री से भय इसी बात का है कि तुम नकार करके भाग रहे हो। और नकार में कोई भी जीएगा तो भयभीत जीएगा। स्वीकार में अभय है, नकार में भय है। क्योंकि जिस चीज को तुमने इनकार किया है, वह तुम्हारा पीछा करेगी। तुम जरा कोशिश करके देखो, किसी चीज से इनकार करके देखो, वही तुम्हारा पीछा करेगी। उपवास कर लो। उपवास का अर्थ हुआ, भोजन को नकार किया, भूख को नकार किया कि आज भोजन नहीं लेंगे। तो दिनभर तुम भोजन की ही सोचोगे। चौबीस घंटे एक ही विचार चलेगा—भोजन, भोजन, भोजन।

जिस चीज का नकार करोगे, वही-वही उठकर चेतना में आएगी और जब चेतना में बहुत बार उठकर आएगी तो स्वभावतः तुमको डर पैदा होगा कि स्त्री नर्क का द्वार है। स्त्री नर्क का द्वार नहीं है, तुम्हारा निषेध स्त्री को बार-बार तुम्हारे चित्त में ला रहा है। चूंकि स्त्रियों ने कभी पुरुष का निषेध नहीं किया, इसलिए उनको पता ही नहीं चला कि पुरुष नर्क का द्वार है। जब स्त्री भी पुरुष का निषेध करेगी, उसको भी पता चलेगा नर्क का द्वार है। लेकिन स्त्री में निषेध की वृत्ति नहीं है, स्वीकार का भाव है, अंगीकार का भाव है। स्त्री के पास पुरुष से ज्यादा बड़ा हृदय है, ज्यादा उदार हृदय है। प्रीति स्वभावतः तर्क से ज्यादा उदार होती है। और समर्पण संकल्प से ज्यादा उदार होता है। लेकिन समझ लेना, प्रकृति से अलग रहकर चित्त-सत्ता की स्वतंत्र

अधिकारिता सिद्ध हो सकती है, इसलिए निषेध के मार्ग पैदा होते हैं।

'उनकी स्थिति घर के भीतर की पीढ़ी की भांति है।'

तत् प्रतिष्ठा गृह पीठवत्।

ऐसे जो निषेध के मार्ग हैं, वे यह कहते हैं कि प्रकृति से कुछ लेना-देना नहीं है। स्थिति ऐसी है जैसे कोई आदमी अपने घर में कुर्सी पर बैठा हो; जब कुर्सी पर बैठा है आदमी तो इसका यह मतलब नहीं है कि उसको सदा कुर्सी पर ही बैठा रहना पड़ेगा कि वह कुर्सी नहीं छोड़ सकता, या कि कुर्सी उससे जुड़ी है, कि जहां जाएगा वहां कुर्सी भी जाएगी। वह अभी उठ खड़ा हो तो कुर्सी छूट जाएगी। कुर्सी छूट सकती है। प्रकृति और पुरुष का संबंध ऐसा है कि पुरुष चाहे तो प्रकृति को छोड़ सकता है। जैसे नदी-नाव-संयोग है। नाव नदी से अलग की जा सकती है। नदी नाव से अलग की जा सकती है।

ये जो निषेध के मार्ग हैं, वे कहते हैं पुरुष और प्रकृति का संबंध ऐसा है जैसे—तत् प्रतिष्ठा गृहपीठवत्। जैसे कोई आदमी अपने घर में पीढ़ी पर बैठा हुआ है। जब तक बैठा है, ठीक है; जब छोड़ना चाहे तब छोड़ सकता है। पीढ़ी उस के पीछे भागेगी नहीं। काश इतनी आसान बात होती। काश नकार को सिद्ध करने वाले लोगों की बात इतनी सरल होती। तुम जब स्त्री को छोड़कर जाओगे तो तुम पीढ़ी को छोड़कर जा रहे हो, इस भ्रांति में मत पड़ना। पीढ़ी तो बाहर है, स्त्री तुम्हारे भीतर है। तुम जहां जाओगे वहां साथ चली जाएगी। प्रकृति पुरुष के साथ संयुक्त है। यद्यपि पुरुष चाहे तो इस तरह के एहसास कर सकता है कि मैं अलग हूं। उन्हीं एहसास के कारण नकारवादी मार्गों को दुनिया में जन्म मिला।

शांडिल्य कहते हैं—

मिथ उपेक्षणात् उभयम्।

'दोनों ही इसके कारण रूप हैं।'

शांडिल्य कहते हैं—एक का ही कारण नहीं है। इस संसार का कारण सिर्फ प्रकृति ही नहीं है। इस संसार का कारण प्रकृति और पुरुष दोनों हैं। इसलिए एक को छोड़ने से नहीं बनेगा। दोनों के ऊपर उठने से बनेगा।

इस बात को समझना।

जब तुम भाग जाते हो जंगल अपनी पत्नी को छोड़कर, तब तुम यह कोशिश कर रहे हो कि मैं सिर्फ पुरुष हूं और पुरुष ही रहूंगा और स्त्री से संबंध तोड़ता हूं। स्त्री की गुलामी बहुत हो चुकी, अब नहीं करूंगा; परतंत्रता बहुत झेल ली, अब नहीं झेलूंगा; अब मैं अपने पुरुष होने की घोषणा करता हूं। लेकिन तुम पुरुष की भांति स्त्री से कभी मुक्त न हो सकोगे। स्त्री के पास रहो, स्त्री से दूर रहो। पुरुष की भांति तुम स्त्री से मुक्त न हो सकोगे, क्योंकि पुरुष की परिभाषा ही स्त्री से बनती है। पुरुष की परिभाषा प्रकृति से बनती है।

लेकिन एक उपाय है कि तुम दोनों के पार हो जाओ। शांडिल्य का सूत्र अदभुत है। शांडिल्य यह कह रहे हैं कि ऐसा एक उपाय है—न तुम स्त्री रह जाओ, न पुरुष; न पुरुष, न प्रकृति; न चैतन्य, न पदार्थ। दोनों के पार होने का उपाय है, वही भक्ति है।

ज्ञान एक से छूटना चाहता है और एक को पकड़ना चाहता है—ज्ञान में चुनाव है। भक्ति में कोई चुनाव नहीं। भक्ति दोनों से मुक्त हो जाना चाहती है। दोनों के पार देखती है। भगवत्ता का अर्थ है : जहां पुरुष ने अपनी पुरुषता खो दी और स्त्री ने अपनी स्त्रैणता खो दी। जहां स्त्री और पुरुष दोनों अलग-अलग नहीं रहे—अर्द्धनारीश्वर। जहां स्त्री-पुरुष दोनों संयुक्त हो गये।

इसलिए मैं तुमसे कहता हूं कि संभोग के किन्हीं-किन्हीं क्षणों में तुम्हें परमात्मा का अनुभव होता है। जब स्त्री और पुरुष एक ऐसी मिलन की घड़ी में होते हैं जब न तो पुरुष को याद होती है कि मैं पुरुष हूं और न स्त्री को याद रह जाती है कि मैं स्त्री हूं, जहां दोनों के बीच एकात्म सध जाता है, जहां दोनों के भीतर सेतु बन जाता है, जहां दोनों संयुक्त हो जाते हैं—क्षणभर को घटती है यह घटना; प्रेमियों में क़भी-कभी क्षणभर को यह घटना घटती है, जब द्वंद्व मिट जाता है, द्वैत खो जाता है और एक एक क्षण को उमगता है, फिर खो जाता है। इसलिए तो आदमी कामवासना के लिए इतना दीवाना है। वह जो एक का अनुभव होता है, वह इतना प्यारा है। संभोग का रस वस्तुतः संभोग का रस नहीं है, समाधि का रस है। और जिस दिन तुम यह पहचान लोगे, उस दिन से तुम संभोग के ऊपर जाने लगोगे। तब तुम असली समाधि खोजने लगोगे। ऐसी समाधि जहां पुरुष और प्रकृति सदा को एक हो जाते हैं।

'दोनों ही इसके कारण रूप हैं।'

मिथ उपेक्षणात् उभयम्।'

इसलिए एक को जिम्मेवार मत ठहराना। एक को जिम्मेवार ठहराना अत्यंत नासमझी की बात है। पुरुष यह कहे कि स्त्री नर्क का द्वार है, यहं बात ऐसी ही मूढ़ता की है जैसे कोई स्त्री कहे—पुरुष नर्क का द्वार है। कोई नर्क का द्वार नहीं है। तुम ने एक-दूसरे को भिन्न-भिन्न माना है, उसी में नर्क का द्वार है। जिस दिन तुम दोनों को एक मानोगे, उसी एकता में स्वर्ग का द्वार है।

और यह सिर्फ स्त्री-पुरुष के ही एक होने की बात नहीं है, जीवन के सारे द्वंद्वों को एक करने की बात है। नकार और विधेय एक हो जाने चाहिए, दृश्य और अदृश्य एक हो जाने चाहिए, रात और दिन एक हो जाने चाहिए, जीवन और मरण एक हो जाना चाहिए, सुख और दुख एक हो जाने चाहिए, स्वर्ग और नर्क एक हो जाना चाहिए, जहां-जहां द्वंद्व है वहीं-वहीं निर्द्वंद्व दशा हो जाना चाहिए। जब कोई द्वंद्व न बचे, निर्द्वंद्व अद्वैत का साम्राज्य हो, वहीं मोक्ष है, वहीं भगवत्ता है।

चैत्याः अचितोः न त्रितीयम्।

'प्रकृति और ब्रह्म में कोई भी विभिन्नता नहीं।' यह उदघोषणा सुनो—

चैत्याः अचितोः न त्रितीयम्।

प्रकृति और ब्रह्म में कोई भी विभिन्नता नहीं। दोनों एक हैं। तुमने भिन्न माना है, वहीं अड़चन है। संसार और निर्वाण एक हैं। जैसा झेन फकीर कहते हैं। झेन फकीरों ने तो बहुत बाद में कहा, शांडिल्य की उदघोषणा बड़ी पुरानी है—चैत्याः अचितोः न त्रितीयम्, प्रकृति और ब्रह्म में जरा भी भेद नहीं; अभिन्न हैं।

परमात्मा और उसकी सृष्टि दो नहीं है। स्रष्टा और सृष्टि दो नहीं हैं। सृष्टि स्रष्टा का नृत्य है। सृष्टि के प्रत्येक पहलू पर उसकी छाप है। हर कण पर उसका हस्ताक्षर है। सारे रंग उसके हैं, सारा इंद्रधनुष उसका है। कीचड़ से लेकर कमल तक सब नीचाइयां, सब ऊंचाइयां उसकी हैं। कीचड़ भी उसकी, कमल भी उसका। कीचड़ की निंदा मत करना, कमल की प्रशंसा मत करना। कीचड़ की निंदा करोगे तो ही कमल की प्रशंसा कर सकोगे। कमल की प्रशंसा करोगे तो कीचड़ की निंदा करनी ही पड़ेगी। सब उसका है, यहां कैसी निंदा, कैसी प्रशंसा? कीचड़ भी उसकी है—और कीचड़ में कमल छिपा है—और कमल भी उसका है—कमल फिर गिरेगा और कीचड़ हो जाएगा।

जिस व्यक्ति को कमल और कीचड़ में एक ही दिखायी पड़ने लगे, उसने जाना, उसने पहचाना, वह आत्मविद हुआ, सर्वविद भी हुआ। और निश्चित ही ऐसे व्यक्ति का सारा ऐश्वर्य—तामैश्वर्य्यपदां—सब कुछ उसका है। कीचड़ से लेकर कमल तक सब उसका है। क्षुद्र से लेकर विराट तक सब उसका है। अणु से लेकर परमात्मा तक सब उसका है।

इस जानने में वह विस्फोट घटित होता है, जहां तुम्हारी सब दीनता और हीनता मिट जाती है—सब दीनता और हीनता मान्यता की है—जहां सारा डर मिट जाता, सारा भय मिट जाता।

अब अगर तुम तुम्हारा संन्यासी और तुम्हारा मुनि और त्यागी भी भयभीत हो—संसारी भयभीत है, समझ में आता है; संसारी भयभीत है कि कोई उसका धन न चुरा ले, संसारी भयभीत है कि कहीं बाजार में घाटा न लग जाए, संसारी भयभीत है कि कहीं कोई चोरी न कर ले जाए, संसारी भयभीत है कि पत्नी छोड़कर न चली जाए, संसारी के हजार भय हैं। तुमने देखे, तुम्हारे संन्यासी के कितने भय हैं? वह तथाकथित साधु और मुनि के कितने भय हैं? वह भी मरा जा रहा है, परेशान है कि कहीं पुण्य न खो जाए, कहीं कुछ पाप न हो जाए; व्रत किया है, टूट न जाए; नियम बांधा है, खंडित न हो जाए; उपवास किया है, ये भोजन के खयाल सता रहे हैं; स्त्री को छोड़ आया है, वासना मन में पकड़ती है, ये सारी बातें उसे भी भयभीत किये हैं।

सच तो यह है कि तुम से भी ज्यादा डरा हुआ तुम्हारा मुनि है। कंप रहा है। चौबीस घंटे भयभीत है। न दिन में ठीक से रह पाता, न रात ठीक से सो पाता है। रात और डरता है कि कहीं कोई सपना न आ जाए, सपने में कोई सुंदर स्त्री न दिख जाए, सपने में कहीं धन की आकांक्षा न आ जाए। और जिन-जिन से भागा है, वे सब सपने की प्रतीक्षा कर रहे हैं। वे कहते हैं—तुम जरा आंख बंद करो, जरा विश्राम करो तो हम आएं। जिन-जिन को छोड़ आया है, वे सब द्वार पर ही खड़े हैं। जरा सा मौका मिलेगा, भीतर आ जाएंगे।

यह तो अजीब बात हुई, संसारी भी भयभीत है और त्यागी भी भयभीत है, तो फिर अभय को कौन उपलब्ध होगा? अभय को वही उपलब्ध हो सकता है जिसने जाना कि संसार और परमात्मा दो नहीं हैं फिर कोई भय नहीं है। जिसने जाना कि

जीवन भी उसका, मरण भी उसका, फिर कोई भय नहीं है। जिसने प्रकृति और पुरुष का एकात्म जाना, फिर कोई भय नहीं है।

चैत्याः अचितोः न त्रितीयम्।

शांडिल्य के इस सूत्र को जितना हृदय में ले जा सको उतना उपयोगी होगा। कठिन है इसे समझना। क्योंकि हमें सदियों-सदियों तक गलत बातें सिखायी गयी हैं। हमें सदियों-सदियों तक निंदा का जहर पिलाया गया है। हम जहर से भर गये हैं। हमारे रगों में अब खून नहीं बहता, जहर बहता है। पंडित-पुरोहितों ने इतना जहर भर दिया है कि जब कभी कोई सत्य का पदार्पण होता है तो हमारी आंखें झंप जाती हैं। हम सुन भी लेते हैं तो समझ नहीं पाते। समझ भी लेते हैं तो पकड़ नहीं पाते। पकड़ भी लेते हैं तो कभी जीवन में नहीं उतार पाते। और जब तक ये सत्य जीवन में उतर न जाएं, तब तक भरोसा मत करना कि समझ लिये। बौद्धिक समझ समझ नहीं है।

जब ये सत्य तुम्हारे जीवन के अनुभव हो जाते हैं, जब तुम ऐसा अनुभव करोगे शांडिल्य ने जैसा अनुभव किया, जब तुम्हारे भीतर भी यह उदघोष उठेगा कि नहीं सब एक है; पदार्थ और प्रकृति, परमेश्वर और पुरुष नाम हैं; पुरुष है भीतर का नाम, प्रकृति है बाहर का नाम; पुरुष है अंतर्यात्रा, प्रकृति है बहिर्यात्रा; पुरुष है साक्षीभाव, स्त्री है विस्मय-विमुग्धता, लवलीनता; पुरुष है ध्यान, स्त्री है प्रीति—धन्यभागी है वह जिसके ध्यान में प्रीति की गंध होती है और जिसकी प्रीति में ध्यान का प्रकाश होता है। जिस दिन तुम इस भांति ध्यान कर सकोगे कि ध्यान तुम्हारा प्रीति के विपरीत न पड़े, और जिस दिन तुम इस भांति प्रीति कर सकोगे कि प्रीति तुम्हारे ध्यान का खंडन न हो, उस दिन तुम आए मंदिर के द्वार पर, उस दिन तुम ठीक जगह आए, उस दिन तुम्हें तुम्हारा तीर्थ मिला, उस दिन तुम्हें तुम्हारा तीर्थंकर मिला।

और यही मैं तुम से कह रहा हूं कि तुम्हारा प्रेम और तुम्हारा ध्यान संयुक्त हो जाए। ध्यान करो तो ध्यान में प्रीति का राग और रंग हो। प्रीति का अनुराग हो। ध्यान रूखा-सूखा न हो, ध्यान मरुस्थल जैसा न हो, ध्यान में प्रीति के फूल खिलें, प्रेम के झरने बहें, ध्यान मस्ती से भरा हुआ हो, ध्यान की अपनी मधुशाला हो, नाच हो, गान हो, ध्यान जीवन-विपरीत, जीवन-निषेधक न हो, आह्लाद हो, आनंद हो। और अगर तुम प्रीति करो, अगर तुम भक्ति में उतरो, तो तुम्हारी भक्ति मूढ़ता न हो, अंधविश्वास न हो, उस में ध्यान का दीया जलता हो, उसमें ध्यान का प्रकाश हो, उसमें साक्षीभाव रहे। यह परम समन्वय है। इसके पार और कोई समन्वय नहीं है, क्योंकि यहां प्रकृति और पुरुष मिल जाते हैं; जहां ध्यान और प्रेम मिल जाते हैं।

जहां ध्यान और प्रेम मिलते हैं, वहां दृश्य और अदृश्य एक हो जाते हैं, वहां समय और शाश्वत एक हो जाते हैं, वहां लहर और सागर का द्वंद्व समाप्त हो जाता है। तब तुम जानते हो कि लहर सागर है और सागर लहर है। फिर तुम चुनाव नहीं करते, फिर तुम निर्विकल्प हो जाते हो। चुनाव करने को नहीं बचता, विकल्प ही नहीं बचते, वहां निर्विकल्प समाधि लग जाती है; वहां सब समाधान हो गया। अब कीचड़ हो तो तुम्हें कमल दिखायी पड़ता है। अब कमल हो, तो तुम जानते हो कीचड़ है। अब न कहीं

राग लगता, न कहीं विराग। अब हर हालत से तुम जैसा है, उसे जानते हो—यथावत्, यथाभूतं। जैसा है, तुम वैसा ही जानते हो। तुम्हें सब दिखायी पड़ता है। उस सब दिखायी पड़ने में, उस दर्शन में मुक्ति है। फिर तुम पर कोई बंधन नहीं रह जाते।

चैत्याः अचितोः न त्रितीयम्।

प्रकृति और ब्रह्म में कोई भी विभिन्नता नहीं है। स्त्री-पुरुष में कोई विभिन्नता नहीं है। प्रेम और ध्यान में कोई विभिन्नता नहीं है।

आज इतना ही।

प्रवचन ६

धर्म आमूल बगावत है

प्रश्नसार

क्या भक्ति और ज्ञान का भेद सतही है?
क्या गहरे में दोनों एक हैं?

क्या धर्म विद्रोह है?

क्या संन्यास भक्ति की शुरुआत है?

मैं तो प्रेम से बहुत पीड़ित हो चुका हूं;
और आप कहते हैं—प्रेम का ऊर्ध्वगमन ही भक्ति है।
अब उस कीचड़ में और नहीं पड़ना चाहता।

भक्त, भक्ति और भगवान, इन तीनों शब्दों को समझाएं।

आपके पास आना और बैठना अच्छा लगता है।
प्रवचन सुनने के बाद लगता है कि कोई गहरा नशा किया हो;
ध्यान वगैरह करने की भी इच्छा नहीं होती।
पर संन्यास लेने की इच्छा होने लगी है।
क्या इस योग्य हूं?

पहला प्रश्नः शांडिल्य-सूत्र पर हुए पिछले तीन प्रवचनों में भक्ति-गंगा ज्ञान-गंगा बनकर बहती नजर आई। क्या भक्ति और ज्ञान का भेद सतही है? क्या गहरे में दोनों एक ही हैं?

भेद मात्र सतही होता है। भेद मात्र ऊपर-ऊपर है। भीतर अभेद है। भीतर अर्थात अभेद। बाहर अर्थात भेद। जितने केंद्र की तरफ जाएंगे, उतनी ही दूरियां कम होती चली जाती हैं। केंद्र पर सारी दूरियां समाप्त हो जाती है।

यात्रा के प्रस्थान के क्षण में बड़े भेद हैं। भक्त एक ढंग से जाता है, ज्ञानी दूसरे ढंग से जाता है। प्रस्थान के क्षण में दोनों विपरीत भी मालूम होंगे—भेद ही नहीं, विरोधी भी—एक-दूसरे की तरफ पीठ करके जाते हुए, एक-दूसरे का निषेध करते हुए, लेकिन जैसे-जैसे सत्य के करीब पहुंचेंगे, भक्त जैसे-जैसे भक्ति में लीन होगा, और ज्ञानी जैसे-जैसे ज्ञान में लीन होगा, जैसे-जैसे लीनता बढ़ेगी, वैसे-वैसे यह भी दिखाई पड़ना शुरू होगा कि हमारी दिशाएं अलग थीं, हमारे मार्ग भिन्न थे, हमारे मार्ग अलग-अलग स्थानों से गुजरते थे, लेकिन हम जिस शिखर की तरफ पहुंच रहे हैं, वह एक है। शिखर पर पहुंचकर सारी दिशाएं एक हो जाती हैं और सब आयाम एक हो जाते हैं।

तो जैसे-जैसे शांडिल्य गहरे उतर रहे हैं, वैसे-वैसे भक्ति ज्ञान बनती मालूम पड़ेगी। ऐसा होना ही चाहिए, यही लक्षण है गहराई का। और जब तुम भेद ही न कर पाओ, जब भक्त की भाषा और ज्ञानी की भाषा में ही भेद रह जाए, इंगित एक की ही तरफ होने लगे, प्रेम और ज्ञान जब एक ही तरफ इशारा करें, तभी जानना कि घर आया, कि मंजिल पर पहुंचे। जब तक जरा सा भी भेद रहे, जरा सा भी मन में दुराव

रहे, दुई रहे, तब तक समझना अभी मंजिल आई नहीं; अभी और चलना है, अभी और यात्रा करनी है; रुक मत जाना। जब तक ज्ञान में, भक्ति में, कर्म में जरा सा भी इंचभर का भी भेद रहे, तब तक रुक मत जाना। यही कसौटी है।

शिखर पर पहुंचना है। और शिखर का लक्षण क्या होगा, कैसे जानोगे कि शिखर पर पहुंच गए? पहले तो कभी गए नहीं हो शिखर पर, पहुंचोगे तो पहली बार पहुंचोगे, पहचान क्या होगी? पहचान यही होगी कि वहां सारे शास्त्र गले मिलते मालूम होंगे। पहचान यही होगी कि वहां महावीर और मीरा में जरा भेद न रह जाएगा। पहचान यही होगी कि वहां ज्ञान, भक्ति और कर्म एक ही सत्य के तीन चेहरे होंगे—त्रिमूर्ति का वहां दर्शन होगा, लेकिन तीनों के पीछे एक ही प्राण, एक ही अनुभूति।

दूसरा प्रश्नः क्या धर्म विद्रोह है?

धर्म विद्रोह है, संप्रदाय विद्रोह नहीं। संप्रदाय स्थिति-स्थापकता है। संप्रदाय का अर्थ है, मर गया धर्म। विद्रोह मर गया, व्यवस्था बन गई। क्रांति की सांसें टूट गईं, लाश पड़ी रह गई। महावीर के पैरों में जो चला, वह धर्म; जैनियों के सिर पर जो लदा है, वह संप्रदाय। बुद्ध ने जो कहा, वह धर्म; बौद्ध जिसे ढो रहे हैं, वह संप्रदाय। कृष्ण ने जो गाया, वह धर्म; हिंदू जिसके संबंध में विवाद कर रहे हैं, वह संप्रदाय।

हिंदू, जैन, बौद्ध, ईसाई, मुसलमान, यहूदी, ये धर्म की लाशें हैं। इनका धर्म से कुछ लेना-देना नहीं। इनका धर्म से कुछ लेना-देना नहीं है वैसे ही जैसे लाश का जीवित व्यक्ति से कुछ लेना-देना नहीं है। कितना तुमने चाहा था अपनी पत्नी को, अपने बेटे को, सब निछावर करने को राजी थे, और आज बेटे की सांस उड़ गई, पंछी उड़ गया, चले तुम लेकर उसे मरघट, चले तुम जलाने उसे। जिसके पैर में कांटा गड़ जांता तो तुम रातभर न सो पाते, जिसे जरा सी तकलीफ होती तो तुम सब कुछ दांव पर लगा देते, आज उसे लेकर चले तुम मरघट। तुम्हीं लेकर चले मरघट, जमीन में गड़ाने कि आग पर सुलाने। थोड़ा सोचो तो, क्या हो गया?

जीवित जो था, वह और था। अब तो मिट्टी पड़ी रह गई, मिट्टी को जो चिन्मय करता था, मृण्मय में जो चिन्मय था, वह तो जा चुका। तुमने जिसे चाहा था, वह अब नहीं है।

कभी-कभी ऐसा भी हो सकता है—अक्सर ऐसा हो जाता है कि कोई बंदरिया, उसका बेटा मर जाता है फिर भी उसकी छाती से लगाए घूमती रहती है, इसी आशा में कि शायद फिर सांस लौट आएगी। ऐसी ही संप्रदाय की दशा है। यह सच है कि जब कोई जाग्रत व्यक्ति जीता है परमात्मा को, तो परम का अवतरण होता है, उसकी छाया में प्रभु की आभा होती है, उसके शब्दों में शून्य का संगीत होता है, उसकी आंखों में उसके हृदय की तरंगें होती हैं, उसके स्पर्श में जो नहीं दिखाई पड़ता और जिसे नहीं छुआ जाता वह दिखाई पड़ता है और वह छुआ जाता है। तुम आनंदमग्न हो जाते हो। तुम उसके साथ किसी भी बगावत में जाने को राजी हो जाते

हो, तुम उसके साथ किसी भी क्रांति-पथ पर जाने को राजी हो जाते हो; तुम उसके साथ नर्क में रहना पसंद करोगे बजाय अकेले स्वर्ग में रहने के।

बुद्ध के साथ नर्क मिले तो भी सौभाग्य होगा। उसके प्रभाव में, उसकी प्रभा में तुम सब दांव पर लगा देते हो, तुम जुआरी हो जाते हो, तुम हिसाब-किताब नहीं करते। उसका संस्पर्श ऐसा होता है कि तुम्हारे दर्पण की सारी धूल झड़ जाती है। और तुम्हारे दर्पण में वही दिखाई पड़ने लगता है, जो है। तब तुम संस्कार तोड़ देते हो, समाज तोड़ देते हो, संस्कृति तोड़ देते हो, सभ्यता तोड़ देते हो। सोचो थोड़ा, महावीर के साथ जो नग्न होकर खड़े हो गए थे, उन्होंने क्या नहीं दांव पर लगा दिया होगा? क्या बचाया था? परिवार दांव पर लगा दिया, सभ्यता दांव पर लगा दी, संस्कृति दांव पर लगा दी, सब दांव पर लगा दिया। जो बुद्ध के साथ जाने को राजी हुए थे, उन्होंने वेद दांव पर लगा दिए, उपनिषद दांव पर लगा दिए, गीता दांव पर लगा दी, सब दांव पर लगा दिया।

जब गीता जिसने कही थी वह खुद मौजूद हो, तो फिर गीता की कौन फिकर करता है? जिन ओठों से वेद जन्मे थे, वे ओठ फिर जीवित हों, तुम से बोलते हों, फिर वेद को तुम हटा न दोगे तो और क्या करोगे। लेकिन बुद्ध के जाने के बाद, उस पक्षी के उड़ जाने के बाद तुम्हारे हाथ में शब्द मात्र की संपदा रह जाती है। फिर तुम उन्हीं शब्दों में वेद खोजते हो, उपनिषद खोजते हो; फिर वेद निर्मित होता है, फिर उपनिषद निर्मित होता है। विद्रोह समाप्त हो गया, अब तुम कुछ दांव पर नहीं लगाते, अब तुम सिर्फ पूजा करते हो। अब धर्म औपचारिकता होता है। अब तुम मंदिर चले जाते हो, सिर झुका आते हो पत्थर की मूर्ति को, तुम नहीं झुकते, सिर्फ सिर झुकता है—कोरा, खाली—तुम्हारा हृदय नहीं झुकता, तुम सिर्फ औपचारिक सन्मान। एक गूंज है जो अतीत से सुनाई पड़ती है। उस गूंज के कारण तुम अब भी सन्मान देते जाते हो। मगर तुम्हारे सन्मान में तुम नहीं होते।

आज तुम कुछ भी दांव पर नहीं लगाते। उलटा आज तुम बुद्ध या महावीर या कृष्ण या क्राइस्ट के साथ खड़े होकर कुछ कमाने की सोचते हो; प्रतिष्ठा मिलती है, सम्मान मिलता है। मंदिर जाने वाले को प्रतिष्ठा मिलती है, सम्मान मिलता है; लोग सोचते हैं धार्मिक है। और जिसे भी लोग सोचते हैं धार्मिक है, वह आदमी ज्यादा कुशलता से बेईमानी कर सकता है। उसकी धार्मिकता की आड़ में बेईमानी छिप जाती है। इसलिए सभी बेईमान अपने को धार्मिक सिद्ध करने की चेष्टा में संलग्न होते हैं। यज्ञ कराएंगे, हवन कराएंगे, पाठ करवाएंगे, सत्यनारायण की कथा कहलवाएंगे। ये विज्ञापन हैं। ये खबरें हैं कि लोगों को पता हो जाए कि मैं धार्मिक हूं; तुम्हें मुझ से कोई भय नहीं है, और अगर मैं तुम्हारी जेब में हाथ डालूं तो तुम्हारे ही हित के लिए डाल रहा हूं; तुम्हारे ही लाभ के लिए, अगर तुम्हारी गर्दन काटूं; अगर तुम्हारा शोषण भी हो तो ना-नुच मत करना, मैं धार्मिक आदमी हूं। लोग मंदिर बनवाते हैं, धर्मशाला खड़ी करवाते हैं, यह प्रचार है। यह विज्ञापन की कला का हिस्सा है। एक बार लोग मान लें कि तुम धार्मिक हो, तो तुम्हारे शोषण की क्षमता हजार गुनी हो जाती है। अब विद्रोह नहीं, अब तो विद्रोह से उलटी बात हो गई, व्यवसाय हो गया।

लेकिन धर्म अपने मूल स्वर में विद्रोही है। और विद्रोह और क्रांति का भी भेद समझ लेना। धर्म क्रांति नहीं, विद्रोह है। विद्रोह क्रांति से भी ऊंची और गहरी दशा है। क्रांति सामूहिक होती है, विद्रोह वैयक्तिक होता है। और जब भी तुम समूह में क्रांति करोगे तो जिस समूह में क्रांति करोगे, उस समूह के साथ समझौता करना होगा, उतना ही विद्रोह कम हो जाएगा। उतनी ही आग कम हो जाएगी, उतनी ही राख जम जाएगी।

समझो।

एक कम्युनिस्ट है, कम्युनिस्ट क्रांतिकारी है। लेकिन क्रांतिकारी कम्युनिस्ट को भी क्रांति के लिए कम्युनिस्ट पार्टी निर्मित करनी होती है। फिर जो लोग उस पार्टी में सम्मिलित होते हैं, स्वभावतः उनको अपनी व्यक्तिगत चिंतना खोनी पड़ती है। उन्हें अपना व्यक्तित्व खोना पड़ता है—नहीं तो पार्टी कैसे बने, दल कैसे बने? व्यक्तित्व खोकर दल बन जाता है। फिर जो पार्टी कहे, वही उन्हें कहना होता है। फिर वे जरा इंचभर यहां वहां नहीं जा सकते। यह बहुत विद्रोह न हुआ। यह तो शुरू से ही विद्रोह के प्राण संकट में पड़ गए।

विद्रोही वैयक्तिक होता है। महावीर ने कोई दल खड़ा नहीं कर लिया, विद्रोह किया—निजता ही विद्रोह थी। फिर जो लोग उनके पीछे चले, वे भी कोई दल नहीं खड़ा कर लिए। इस बात को भी खयाल में रखना। बहुत लोग उनके पीछे चले, लेकिन जो भी उनके पीछे चला वह व्यक्तिगत रूप से विद्रोह करके पीछे चला। महावीर से उनके शिष्यों का संबंध निजी है। प्रत्येक शिष्य का निजी है।

वही मैं तुम से भी कहता हूं, प्रत्येक संन्यासी से मेरा संबंध निजी है। निजी इस अर्थ में कि तुमने संन्यास मुझ से लिया है, तुम मेरे द्वारा दीक्षित हुए हो, तुमने मेरा हाथ पकड़ा है, मेरे तुम्हारे बीच कोई और नहीं है। किसी और ने भी मेरा हाथ पकड़ा है। स्वभावतः जिस दो व्यक्तियों ने मेरे हाथ पकड़े हैं, उनके आपस में कुछ तालमेल होंगे। एक सा सुर होगा। लेकिन एक सा सुर होना चाहिए, इसकी कोई चेष्टा नहीं है। दोनों ने चूंकि मुझ से संबंध जोड़ा है, इसलिए दोनों में कुछ बातें तो मेल खाएंगी। लेकिन मेल खाना ही चाहिए, इसका कोई आग्रह नहीं है। अगर इसका आग्रह हो, तो विद्रोह मरना शुरू हो गया। प्रत्येक संन्यासी की निजता की सुरक्षा की जानी चाहिए। उसे किसी कीमत पर भी अपने अंतर्विद्रोह की ज्वाला को क्षीण नहीं करना है।

क्रांति सामूहिक होती है, विद्रोह वैयक्तिक होता है। क्रांति भविष्य-उन्मुख होती है, विद्रोह वर्तमान में होता है। क्रांति कहती है—कल जब हम संगठित होंगे, और जब हम बदल देंगे समाज को, तब स्वर्णयुग आएगा। तब हम बसाएंगे एक नई दुनिया। क्रांति कल की तरफ देखती है। खयाल रखना, समाज बीते कल की तरफ देखता है, क्रांतिकारी आने वाले कल की तरफ देखता है, विद्रोही आज में जीता है—न पीछे जो कल गया उसकी चिंता है, न आने वाले कल की कोई चिंता है। आने वाला कल अपने आप आ जाएगा। आज मैं जी लूं और मेरा विद्रोह प्रखर हो, मेरे विद्रोह में कोई समझौता न हो, मैं किसी कीमत पर अपने को बेचूं नहीं; मैं जैसा हूं, जैसा चाहता हूं, वैसा ही आज जी लूं, मेरे आज से ही कल भी निकलेगा, वह अपने

आप आ जाएगा। उसकी कोई चिंतना लेने की जरूरत नहीं। कल के आधार पर मैं आज को निर्मित न करूं। बल्कि आज से कल को निकलने दूं तो विद्रोह है। कल के आधार पर आज को निर्मित करूं तो क्रांति।

फिर कल के आधार पर जब तुम आज को निर्मित करोगे, स्वभावतः तुम्हारे ऊपर जाल फैलना शुरू हो गया। तुमने ही फैलाना शुरू कर दिया, तुमने जंजीरें डाल लीं, तुम्हारे स्वातंत्र्य में समझौता हो गया, तुम्हारी स्वतंत्रता पूरी न रही।

ठीक वर्तमान में जीना धर्म है। और धर्म बड़ी से बड़ी क्रांति है। क्योंकि धर्म के मूल-सूत्र क्या हैं? जागो। यहां सोए हुए लोगों की दुनिया है, सोए हुए लोगों ने उनकी नींद सुव्यवस्था से चले ऐसे नियम बना रखे हैं, जो आदमी भी जागेगा, सोए हुए लोग उस से नाराज होंगे, वे उसे सूली देंगे; क्योंकि जागा आदमी उनकी नींद में खलल डालने लगेगा। तुमने देखा नहीं, तुम अगर रोज सुबह आठ बजे तक सोते हो और तुम्हारे घर में कोई व्यक्ति तीन बजे से उठ आता हो, तो उसकी मौजूदगी से खलल पड़ने लगता है। अगर वह प्रार्थना करे, पूजा करे, व्यायाम करे, आसन करे, योग करे, उसकी मौजूदगी से, उस के जागने से—एक दीया जलाए, स्नान करे बाकी लोगों की नींद में बाधा पड़ने लगी; बाकी लोगों को कठिनाई होने लगी।

यह छोटी सी जीवन की दुनिया में। लेकिन विराट में जब कोई जागता है, तो उसकी मौजूदगी दूर-दूर तक खलल पहुंचा देती है। न मालूम कितने लोगों की नींद टूटने लगती है, न मालूम कितने लोगों के सपने थर्राने लगते हैं—नहीं तो तुम जीसस को सूली क्यों देते, सुकरात को जहर क्यों पिलाते? तुम्हें पिलाना पड़ा। तुम्हें अपनी नींद की रक्षा करनी थी। ये लोग इतने जोर से चिल्लाने लगे, ये इतना शोरगुल मचाने लगे, ये तुम्हें आकर हिलाने लगे, ये तुम्हें उखाड़ने लगे तुम्हारी नींद से, ये चिल्लाने लगे कि तुम जो देख रहे हो वह सपना है, जागो, आंख खोलो! और तुम मधुर सपने देख रहे थे, सोने के महल बना रहे थे, तुम बड़ी कामनाओं में लिप्त थे, तुम बड़े मीठे सपनों में जा रहे थे और कोई आकर चिल्लाने लगा और कोई आकर जगाने लगा, यह घड़ी न थी कि तुम उसकी बात सुनते, तुम नाराज हुए, तुमने बदला लिया।

पहली बात, धर्म कहता है—जागो। जागरण धर्म का मूल सूत्र है। सोए हुए लोगों की भीड़ और जागा हुआ आदमी, दोनों के बीच सब तालमेल टूट जाते हैं। सोया हुआ आदमी एक तरह से सोचता है, उसके मूल्य अलग, उसकी तर्क-व्यवस्था अलग, उसकी विचार-सरणी अलग, उसके लक्ष्य अलग, उसका सारा जीवन-ढांचा अलग, उसकी शैली अलग। और यह जागा हुआ आदमी किसी और ही दुनिया की खबर लाता है। उस दुनिया में धन का मूल्य नहीं है। सोए हुए आदमी की दुनिया में धन का ही मूल्य है। जागा हुआ आदमी कुछ ऐसी खबर लाता है जहां काम का कोई मूल्य नहीं है। सोए हुए आदमी की दुनिया में कामवासना के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। यह जागा हुआ आदमी एक ऐसी खबर लाता है जहां अहंकार होता ही नहीं, और सोए हुए आदमी की दुनिया में अहंकार ही केंद्र है, जिस पर उसका चाक चलता है। इन दोनों में मुठभेड़ हो जाती है। धर्म बगावत है। धर्म बड़ी से बड़ी बगावत है। आमूल बगावत है।

मैं कोई मुल्क नहीं हूं कि जला दोगे मुझे
कोई दीवार नहीं हूं कि गिरा दोगे मुझे
कोई सरहद भी नहीं हूं कि मिटा दोगे मुझे
यह जो दुनिया का पुराना नक्शा
मेज पर तुमने बिछा रक्खा है
इसमें कावाक लकीरों के सिवा कुछ भी नहीं
तुम मुझे इसमें कहां ढूंढते हो
मैं इक अरमान हूं दीवानों का
सख्त-जां ख्वाब हूं कुचले हुए इंसानों का
लूट जब हद से सिवा होती है
जुल्म जब हद से गुजर जाता है
मैं अचानक किसी कोने में नजर आता हूं
किसी सीने से उभर आता हूं
आज से पहले भी तुमने मुझे देखा होगा
कभी मशरिक में कभी मगरिब में
कभी शहरों में कभी गांवों में
कभी बस्ती में कभी जंगल में
मेरी तारीख ही तारीख है, जुगराफिया कोई भी नहीं
और तारीख भी ऐसी जो पढ़ाई तो जा नहीं सकती
लोग छुप-छुप के पढ़ा करते हैं
कि मैं गालिब कभी मगलूब हुआ
कातिलों को कभी सूली पे चढ़ाया मैंने
और कभी आप ही मसलूब हुआ
फर्क इतना है कि कातिल मेरे मर जाते हैं
मैं न मरता हूं न मर सकता हूं

धर्म ऐसा शाश्वत विद्रोह है, जो न मरता है, न मर सकता है। लौट-लौट आता है। एक बुद्ध बिदा होता है कि तुम जल्दी ही फिर अपनी नींद में खोने लगते हो। तुम जल्दी से अपनी चादर ओढ़ लेते हो, अपने तकिए सम्हाल लेते हो, तुम फिर निश्चित होकर सपना देखने लगते हो। लेकिन किसी न किसी कोने से बगावत फिर उभर आती है। किसी न किसी कोने से परमात्मा फिर आवाज देता है। परमात्मा तुम से हारता नहीं। और परमात्मा तुम से ऊबता भी नहीं। और परमात्मा तुम्हारे प्रति उपेक्षा से भी नहीं भरता है। तुम लाख भटको, तुम्हारी हर भटकन उसके लिए एक चुनौती है। वह फिर लौट आता है।

कृष्ण ने कहा न गीता में, मैं फिर-फिर आऊंगा—संभवामि युगे-युगे। जब-जब अंधेरा होगा, और जब-जब लोगों का मन धर्म के प्रति ग्लानि से भर जाएगा, और जब-जब शुभ पर अशुभ की प्रतिष्ठा होगी, और जब-जब सज्जन को असज्जन

सताएगा, मैं आऊंगा। यह कृष्ण का ही वचन नहीं है, कृष्ण धर्म की तरफ से बोल रहे हैं। कोई कृष्ण आ जाएंगे, ऐसा नहीं है, लेकिन किसी कोने से धर्म उभर आएगा, बगावत उठेगी, कोई न कोई सोयों में से जाग जाएगा, कहीं से किरण फूटेगी।

धर्म न तो मरता है, न मारा जा सकता है; लेकिन जिन्हें भी धर्म को पाना हो, उन्हें यह स्मरण रखना चाहिए कि धर्म जब भी आता है तो विद्रोह की तरह आता है। विद्रोह के ही रूप में आता है। वही उसकी देह है। और अगर तुम विद्रोह को न पहचान सको तो तुम धर्म से चूकते चले जाओगे। तुम गीताओं में सिर मारो और कुरानों की पूजा करो और बाइबिलों में आंखें गड़ाए-गड़ाए अंधे हो जाओ, धर्म तुम्हें नहीं मिलेगा। धर्म जब आता है तब बगावत की तरह आता है। गीता, कुरान और बाइबिल कभी बगावत थे, मगर वह बात गई। अब तुम लाश ढोते हो। अब तुम्हें फिर कहीं खोजना होगा कोई जो जागा हुआ हो। तुम्हें फिर किसी क्राइस्ट का हाथ पकड़ना होगा। और कठिनाई यही है कि बाइबिल प्यारी लगती है और क्राइस्ट बहुत कष्टकर मालूम होते हैं।

बाइबिल प्यारी लगती है क्योंकि बाइबिल तुम्हें बदल ही नहीं सकती। तुम बाइबिल का तकिया बना लेते हो और मजे से सो जाते हो। सर्दी ज्यादा हो तो बाइबिल का कंबल बना लेते हो और ओढ़ लेते हो, मजे से सो जाते हो। क्राइस्ट का न तो तुम तकिया बना सकोगे और न कंबल बना सकोगे। अगर नींद न आती हो तो तुम बाइबिल की गोलियां बना लेते हो—शामक दवाएं, ट्रैंक्युलाइजर्स—और उनको पीकर सो जाते हो, और गहरी नींद में खो जाते हो। तुम जीसस का ट्रैंक्युलाइजर न बना सकोगे। तुम जीसस से नींद का कोई उपाय न खोज सकोगे।

इसलिए लोग जीवित सदगुरु से भागते हैं। और जब सदगुरु मर जाता है तब उसकी पूजा करते हैं। अजीब रिवाज है। अजीब रिवाज है तुम्हारा! अजीब ढंग हैं! अजीब ढर्रा है तुम्हारा! क्राइस्ट मौजूद हों तो सूली लगाओ, और जब मर जाएं तो सारी दुनिया ईसाई हो जाती है। मोहम्मद जब हों तो तुम उन्हें एक गांव में शांति से नहीं बैठने देते—मोहम्मद की जिंदगीभर एक गांव से दूसरे गांव में भागने में बीती। और जब मोहम्मद मर जाते हैं, तो तुम लाखों मस्जिदें बनाते हो। करोड़ों लोग मोहम्मद के चरणों में सर झुकाते हैं। करोड़ों लोगों के लिए मोहम्मद हृदय की गहरी से गहरी धुन हो जाते है। मगर यह बड़ा मजा है। इस मजे को देखो, पहचानो।

और यह मत सोचना यह किसी और ने किया है, यह तुमने किया है। और यह तुम अभी भी कर रहे हो। और जब तक तुम यह करते रहोगे, तब तक तुम धर्म से अपरिचित रहोगे। जिसको तुम धर्म समझते हो, वह धर्म नहीं है। वह तो धर्म के ऊपर जम गई राख है। अंगारा तो दब गया बहुत। राख सुविधापूर्ण है, तुम्हें जलाती नहीं; छुओगे तो फफोले भी नहीं उठते। ऐसा ही थोड़े ही है कि तुम राख को विभूति मानने लगे हो, राख ही तुम्हारी विभूति हो गई है, राख के ही तुम टीके लगा रहे हो, राख ही तुम्हारी आत्मा पर भी पड़ गई है। राख से बचो, अंगारा तलाशो। विभूति अगर कहीं है, तो अंगारे में होगी। राख में क्या होगी?

यह सांयोगिक नहीं हो सकता है कि तथाकथित धार्मिक आदमी राख को विभूति कहता है। यह बड़ा प्रतीकात्मक है। वह यह कहता है—राख पर मैं अपनी मुट्ठी बांध लेता हूं, राख को मैं अपने ताबीज में बंद कर लेता हूं; राख मेरी है, जो चाहूं, जैसा चाहूं, वैसा इसके साथ व्यवहार करता हूं। अंगारे के साथ तुम जो चाहो, जैसा चाहो, वैसा व्यवहार न कर सकोगे। और अंगारे को अपने भीतर लेना अपने जीवन में ज्वाला जगाने की चेष्टा है। जो जलना चाहते हैं, जो मिटना चाहते हैं, धर्म उनके लिए है। धर्म बड़ी बगावत है। और बड़े कष्ट हैं।

इस जगत में कोई भी सुख बिना मूल्य चुकाए नहीं मिलता। और तुम परमात्मा को बिना मूल्य चुकाए पाना चाहते हो। तुम चाहते हो ऐसे ही मिल जाए, औपचारिकताओं से मिल जाए—कि कभी मंदिर हो आएंगे, कि कभी माला फेर लेंगे, कि कभी गीता पढ़ लेंगे, ऐसे ही जिंदगी के काम-धाम में कहीं थोड़ा-बहुत समय निकाल लेंगे, राम-राम जप लेंगे, जपने का मौका नहीं होगा तो राम-राम छपी चदरिया ओढ़ लेंगे, खुद को सुविधा नहीं होगी तो एक नौकर रख लेंगे—उसी को तुम पंडित-पुजारी कहते हो—उससे कहेंगे, तू हमारे नाम से प्रार्थना कर दिया कर हमें तो फुर्सत नहीं है, तो एक मध्यस्थ चुन लोगे। वह तुम्हारे लिए यज्ञ कर देगा, हवन कर देगा, रोज आकर मंदिर में घंटी बजा जाएगा—तुम्हारे घर के मंदिर में भी तुम्हें जाने की फुर्सत नहीं है। लेकिन तुम सम्हाल रहे हो दोनों दुनिया। तुम कहते हो—एक नौकर तो रख दिया है, वह सम्हाल लेता है; वह पूजा कर देता है, प्रार्थना कर देता है। इतने सस्ते से तुम अगर धार्मिक होना चाहो तो नहीं हो पाओगे। कुछ दांव पर भी लगाओ।

और सब से बड़ी बात क्या है जो दांव पर लगानी पड़ती है? सब से बड़ी बात यही है—अहंकार दांव पर लगाना होता है। इस सब से तो तुम्हारे अहंकार को सजावट मिलती है। लेकिन जब तुम किसी सदगुरु के पास जाओगे तो तुम्हारे अहंकार को सजावट मिलनी बंद हो जाएगी। लोग तुम्हें पागल कहेंगे। लोग तुम्हें दीवाना कहेंगे—उन्होंने सदा कहा है। जो राख के पूजने वाले हैं, अंगारा जब तुम लेकर चलोगे, तुम्हें पागल न कहेंगे तो क्या कहेंगे? वे कहेंगे—होश-हवाश सम्हालो। बहुत जल चुके हैं इस में पहले, तुम मत जलो। हम से कुछ सीखो। हम भी धार्मिक हैं, लेकिन हम मंदिर जाते हैं और एक मरी हुई प्रतिमा की प्रतिष्ठा रखते हैं, पूजा करते हैं।

यह दुस्साहस है कि तुम वस्तुतः धार्मिक होना चाहो। और जब तुम वस्तुतः धार्मिक होना चाहोगे तो अड़चनें आनी शुरू होंगी, क्योंकि तुम्हारा तालमेल टूटने लगेगा। सोए हुए आदमियों और तुम्हारे बीच फासला बढ़ने लगेगा। वे कुछ कहेंगे, तुम्हें कुछ और दिखाई पड़ेगा। फिर तुम अपने भीतर से जीना शुरू करोगे। और जब भी तुम भीतर से जीओगे, तभी तुम पाओगे तुम से कोई भी राजी नहीं है। क्योंकि यहां सभी चाहते हैं कि तुम उनके हिसाब से जीओ। तुम्हें स्वतंत्रता देने को यहां कोई भी उत्सुक नहीं है—न तुम्हारे पिता, न तुम्हारी मां, न तुम्हारे गुरु, न तुम्हारा पुरोहित, न तुम्हारे बेटे, न तुम्हारी बेटियां, न तुम्हारी पत्नी, न तुम्हारे पति, यहां तुम्हें कोई भी स्वतंत्रता देने को राजी नहीं हैं, यहां सब चाहते हैं कि तुम उनकी मानकर चलो। उनकी

मानकर चलो तो सब ठीक, उनकी मानकर न चलो तो तुम गलत। और जिस दिन तुम भीतर की आवाज सुनने लगोगे उस दिन तुम किसी की भी न मान सकोगे, उस दिन परमात्मा की माननी पड़ेगी। इसलिए वे कहते हैं—ध्यान इत्यादि में मत पड़ना, भक्ति इत्यादि में मत उलझना, क्योंकि जो पहले उलझे हैं, जैसे मीरा उलझी, तो फिर देखा क्या हुआ—लोकलाज खोई—वैसे ही लोकलाज तुम भी खो दोगे।

किसी महिला ने पूछा है कि आपकी बातें सुनती हूं तो नाचने का मन होता है। लेकिन फिर डर लगता है कि लोग क्या कहेंगे? यह तो प्रत्येक के सामने सवाल उठेगा—लोग क्या कहेंगे? मीरा के सामने भी उठा था, तुम्हारे सामने भी उठा है। मीरा ने वही सुना जो भीतर हुआ; छोड़ दी लोकलाज। अब यह तुम पर निर्भर है, अगर तुमने यह सुना कि लोग क्या कहेंगे और उनके अनुसार चले तो तुम सांप्रदायिक रहोगे—हिंदू, मुसलमान, ईसाई, मगर धार्मिक कभी न हो पाओगे। और मीरा ने जो जाना, उस से तुम वंचित रह जाओगे। और वही जानने योग्य है। वही पाने योग्य है।

अंधों की मानोगे तो अंधे रह जाओगे। अगर मानना हो तो किसी आंख वाले की मानना। और आंख वाले को किताब में मत खोजना, क्योंकि किताब के पास कहां आंख है? आंख वाले को ही खोजना। और ऐसा कभी नहीं होता है कि इस दुनिया में आंख वाले न होते हों। परमात्मा इस दुनिया को कभी भी खाली नहीं करता। किसी न किसी कोने में खड़ा ही रहता है। जो खोजते हैं, उन्हें मिल जाता है। मगर वे ही पा सकते हैं, जो विद्रोह करने की क्षमता रखते हैं।

तीसरा प्रश्नः क्या संन्यास भक्ति की शुरुआत है? कृपा करके कहिए।

संन्यास सिर्फ शुरुआत है। न भक्ति की न ज्ञान की, न कर्म की। संन्यास सिर्फ शुरुआत है। फिर तीन मार्ग हो जाते हैं। कोई ज्ञान पर जाएगा, कोई भक्ति पर, कोई कर्म पर। संन्यास तो सिर्फ जाने की तैयारी है। संन्यास तो इस बात की घोषणा है कि मैं जाने को तैयार हूं। इसके बाद मार्ग अलग हो जाएंगे।

यहां मेरे पास संन्यासी हैं, हजारों संन्यासी हैं, उनमें भी तीन तरह के लोग हैं, कुछ हैं जो कर्म से ही आ सकेंगे, कर्मोन्मुख हैं। उन्हें मैं कर्म में लगाता हूं। उनके लिए कहता हूं कि कर्म ही प्रार्थना है, कर्म ही पूजा है; उन्हें कहता हूं कि कृत्य में डूब जाओ। इस कृत्य को परमात्मा का कृत्य मान लो, और इसमें डूब जाओ। और तब छोटा सा कृत्य भी पूजा हो जाता है। जैसे किसी को मैंने कहा उदाहरण के लिए कि आश्रम में सफाई करो। अब तुम यह चकित होओगे कि सफाई किसी के लिए ध्यान बन जाती है।

आश्रम में एक सफाई करने वाले संन्यासी हैं, पी.एच. डी. हैं, यूनिवर्सिटी के प्रोफेसर थे, अब वह मुझ से आकर कहते हैं—इतना आनंद मुझे कभी हुआ ही नहीं। यह क्या कर दिया! अब इस पर भरोसा न आएगा, किसी को भी कि क्या कर दिया?

कुछ भी नहीं किया है। आश्रम में बुहारी लगा रहे हैं और उनके जीवन में क्रांति घटित हो गई है। बुहारी लगाने से कहीं क्रांति घटित होती है! तब तो कितने बुहारी लगाने वाले लोग हैं दुनिया में, ये सब सिद्ध हो जाते। नहीं, जब तुम किसी कृत्य को अपना समर्पण बना लेते हो, तब क्रांति घट जाती है—कृत्य कोई भी हो, बुहारी लगाना ही क्यों न हो।

कुछ लोग हैं जो कृत्य के माध्यम से परमात्मा तक पहुंचेंगे। उनके पास बड़ी ऊर्जा है। उन से तुम कहो कि आंख बंद करके बैठ जाओ और ध्यान करो, तो उन्हें बड़ी अड़चन हो जाएगी। छोटे बच्चे को कहो कि आंख बंद करके ध्यान करो, वह बैठ भी जाएगा आंख बंद करके तो हिलेगा, डुलेगा, हाथ-पैर चलाएगा, करवटें बदलेगा, इधर खुजाएगा, उधर खुजाएगा, बीच-बीच में आंख खोलकर देखेगा... छोटे छोटे संन्यासी मेरे पास जब संन्यास लेने आते हैं—छोटे बच्चे—उनसे मैं कहता हूं आंख बंद करो तो वे इतने भींचकर आंख बंद करते हैं। उस के भींचने का कारण ही यह है कि अगर भींचकर न करें तो खुल जाएगी। सारी ताकत लगा देते हैं, फिर भी खुल-खुल जाती है। फिर भी बीच में जरा देख लेते हैं कि फोटो उनकी निकाली जा रही है कि नहीं, कि चारों तरफ लोग कैसा अनुभव कर रहे हैं, कोई हंस तो नहीं रहा है। छोटे बच्चे के पास इतनी ऊर्जा है, अभी ऊर्जा का प्रवाह शुरू हुआ है, अभी सब ताजा-ताजा है, अभी गंगा को बहुत बहना है, अभी विराट ऊर्जा लेकर आया है परमात्मा के घर से, अभी उसे बुद्ध की तरह आंख बंद करके बिठाया नहीं जा सकता।

कुछ लोग हैं जिनके पास सामान्य से ज्यादा ऊर्जा है, उनके लिए कृत्य ही मार्ग बनेगा। फर्क इतना ही हो जाएगा कि अब कृत्य उनका नहीं होगा, परमात्मा का होगा, वे उपकरण होंगे। यही भेद होगा संन्यासी और संसारी में । काम तो दोनों करेंगे, संन्यासी भी करेगा, संसारी भी करेगा। संसारी करता है इस भाव से कि मैं कर्ता; और संन्यासी करता है इस भाव से कि प्रभु कर्ता है, मैं सिर्फ उपकरण, उसके हाथ का हथियार। बस उसी समर्पण-भाव में क्रांति घटती है।

फिर किसी को मैं भक्ति में लगाऊंगा। जैसे स्त्रियां हैं, या बहुत से भावुक पुरुष हैं, जिनकी सारी ऊर्जा हृदय के पास संगृहीत है, जिनके हृदय के पास सारी धड़कन है। न तो देह की शक्ति में उनका प्रवाह है और न मस्तिष्क के विचारों में उनका प्रवाह है, उनका सारा जीवन केंद्रित है भाव के पास, प्रीति उनका द्वार है, उनको मैं कहूंगा—नाचो, प्रभु के गीत गाओ, स्तुति करो, प्रार्थना करो, आह्लादित होओ; उनको संगीत में डुबाऊंगा, उन्हें नृत्य में लगाऊंगा, उन्हें प्रार्थना-पूजा की विधियों में ले जाऊंगा।

फिर कोई है जिसकी सारी ऊर्जा मस्तिष्क में इकट्ठी है। ये तीन जगह हैं जहां ऊर्जा इकट्ठी होती है—शरीर, हृदय और मन। शरीर अर्थात कर्म, हृदय अर्थात भक्ति, मन अर्थात ज्ञान। जिनकी ऊर्जा वहां संगृहीत है, उन्हें ध्यान की कुछ विधि दूंगा; उन्हें चिंतन-मनन-निदिध्यासन की कोई विधि दूंगा।

संन्यास सिर्फ शुरुआत है—भक्ति की नहीं—संन्यास शुरुआत है परमात्मा की तरफ जाने की। तुमने संकल्प किया कि अब जाता हूं, यात्रा पर निकलूंगा, तुमने

पाथेय तैयार कर लिया, तुमने अपना बोरिया-बिस्तर बांध लिया, तुम आकर गांव के द्वार पर खड़े हो गए। संन्यास महाप्रस्थान है। अब तीन रास्ते निकलेंगे। जिस दिन तुमने तय कर लिया कि जाना है उस यात्रा पर, प्रभु को खोजना है, फिर तीन रास्ते निकलेंगे। फिर संन्यासी तीन हिस्सों में विभाजित हो जाएंगे। इन तीनों का मिलन होगा अंतिम दिन फिर, लेकिन बीच में कहीं मिलन न होगा। इनके रास्ते बीच में कभी नहीं कटेंगे।

जो भक्ति के मार्ग से गया है, उसे पता ही नहीं चलेगा कि ज्ञानी का रास्ता कहां है और ज्ञानी कहां खो गया है। जो कर्म के मार्ग से गया है, उसे भक्ति की भाषा समझ में नहीं आएगी। जो ज्ञान के मार्ग से गया है, उसे भी कर्म और भक्ति दुरूह मालूम पड़ेंगी, असंभव मालूम पड़ेंगी। भीतर उसके यही खयाल होगा कि ये लोग भटक गए, मैं पहुंच रहा हूं। तीनों जानेंगे कि मैं पहुंच रहा हूं, बाकी दो भटक गए। क्योंकि बाकी दो दिखते ही नहीं रास्ते पर कहीं। लेकिन अंतिम घड़ी में फिर मिलन है। प्रस्थान के पूर्व तीनों एक जगह खड़े होते हैं और जब यात्रा पूरी हो गई तब तीनों फिर एक शिखर पर पहुंच जाते हैं।

संन्यास सिर्फ शुद्ध प्रारंभ है।

चौथा प्रश्नः मैं तो प्रेम से बहुत पीड़ित हो चुका हूं, और आप कहते हैं—प्रेम का ही ऊर्ध्वगमन भक्ति है। प्रभु, अब उस कीचड़ में नहीं पड़ना चाहता हूं।

उस कीचड़ में कमल भी है। तुमने कीचड़ ही देखी तो तुमने पूरा नहीं देखा। तुमने अधूरा देखा। तुम प्रेम को सीढ़ी न बना पाए, प्रेम तुम्हारे मार्ग में पत्थर बन गया। तुम उस पत्थर पर चढ़ न पाए, नहीं तो तुम्हें और ऊंचाई मिलती। इसमें प्रेम का कसूर नहीं है, तुम्हारा ही कसूर है। तुम कहते हो—मैं तो प्रेम से बहुत पीड़ित हो चुका हूं। प्रेम ने कभी किसी को पीड़ित नहीं किया; हां, प्रेम के कारण बहुत लोग पीड़ित मालूम पड़ते हैं लेकिन कारण कुछ और ही होता है। समझो।

कुछ लोग प्रेम के कारण पीड़ित होते हैं, क्योंकि वे चाहते हैं फलां व्यक्ति मुझे प्रेम करे। अब यह फलां व्यक्ति की स्वतंत्रता है कि तुम्हें प्रेम करे, या न करे। यह तुम्हारा आग्रह नहीं हो सकता। तुमने किसी के सामने जाकर और किसी के घर के सामने जाकर और बोरिया-बिस्तर लगा दिया और कहा कि हम अनशन करेंगे, हम से प्रेम करो, हम सत्याग्रह करते हैं, नहीं तो हम मर जाएंगे।

ऐसा हुआ एक गांव में। एक आदमी ने ऐसा लगा दिया एक सुंदर युवती के द्वार पर। उसका बाप तो बहुत घबड़ाया—सत्याग्रहियों से कौन नहीं घबड़ाता! और उसके दो-चार साथी-संगी भी थे, उन्होंने बाजार में जाकर खूब शोरगुल मचा दिया कि सत्याग्रह हो गया है। गांव भर उत्सुक हो गया, लोगों की भीड़ आने लगी, लोग उससे पूछने लगे कि क्या मामला है? वह बाप तो बहुत घबड़ाया। उसने कहा—अब करना क्या है! शाम तक तो बहुत गांव में शोरगुल मच गया और सारा गांव उसके पक्ष में, क्योंकि उसने सत्याग्रह किया—गांधीवादी। यह कोई पूछे नहीं कि सत्याग्रह

किया किसलिए। अब मोरारजी ने अनशन किया था, किसी ने पूछा किसलिए किया था? वह गांधीवादी! कोई सत्ता पाने के लिए अनशन कर रहा है, यह तो बेचारा भला ही आदमी है, प्रेम पाने के लिए अनशन कर रहा है, कोई बुरा काम तो कर नहीं रहा है! लेकिन किसी ने यह सोचा ही नहीं कि वह युवती भी इसे प्रेम करती है या नहीं, अन्यथा यह जबर्दस्ती हो गई। सब तरह के सत्याग्रह जबर्दस्तियां हैं। उनके भीतर हिंसा है। ऊपर से अहिंसा का ढोंग है।

सांझ तक तो उसका बाप बहुत घबड़ा गया, उसने कहा ऐसा अगर चला तो...सारे गांव का दबाव पड़ने लगा, लोग फोन करने लगे, चिट्ठियां आने लगीं, अखबार में खबरें छप गईं, पोस्टर लग गए कि बहुत अन्याय हो रहा है, सत्याग्रही के साथ बहुत अन्याय हो रहा है, आमरण अनशन है, वह मर जाएगा। प्रेम के लिए ऐसा दीवाना कब देखा गया? मजनू ने भी ऐसा नहीं किया था। और बेचारा बिलकुल अहिंसक है! वहां बैठा है अपना खादी के कपड़े पहने हुए, कुछ बोलता नहीं, कुछ चलता नहीं, चुप बैठा है। किसी ने उस लड़की के बाप को सलाह दी कि अगर इससे निपटना हो तो एक ही रास्ता है, उससे ही निपट सकते हो। क्या रास्ता है? उसने कहा—मैं हल कर देता हूं। वह भागा गया और एक बूढ़ी वेश्या को लिवा लाया। एक बिलकुल मरी-मराई वेश्या। एक तो वेश्या और मरी-मराई, उसको देखकर किसी का जी मिचला जाए, भयंकर बदबू उससे आ रही, उसको ले आया। उस युवक ने जब देखा, वह जो सत्याग्रह कर रहा था, उसने पूछा—तू यहां किसलिए आई? उसने कहा—मुझे तुम से प्रेम है। मैं भी यहीं सत्याग्रह करती हूं जब तक तुम मुझ से विवाह न करोगे, मर जाऊं भला! बस फिर घड़ी-आधा घड़ी में युवक ने अपना बिस्तर समेटा और भागा। फिर सत्याग्रह समाप्त हो गया।

तो प्रेम तुम्हें कष्ट दे सकता है, अगर तुम जबर्दस्ती किसी पर थोपना चाहो। लेकिन यह प्रेम है? यह प्रेम ने कष्ट दिया, यह अहंकार ही है। यह हिंसा ने कष्ट दिया। तुम्हें हक नहीं है किसी पर अपना प्रेम थोपने का, न हक है जबर्दस्ती किसी से प्रेम मांगने का। प्रेम में जबर्दस्ती तो हो ही नहीं सकती। तो कष्ट पाओगे।

या, जिसे तुमने चाहा वह तुम्हें मिल गया। लेकिन मिलने के बाद तुमने उस पर बहुत अपने को आरोपित किया, तुमने उसे अपनी संपत्ति बनाना चाहा, तुमने उसके सब तरफ पहरे बिठा दिए, तुमने कहा, बस मुझ से प्रेम और किसी से भी नहीं, मेरे साथ हंसना और किसी और के साथ नहीं, और तुम बड़े भयभीत हो गए और तुम सुरक्षा करने लगे, और तुम सदा चिंता करने लगे और तुम जासूसी करने लगे—और अगर तुमने अपनी पत्नी को या अपने पति को किसी के साथ हंसते और मुस्कुराते देख लिया तो तुम्हारे भीतर आग लग गई; इससे तुमने कष्ट पाया, इससे तुम पीड़ित हुए, लेकिन यह पीड़ित होने का कारण प्रेम नहीं है। दूसरे को संपत्ति मानने में ही पीड़ा है।

कोई इस जगत में किसी की संपत्ति नहीं है, न कोई इस जगत में किसी की संपत्ति होने को पैदा हुआ है, न किसी को होना चाहिए, यह अपमान है। कोई किसी का गुलाम नहीं। प्रेम दो स्वतंत्र व्यक्तियों के बीच का बहाव है। जब भी उन में से

कोई गुलाम हो जाएगा, एक या दोनों गुलाम हो जाएंगे, तभी बहाव रुक जाता है। और जब बहाव रुक जाता है तब बड़ी पीड़ा है, तब बड़े कांटे चुभ जाते हैं, तब जीवन में घाव हो जाते हैं। प्रेम से लोग दुख पा रहे हैं, वह प्रेम के कारण नहीं, प्रेम के नाम पर कुछ और चल रहा है, अहंकार चल रहा है। यह अहंकार ही है।

तुम चकित होओगे यह जानकर कि व्यक्तियों के साथ तो ईर्ष्या होती ही होती है, ऐसी स्थितियों में ईर्ष्या हो जाती है जहां कि ईर्ष्या का कोई कारण नहीं। पति घर आया है, पत्नी दिनभर राह देखती रही है और पति आकर अखबार पढ़ने बैठ गया, पत्नी अखबार छीन ले सकती है, फाड़कर फेंक दे सकती है—अखबार से ईर्ष्या हो जा सकती है कि मेरे और तुम्हारे बीच आने वाला अखबार कौन होता है?

यह आकस्मिक नहीं है कि दुनिया के बहुत सृजनशील व्यक्तियों को अविवाहित रहना पड़ा। उसके पीछे कुल कारण इतना था कि अगर तुम्हें संगीत से प्रेम है, तो बस इतना ही काफी है, अब स्त्री को तुम प्रेम-वेम मत करो। स्त्री के प्रेम में पड़े तो संगीत और स्त्री में संघर्ष हो जाएगा। सुकरात की स्त्री सुकरात को पीट देती थी। एक बार उसने चाय की पूरी केतली सुकरात के ऊपर उड़ेंल दी, उस का आधा चेहरा सदा के लिए जल गया और काला हो गया। क्या अड़चन थी? अड़चन यही थी कि सुकरात सदा दर्शन में लीन था। उस के शिष्य आते, वह दर्शन की बातों में ऐसा तल्लीन हो जाता कि बस पत्नी को पीड़ा होने लगती। उसे पीड़ा यह थी कि यह दर्शनशास्त्र को मुझ से ज्यादा चाहता है। अब यह किसी व्यक्ति के साथ भी ईर्ष्या का कारण नहीं, लेकिन दर्शनशास्त्र को मुझ से ज़्यादा चाहता है। यह बात स्त्री बर्दाश्त नहीं कर सकती। तुम्हारी पत्नी को अगर नृत्य से प्रेम हो या संगीत से, तो तुम्हें लगेगा तुम्हारी अवहेलना हो रही है।

दुनिया में बड़े चित्रकारों को, बड़े संगीतज्ञों को, बड़े कवियों को, बड़े दार्शनिकों को अविवाहित रहने को मजबूर होना पड़ा। विवाह महंगा सौदा मालूम हुआ। जब किसी ने प्रसिद्ध डेनिस विचारक सोरेन कीर्कगार्ड को पूछा कि आप अविवाहित क्यों रहे? तो उसने कहा कि मैं दो पत्नियों के बीच झंझट में नहीं पड़ना चाहता था। दो पत्नियों के बीच, पूछने वाले ने पूछा! हमें तो पता है आपकी एक भी पत्नी नहीं। सोरेन कीर्कगार्ड ने कहा—यह जो फिलासफी है, यह जो दर्शन है, इससे मेरा लगाव है। सोरेन कीर्कगार्ड एक बार प्रेम में पड़ा था किसी स्त्री के और बिलकुल विवाह के करीब पहुंच गई थी बात, और फिर हट गया। क्योंकि जैसे-जैसे स्त्री से निकटता बढ़ी, वैसे-वैसे स्त्री ने बाधा डालनी शुरू कर दी। अभी विवाह भी नहीं हुआ था कि और बाधा आनी शुरू हो गई। तो सोरेन कीर्कगार्ड ने तय कर लिया कि यह बेहतर है, मैं दो में से एक ही चुन लूं। या तो मुझे गैर-दार्शनिक हो जाना पड़ेगा—जो कि महंगा सौदा है, जो कि मेरे प्राणों का प्राण है, जो कि मेरे सारे व्यक्तित्व को धूल से भर देगा, जो कि मेरी आत्मा की तलाश की हत्या हो जाएगी, जो कि बीज में ही मरना हो जाएगा, वृक्ष मैं हो ही न पाऊंगा, फूल तक पहुंच न पाऊंगा।

तुम ध्यान रखना, कहते हो—मैं तो प्रेम से बहुत पीड़ित हो चुका हूं! तो जरा

तलाश करना। प्रेम के कारण? प्रेम के कारण कोई कभी पीड़ित नहीं होता, प्रेम के साथ कुछ और जुड़ा होगा, कुछ और लगा होगा; प्रेम का नाम होगा, भीतर कुछ और होगा—अहंकार होगा, ईर्ष्या होगी, परिग्रह का भाव होगा, मालकियत होगी। तो फिर तुम कष्ट पाओगे। और उस कष्ट के पाने के कारण तुम प्रेम से घबड़ा जाओगे और तुम कहने लगोगे—प्रेम गलत है। तब तुमने दूसरी भूल की। क्योंकि प्रेम ही प्रीति बनता और प्रीति ही भक्ति बनता, अब तुम उससे भी वंचित हुए। तुम प्रेम से भी गए और परमात्मा से भी गए। मैं तुमसे कहना चाहता हूं—ठीक से विश्लेषण करो, ठीक से निदान करो, और प्रेम के मार्ग पर जो-जो अड़चनें दूसरी हों उन्हें हटा दो, प्रेम इतना बहुमूल्य है कि उसके लिए सब कुछ कुर्बान किया जा सकता है—अहंकार, मालकियत, सब कुर्बान किया जा सकता है।

मगर दुनिया में अजीब लोग हैं। बातें प्रेम की करते हैं, और जब भी कुर्बानी का सवाल आता है तो प्रेम की कुर्बानी देते हैं। अगर अहंकार और प्रेम के बीच चुनना है तो तुम अहंकार चुनते हो, प्रेम नहीं चुनते।

और फिर दोष भी प्रेम को देते हो! मेरे पास रोज लोग आते हैं, कोई छोटी सी बात पति-पत्नी में हो गई और उनमें झगड़ा खड़ा हो गया। इतनी छोटी बात कि जब वे मुझे बताने आते हैं तो संकोच करते हैं, पत्नी पति से कहती है—आप ही कह दें, पति कहता है—नहीं, तुम ही कह दो। मैं पूछता हूं—बात क्या है, कहते क्यों नहीं? वे कहते हैं—बात इतनी छोटी है कि यहां इतने लोगों के सामने कहने में संकोच होता है। जब बात इतनी छोटी है, और तलाक तक नौबत आ पहुंची है, तो मामला क्या है? तुमने प्रेम किया ही नहीं। या किया भी तो बड़ा विषाक्त किया। और आज एक छोटी सी बात पर...।

मैंने सुना है कि हालीवुड में एक विवाह हुआ और जब उस अभिनेत्री ने अपने पति के साथ रजिस्ट्रार के दफ्तर में दस्तखत किए, दस्तखत के करते ही उसने कहा कि नहीं, रजिस्ट्रार से कहा कि रद्द करिए, मुझे यह विवाह नहीं करना। रजिस्ट्रार भी चौंका, उसका पति तो बहुत चौंका—होने वाला पति, जो कि हो ही चुका था पति, दस्तखत हो चुके थे स्टाम्प पर। रजिस्ट्रार ने कहा—लेकिन अभी तो कोई बात ही नहीं हुई, झगड़ा शुरू ही नहीं हुआ; मुझे पता है कि साल-छह महीने में झगड़ा शुरू होगा, मगर अभी तो कोई बात भी नहीं उठी। उस अभिनेत्री ने कहा—झगड़ा हो गया, क्योंकि मैंने छोटे अक्षर दस्तखत किए, और इसने इतने बड़े अक्षर किए मेरे सामने! इससे मतलब साफ है, यह झंझट में मुझे पड़ना नहीं है, यह अभी से दिखाने लगा है अपनी अकड़! मैंने छोटे-छोटे अक्षर बनाए और इसने बड़े-बड़े अक्षरों में दस्तखत कर दिए! ये बात साफ हो गई, इसमें आगे जाने की जरूरत नहीं है।

ऐसी छोटी-छोटी बातें प्रेम के मार्ग पर अवरोध हैं। फिर तुम उनसे पीड़ा पाओगे। मगर उस पीड़ा को तुम प्रेम के कंधे पर मत थोपना।

प्रेम ने कभी पीड़ा नहीं दी। प्रेम ने सदा सुख दिया है। प्रेम ने सदा शांति दी है। प्रेम ही तो एकमात्र वस्तु है इस जगत में जिस में परमात्मा की थोड़ी झलक है। प्रेम

हां तो एकमात्र ऊर्जा है यहां जो आदमी की बनाई हुई नहीं है। जो अकृत्रिम है, स्वाभाविक है। जो तुम्हारे प्राणों के प्राण में बसी है, जो तुम्हारी आत्मा का भोजन है। जैसे शरीर बिना भोजन के न जी सकेगा, वैसी तुम्हारी आत्मा भी बिना प्रेम के नहीं जी सकती। इसीलिए तो प्रेम की इतनी तलाश है। और जिसको प्रेम मिल जाता है, उसे सब मिल जाता है। फिर इसी प्रेम के और आगे सोपान हैं—प्रेम तो सीढ़ी का नाम है—फिर इसके आगे और सीढ़ियां हैं। मगर वे सब प्रेम से ही उत्पन्न होती हैं।

तुम से मैंने कहा कि प्रेम के ये चार रूप हैं—स्नेह; अपने से छोटे के प्रति हो, बच्चे के प्रति। प्रेम; अपने से समान के प्रति हो, मित्र के प्रति; पति-पत्नी के प्रति। श्रद्धा; अपने से बड़े के प्रति हो, मां के प्रति, पिता के प्रति, गुरु के प्रति। और भक्ति; परमात्मा के प्रति, समग्र के प्रति।

ये सब प्रेम की ही धारणाएं हैं। ये प्रेम के ही अलग-अलग ढंग हैं। यह प्रेम का ही पूरा नृत्य है। ये प्रेम की ही भावभंगिमाएं हैं। मगर प्रेम को शुद्ध करते चलो तो पीड़ा नहीं मिलेगी, परम आनंद मिलेगा। और इतने जल्दी थक मत जाओ, इतने जल्दी हार मत जाओ, इतने जल्दी बूढ़े मत हो जाओ। इतने जल्दी हताश मत हो जाओ। कैफी आजमी की ये कुछ पंक्तियां हैं।

बुढ़ापा कहता है—
यह आंधी, यह तूफान, ये तेज धारे
फड़कते तमाशे, गरजते नजारे
अंधेरी फजा, सांस लेता समंदर
न हमराह मिशअल, न गर्दू पे तारे
मुसाफिर, खड़ा रह अभी जी को मारे
जवानी कहती है—
उसी का है साहिल, उसी के कगारे
तलातुम में फंसकर जो दो हाथ मारे
अंधेरी फजा, सांस लेता समंदर
यों ही सर पटकते रहेंगे ये धारे
कहां तक चलेगा किनारे-किनारे

जिस दिन तुम हारे, उस दिन बूढ़े हुए। जिस दिन तुमने कहा कि तूफान बड़ा है, अभी रुक जाओ, तुम सदा के लिए रुक गए। तूफान तो सदा है। तूफान तो इस जगत के होने का ढंग है। तूफान तो संसार है।

अगर तुमने कहा—
यह आंधी, यह तूफान, ये तेज धारे
फड़कते तमाशे, गरजते नजारे
अंधेरी फजा
यह अंधेरी रात...

सांस लेता समंदर
ये उठती हुई गहरी सांसें समंदर की...
न हमराह मिशअल
हाथ में एक मशाल भी नहीं...
न गदू पे तारे
और आकाश में एक तारा भी नहीं...
मुसाफिर खड़ा रह अभी जी को मारे

तो तुम सदा खड़े रह जाओगे। क्योंकि यह तूफान ऐसा ही चलता रहेगा। यह शाश्वत है। ये तारे कभी उगेंगे नहीं। तारे उनको मिलते हैं जो तारों को उघाड़ते हैं। तारे उनको मिलते हैं जो तारों को पैदा करते हैं। और मशाल कहां से आएगी? जो अपने हृदय की मशाल बनाते हैं, उन्हीं के हाथ में मशाल होती है। मशाल कहां से आएगी? जो अपने को जलाते हैं, उन्हीं के पथ पर रोशनी होती है। और तो कोई रोशनी का उपाय नहीं है। जो अपने प्रेम को प्रज्वलित करते हैं, उन्हीं का मार्ग रोशन हो जाता है।

न हमराह मिशअल, न गदू पे तारे
मुसाफिर, खड़ा रह अभी जी को मारे

अभी जी को मारकर खड़े हो गए तो सदा के लिए खड़े हो जाओगे। ऐसे ही तो बहुत लोग खड़े हो गए। सदियों-सदियों से खड़े हैं। न मालूम कितने जन्मों से खड़े हैं। उतरते ही नहीं हैं तूफान में। और जितनी देर खड़े रहोगे, उतना ही भय पुराना होता जाता है, उतनी ही भय की जड़ें फैलती चली जाती हैं।

नहीं, इसको चुनौती समझो। प्रेम चुनौती है। प्रेम के संघर्ष में जाना ही होगा।

उसी का है साहिल, उसी के कगारे

जो चुनौती स्वीकार करता है।

उसी का है साहिल, उसी के कगारे
तलातुम में फंस कर जो दो हाथ मारे

तूफान में उतरकर जो दो हाथ मारता है, फिर तूफान सहयोगी हो जाता है। तूफान सदा ही दुश्मन नहीं है। तूफान दुश्मन उनका है जो किनारे पर खड़े हैं। तूफान उनका संगी और साथी है, जो उस में दो हाथ मार कर आगे बढ़ते हैं। तूफान उन्हें उठा लेता है, तूफान उन्हें दूसरे किनारे तक पहुंचा देता है, तूफान उनके लिए नाव बन जाता है।

उसी का है साहिल, उसी के कगारे
तलातुम में फंस कर जो दो हाथ मारे
अंधेरी फजा, सांस लेता समंदर
यों ही सर पटकते रहेंगे ये धारे
कहां तक चलेगा किनारे-किनारे

प्रेम में अड़चनें हैं। प्रेम में कठिनाइयां हैं। प्रेम का फूल बहुत से कांटों के बीच खिलता है, सच, इसे मैं स्वीकार करता हूं, लेकिन प्रेम कांटा नहीं है। प्रेम की झाड़ी में बहुत कांटे हैं, प्रेम तो उस झाड़ी का फूल है। इस डर से कि कहीं कोई कांटा

हाथ में न चुभ जाए—और निश्चित कांटा हाथ में चुभ सकता है, कांटे वहां हैं; जो फूल को तोड़ने जाएगा, उसकी अंगुलियों में कभी खून आ सकता है—लेकिन वह खून दांव पर लगाने जैसा है। फूल की तलाश में अगर थोड़ा खून गिरे, तो बुरा कुछ भी नहीं—खून का करोगे भी क्या और? आज नहीं कल गिर ही जाएगा, आज नहीं कल मिट्टी में सब मिल ही जाएगा। इसके पहले कि मिट्टी तुम्हें अपने में लीन कर ले, तूफान में दो हाथ मार लो। इसके पहले कि कब्र में समा जाओ, जिंदगी, जवानी, जोश, इसका थोड़ा उपयोग करो, थोड़े पंख फैला लो! और कांटे हैं जरूर। यही तो मजा है गुलाब के फूल को पाने का। कांटे न होते तो पाने में कुछ अर्थ भी न होता। किनारा है दूर और तूफान है बड़ा, यही तो चुनौती है।

और मैं उसी को बूढ़ा कहता हूं जो जीवन की चुनौतियां छोड़ देता है। वही जवान है जो जीवन की सारी चुनौतियों को स्वीकार करता है। चुनौती के स्वीकार की मात्रा ही जवानी की मात्रा है। तब कोई आदमी मरते दम तक जवान रह सकता है। और कोई आदमी पहले से ही बूढ़ा हो सकता है।

यह देश बुरी तरह बूढ़ा हो गया है। इस देश की फजा बूढ़ी हो गई है। इस देश की हवा बूढ़ी हो गई है। इस देश में बच्चे बूढ़े ही पैदा होते हैं। पैदा होते से ही उनके जीवन में क्या-क्या गलत है, क्या-क्या बुरा है, क्या-क्या कठिन है, उसका ही सारा शिक्षण चलता है। उन्हें जीवन को स्वयं देखने का मौका ही नहीं मिलता। वे अपनी परख पैदा नहीं कर पाते, अपना अनुभव नहीं ले पाते। वे किनारे पर ही अटक जाते हैं। वे कभी जवान नहीं हो पाते।

मैं तुमसे चाहता हूं कि तुम उतरो तूफान में। तूफान से तैरे तो ही दूसरा किनारा पा सकोगे। इस पार संसार है उस पार परमात्मा है। और प्रेम का तूफान है दोनों के बीच में। लेकिन प्रेम को शुद्ध करते चलना है, रोज-रोज शुद्ध करते चलना है। प्रेम से गंदगी हटाते चलना है। प्रेम से कीचड़ छांटते चलना है और प्रेम के कमल को सम्हालते चलना है। एक दिन जब प्रेम परिपूर्ण रूप से शुद्ध हो जाता है, जब अपने पूरे निखार को उपलब्ध होता है, तो वही भक्ति है।

तू खुर्शीद है बादलों में न छुप
तू महताब है जगमगाना न छोड़
तू शोखी है, शोखी रियायत न कर
तू बिजली है बिजली जलाना न छोड़
अभी इश्क ने हार मानी नहीं
अभी इश्क को आजमाना न छोड़

प्रेम हारता ही नहीं। जब तक परमात्मा न मिल जाए, प्रेम हार ही नहीं सकता। प्रेम बीज है परमात्मा का।

अभी इश्क ने हार मानी नहीं
अभी इश्क को आजमाना न छोड़

तुम हार मान लिए हो, यह तुम्हारे अहंकार की हार है, यह प्रेम की हार नहीं है,

इसे तुम प्रेम की हार मत समझ लेना, प्रेम हारता ही नहीं। प्रेम हार जानता ही नहीं। प्रेम तो जीत ही जानता है। और जीतते-जीतते उसी दिन पूर्णता को उपलब्ध होता है जिस दिन परमात्मा उपलब्ध हो जाता है। तभी प्रेम विश्राम में जाता है। उसके पहले तक प्रेम विश्राम नहीं करता। लेकिन अहंकार की हार को अक्सर हम प्रेम की हार मान लेते हैं।

तुम्हारा अहंकार जरूर कष्ट में पड़ गया होगा। तुमने कुछ गलत दिशाओं से प्रेम तलाशा होगा। तुमने गलत हाथों से प्रेम पकड़ना चाहा होगा। तुमने प्रेम को पिंजड़े में बंद करना चाहा होगा। तुमने प्रेम के साथ कुछ दुर्व्यवहार किया होगा। इसलिए तुम प्रेम को पाने में असमर्थ हुए हो। अपना दुर्व्यवहार छोड़ो, अपनी गलतियां स्वीकारो, अपनी गलतियां पहचानो, अपनी गलतियां देखो, और तब तुम चकित होओगे—प्रेम अभी कहां हारा!

सच तो यह है तुम्हारा प्रश्न ही यह कह रहा है कि प्रेम अभी जिंदा है। तुम कहते हो—मैं तो प्रेम से बहुत पीड़ित हो चुका हूं, और आप कहते हैं कि प्रेम का ही ऊर्ध्वगमन भक्ति है। प्रभु, अब उस कीचड़ में नहीं पड़ना चाहता हूं। यह तुम्हारा अहंकार बोल रहा है, प्रेम को कीचड़ कह रहा है। लेकिन तुम्हारे भीतर यह प्रश्न उठा, यह इस बात का सबूत है कि अभी भी प्रेम में प्राण है और अभी भी प्रेम में अंकुर है और अभी भी प्रेम फिर से वृक्ष बन सकता है। किस ने तुम से कहा कि प्रेम कीचड़ है? कीचड़ भी है और कमल भी। अगर तुमने कीचड़ ही जाना तो तुमने पूरा प्रेम नहीं जाना। इसलिए तो कमल को पंकज कहते हैं। पंक यानी कीचड़; कीचड़ से जो जन्मता है उसका नाम पंकज। कितना अदभुत रूपांतरण होता है। कहां कीचड़, गंदी कीचड़, एक गंदी तलैया तालाब की, और कहां फिर यह प्यारा कमल!

इस देश ने तो कमल के ऊपर किसी फूल को नहीं रखा। इसलिए विष्णु की नाभि में कमल को उगाया है। इसलिए बुद्ध को कमल पर बिठाया है। कमल इस देश के प्राणों में बसा है। कमल की कुछ खूबी है, कमल में कुछ जादू है, जो किसी फूल में नहीं है। वह जादू क्या है? वह जादू यह है कि कमल बड़ी अशुद्ध कीचड़ से उठता है, और इतना शुद्ध, इतना निर्विकार; चमत्कार है कमल! कमल रहस्यपूर्ण है। कमल इस जगत में रूपांतरण का प्रतीक है। अदभुत रूपांतरण का। सारा रसायन बदल गया। कहां कीचड़ थी गंदगी से भरी, बदबू से भरी, सोच भी न सकते थे कि इसमें कमल पैदा हो सकता है। जिसने जाना नहीं है कि कमल कीचड़ में पैदा होता है, वह कमल को देखकर कभी कल्पना भी नहीं कर सकता है कि कीचड़ से इसका कोई संबंध हो सकता है। एक दाग भी तो नहीं होता है कमल पर कीचड़ का। और सुरभि, और रंग अनूठा और खिलावट! इस पृथ्वी पर कमल से कोमल और क्या है?

तुमने प्रेम का आधा ही हिस्सा देखा। जिसने प्रेम में सिर्फ कामवासना देखी, उसने कीचड़ देखी। जिसने प्रेम में सिर्फ संभोग देखा, उसने कीचड़ देखी। और जिसने प्रेम में समाधि देखी, उसने कमल देखा। जिसने प्रेम में भक्ति देखी, उसने कमल देखा। उठो, कीचड़ से कमल की यात्रा करो!

पांचवां प्रश्नः भक्त, भक्ति और भगवान, इन तीनों शब्दों को समझाने की कृपा करें।

वैज्ञानिक कहते हैं—प्रत्येक वस्तु के तीन रूप होते हैं। जैसे जल को उदाहरण के लिए लें, तो बर्फ एक रूप—जमा हुआ, सख्त कठोर। फिर जल दूसरा रूप—बहता हुआ, प्रवाहमान, तरल। फिर भाप तीसरा रूप—अदृश्य, ऊर्ध्वगामी। तीनों में बड़ा फर्क है। बर्फ कठोर है, जल जरा भी कठोर नहीं। बर्फ थिर है, एक जगह अटका है, बर्फ में कोई गति नहीं है, जल में गति है, प्रवाह है, जल यात्रा है। बर्फ पत्थर की तरह पड़ा है। इसीलिए तो बर्फ को पत्थर का बर्फ कहते हैं। उसमें कोई यात्रा नहीं है, बंद, कहीं जाता नहीं, उसमें कुछ होता नहीं, जैसा का तैसा है; मुर्दा है, जड़ है। जल में जीवन है। गति जीवन का आधार है।

फिर जल में और भाप में भी बड़े फर्क हैं। जल सदा नीचे की तरफ जाता है, भाप सदा ऊपर की तरफ जाती है। जल अधोगामी है, भाप ऊर्ध्वगामी है। जल दिखाई पड़ता है, भाप दिखाई भी नहीं पड़ती। और भी क्रांति घट गई। भाप अदृश्य के साथ एक हो गई।

ऐसे ही ये तीन शब्द हैं—भक्त, भक्ति और भगवान। भक्त है बर्फ की तरह। बड़ी अस्मिता है अभी, मैं भाव है अभी। भक्ति है तरलता, नृत्य, गति, यात्रा; भक्त चल पड़ा, भक्त अब पड़ा नहीं है, उठ खड़ा हुआ; भक्त अब रुका नहीं है, उसने पहला कदम तो उठा लिया। और जिसने पहला कदम उठा लिया, उसने आधी यात्रा पूरी कर ली। क्योंकि एक-एक कदम से ही तो हजारों मील की यात्रा पूरी हो जाती है। पहला कदम ही कठिन है, फिर तो सब सरल हो जाता है। क्योंकि सब कदम एक जैसे हैं। पहला उठ गया तो दूसरे में क्या फर्क है? दूसरा भी पहले जैसा है और तीसरा भी पहले जैसा है। फिर तो उन्हीं कदमों की पुनरुक्ति है। कदम तो एक ही है। फिर कदम के ऊपर कदम रखते जाना है, सीढ़ी के ऊपर सीढ़ी चढ़ते जाना है। मगर जिसे पहला कदम उठाना आ गया, उसे सब कदम उठाने आ गए, क्योंकि कदमों-कदमों में कोई भेद नहीं है।

भक्ति तरलता है, बहाव शुरू हुआ, यात्रा शुरू हुई। और भगवान वाष्प की दशा है, अदृश्य होने की दशा है। भक्त कठोर होता है, भक्ति में तरलता होती है, जब भक्त भगवान तक पहुंचता है तो अदृश्य हो जाता है। ये चैतन्य की ही तीन दशाएं हैं। भक्त से शुरू करना है, भगवान पर पूर्णाहुति होनी है। भक्त कभी भगवान को मिलता है, ऐसा मत सोच लेना, भक्त भगवान हो जाता है। मिलना कहां है? मिलना में तो दूजापन रहता है, दुई रहती है, भेद रहता है। भक्त भगवान से मिलता नहीं, भक्त भगवान हो जाता है। जैसे भाप आकाश के साथ एक हो जाती है।

ये भगवत्ता की तीन दशाएं हैं। भक्त कठोर दशा है, अभी मैं का भाव मौजूद है। भक्ति में मैं टूटा, तरलता आई; मध्य की दशा है। और भगवान में ऊर्ध्वगमन हुआ; जो दृश्य था, अदृश्य हुआ; जो स्थूल था, सूक्ष्म हुआ; जो ज्ञात था, अज्ञात हुआ।

छठवां प्रश्नः आप के पास आना और बैठना अच्छा लगता है। लेकिन प्रवचन सुनने के बाद कुछ और ही लगने लगा है। लगता है कि कोई गहरा नशा किया हो; ध्यान वगैरह करने की भी इच्छा नहीं होती। पर संन्यास लेने की इच्छा होने लगी है। क्या उस योग्य हूं?

यह मधुशाला है। यहां नशा न आए तो तुम बेकार ही आए और बेकार ही गए। यहां पहुंचते ही वही हैं जो डगमगा जाते हैं। यहां आए, इसका सबूत ही यह है कि लौटते समय आंखों में खुमार हो, कि मन में एक मस्ती हो, कि एक नशा छाया हो, कि दूर की पुकार सुनी गई, कि दूर के तारों ने तुम्हें निमंत्रण दिया, कि अभीप्सा जगी; कि तुम्हारे भीतर कोई सोया था स्वर, वह पहली दफा छेड़ा गया; तुम्हारे भीतर कोई बीज दबा पड़ा था, वह टूटा और अंकुरित हुआ; तुम्हारे भीतर कोई अनजानी प्यास तड़फी, तुम्हारे भीतर कोई अस्पष्ट गीत गुनगुनाया गया। यही होना चाहिए।

अगर मुझे सुनकर तुम्हारे भीतर मस्ती न आए, तो तुमने सिर्फ मेरे शब्द सुने, मुझे नहीं सुना। अगर तुम्हारे भीतर मस्ती आ जाए, तुम यहां से चलते वक्त डगमगाते लौटो, थोड़ी बेखुदी आ जाए, बेखुद होकर लौटो—मस्ती यानी अहंकार थोड़ा क्षीण हो; मस्ती यानी थोड़ी तरलता आए, बर्फ थोड़ी पिघले, बहाव आए; मस्ती यानी जीवन में और भी अर्थ हो सकते हैं जो तुमने नहीं खोजे, इनकी थोड़ी खबर आए कि जिंदगी जीने का कोई और ढंग भी हो सकता है, कि दुकान और बाजार पर जिंदगी समाप्त नहीं है, कि धन और पद पर जीवन की इति नहीं है, कि यहां और भी आकाश हैं उड़ने को, कि और भी मुकाम हैं पहुंचने को, ऐसी जब तुम्हारे भीतर थिरक आएगी तो नशा मालूम होगा। शुभ हो रहा है। इसी नशे के पैदा हो जाने को मैं मानता हूं कि आदमी संन्यास के लिए पात्र हुआ। इन्हीं नशेलचियों के लिए संन्यास है। ठीक तुम्हारे लिए। और यहां कोई कसौटी नहीं है।

मैं तुम से यह नहीं कहता कि संन्यासी के लिए पहले तुम्हें उपवास करना पड़े, तप करना पड़े, जप करना पड़े; मैं तुम से यह भी नहीं कहता कि संन्यासी के लिए तुम्हें इस-इस तरह का आचरण करना पड़े, इस-इस तरह का चरित्र होना चाहिए, मैं इन क्षुद्र बातों में जरा भी नहीं उलझा हूं। मगर एक बात तो चाहिए ही, परमात्मा को पाने का नशा तो चाहिए ही। उसे नहीं छोड़ा जा सकता। उसके पीछे सब चला आएगा। जिसके भीतर परमात्मा को पाने की आकांक्षा जग गई, उसके भीतर से क्षुद्र बातें अपने आप गिर जाएंगी। क्योंकि जब कोई हीरे लेने चलता है तो पत्थरों को नहीं सम्हालता, छोड़ देता है। और जब किसी के घर में कोई बड़ा मेहमान आने को होता है तो वह घर की तैयारी करता है, स्वच्छता करता है, घर को पवित्र करता है, यह सब स्वाभाविक है। इसकी मैं चिंता ही नहीं लेता। मैं तो कहता हूं—पहले उस बड़े मेहमान को बुलाओ।

तुम से दूसरे लोग कहते रहे हैं कि घर शुद्ध करो, मैं कहता हूं पहले मेहमान को निमंत्रित करो; घर की शुद्धि तो बड़ी गौण बात है। वह तुम कर ही लोगे, उसकी

चिंता मुझे लेने की जरूरत नहीं। जब तुम देखोगे कि परमात्मा करीब आने लगा, तुम अचानक पाओगे तुम्हारे चरित्र में रूपांतरण शुरू हो गया। अब तुम बहुत सी बातें नहीं करते हो, जो करते थे कल तक। और तुमने उन्हें रोका भी नहीं है, मगर करना बंद हो गया है, क्योंकि अब प्रभु करीब आ रहा है, उसके योग्य बनना है, रोज-रोज उसके योग्य बनना है, सिंहासन बनना है उसका; तो अब छुद्र बातें नहीं की जा सकतीं। यह बोध से ही रूपांतरण हो जाता है। उसके लिए कोई चेष्टा अनुशासन, जबर्दस्ती आग्रहपूर्वक, व्रत-नियम इत्यादि नहीं लेने होते।

व्रत-नियम तो वही लेता है जिसे उस मालिक की कोई खबर नहीं। उस मालिक की जिसे खबर आई, जिसे उस मालिक का दर्शन होने लगा, उसकी पगचाप सुनाई पड़ी कि वह आने लगा करीब, कि तुम भागे, कि तुम सब साफ कर डालोगे, तुम कूड़ा-कर्कट फेंक दोगे घर से, तुम सजा लोगे, तुम धूप-दीप जला लोगे, तुम फूल ले आओगे, तुम बंदनवार बना लोगे; यह सब अपने से हो जाएगा; मेहमान तो आए तुम मेजबान बन जाओगे।

लेकिन एक शर्त मैं भी नहीं छोड़ सकता हूं, वह है मादकता की शर्त। उसके बिना तो मेहमान ही नहीं आएगा। मदभरे होकर पत्र लिखोगे तो ही उस तक पहुंचेगा। तुम्हारी पाती में तुम्हारा नशा होगा तो ही पाती उस तक पहुंचेगी, नहीं तो नहीं पहुंचेगी। मस्त होकर जब तुम पुकारोगे, तभी तुम्हारी प्रार्थना उस तक पहुंचेगी। होशियारी में की गई प्रार्थनाएं बेकार चली जाती हैं। समझदारी में की गई प्रार्थनाएं उस तक नहीं पहुंचतीं। उनमें गणित होता है, प्रेम नहीं होता। नशे में, तो ही प्रार्थना उस तक पहुंचती है।

तुम पूछते हो—क्या मैं संन्यास के योग्य हूं? बस, जिसके भीतर भी मादकता उतर रही है, वही योग्य है। पियक्कड़ों के लिए संन्यास है।

लायी फिर इक लग्जिशे-मस्ताना तेरे शहर में
फिर बनेंगी मस्जिदें मयखाना तेरे शहर में
आज फिर टूटेंगी तेरे घर की नाजुक खिड़कियां
आज फिर देखा गया दीवाना तेरे शहर में
जुर्म है तेरी गली से सर झुका कर लौटना
कुफ्र है पथराव से घबराना तेरे शहर में
शहनामे लिखे हैं खंडरात की हर इक ईंट पर
हर जगह है दफ्न इक अफसाना तेरे शहर में
कुछ कनीजें जो हरीमे-नाज में हैं बारयाब
मांगती हैं जानो-दिल नजराना तेरे शहर में

जान और दिल से कम नजराना वहां नहीं चलेगा। मस्त ही कोई हो, पागल ही कोई हो, तो ही जान और दिल का नजराना दे।

लायी फिर एक लग्जिशे-मस्ताना तेरे शहर में

एक मादक लड़खड़ाहट, एक मदभरी चाल फिर तेरे शहर में ले आई है।

लायी फिर इक लग्जिशे-मस्ताना तेरे शहर में

उसके शहर में लोग लड़खड़ाते हुए पहुंचते हैं। जो सम्हलकर चलते हैं वे तो वहां पहुंचते नहीं—सम्हलने वाले के लिए संसार है। सम्हले हुए के लिए संसार है। लड़खड़ाने की कला आनी चाहिए। लड़खड़ाकर ही कोई उसके मंदिर तक पहुंचता है।

लायी फिर एक लग्जिशे-मस्ताना तेरे शहर में
फिर बनेंगी मस्जिदें मयखाना तेरे शहर में

और जब भी कोई एकाध ऐसा मस्ताना पैदा होता है, तो मस्जिदें मयखाना बन जाती हैं। और जब मस्जिदें मयखाना होती हैं, तब जिंदा होती हैं। तब वहां विद्रोह होता है, तब वहां जीवन होता है, तब वहां परमात्मा की शराब ढाली जाती है, पी जाती है, पिलाई जाती है। और जब मस्जिदें मयखाना नहीं होतीं, तब मुर्दा होती है, तब कब्रिस्तान होते हैं वहां, तब अतीत की याददाश्तें होती हैं वहां, पुरानी सुंदर कहानियां होती हैं वहां—पुराण की कथाएं होती हैं वहां—लेकिन वहां बुद्ध नहीं होते, मोहम्मद नहीं होते, कृष्ण नहीं होते, क्राइस्ट नहीं होते।

फिर बनेंगी मस्जिदें मयखाना तेरे शहर में
आज फिर टूटेंगी तेरे घर की नाजुक खिड़कियां
आज फिर देखा गया दीवाना तेरे शहर में
जुर्म है तेरी गली से सर झुका कर लौटना
कुफ्र है पथराव से घबराना तेरे शहर में
शाहनामे लिक्खे हैं खंडरात की हर ईंट पर
हर जगह है दफ्न इक अफसाना तेरे शहर में
कुछ कनीजें जो हरीमे-नाज में हैं बारयाब
मांगती हैं जानो-दिल नजराना तेरे शहर में

संन्यास का यही अर्थ है कि तुम अपने को समर्पित करने को तैयार हो। अब कोई पागल ही समर्पित कर सकता है! होशियार तो सोचेगा, लाख बार सोचेगा, होशियार तो हिसाब लगाएगा, लाभ-हानि का विचार करेगा। संन्यास होशियारों के लिए नहीं हैं। संन्यास उनके लिए है जो मस्ताने हैं। जुआरियों के लिए है, व्यवसायियों के लिए नहीं है। तुम तैयार हो। तुम पात्र हो।

और तुम कहते हो कि ध्यान इत्यादि में भी मन नहीं लगता। तुम्हारा नहीं लगेगा। तुम्हारे लिए मार्ग भक्ति होगी। तुम्हारे लिए ध्यान मार्ग नहीं होगा। तुम नाचो, गाओ, तुम उत्सव मनाओ। तुम धन्यभागी हो, क्योंकि तुम्हारे मार्ग पर उत्सव ही उत्सव होगा। ध्यानी के मार्ग पर सन्नाटा होता है, भक्त के मार्ग पर नृत्य होता है, गीत होते, गान होते। ध्यानी के मार्ग मरुस्थल जैसे हैं—सन्नाटा, गहन सन्नाटा, भक्त के मार्ग वनों-उपवनों से गुजरते हैं, झरनों के पास से गुजरते हैं, जहां पक्षी गीत गाते हैं और हंस पंख फैलाते हैं। तुम धन्यभागी हो! तुम ध्यान की चिंता न करो, तुम प्रेम की चिंता करो। प्रीति तुम्हारा मार्ग है।

तुम्हारे लिए जीवन को एक महोत्सव बनाना होगा—
प्यार का जश्न नई तरह मनाना होगा

गम किसी दिल में सही गम को मिटाना होगा
कांपते ओठों पे पैमाने-वफा क्या कहना
तुझको लाई है कहां लग्जिशे-पा क्या कहना
मेरे घर में तेरे मुखड़े की जिया, क्या कहना
आज हर घर का दिया मुझको जलाना होगा
रूह चेहरों पे धुआं देख के शमाती है
झेंपी-झेंपी सी मेरे लब पे हंसी आती है
तेरे मिलने की खुशी दर्द बनी जाती है
हमको हंसना है तो औरों को हंसाना होगा
सोई-सोई हुई आंखों में छलकते हुए जाम
खोई-खोई हुई नजरों में मुहब्बत का पयाम
लबे-शीरीं पे मेरी तिश्नालबी का इनाम
जाने इनाम मिलेगा कि चुराना होगा
मेरी गर्दन पे तेरी संदली बांहों का ये हार
अभी आंसू थे इन आंखों में अभी इतना खुमार
मैं न कहता था मेरे घर में भी आएगी बहार
शर्त इतनी थी कि पहले तुझे आना होगा

परमात्मा के आने के पीछे-पीछे ही बहार आती है। उसके पहले कोई बहार नहीं है। उसके पहले सब पतझार है। उसके पहले तुम जीए कहां? उसके पहले तुम जागे कहां? उसके पहले तो सब राख ही राख है।

मैं न कहता था मेरे घर में भी आएगी बहार
शर्त इतनी थी कि पहले तुझे आना होगा

भक्त का मार्ग है कि वह प्रभु को पुकारे, सब दांव लगा दे एक बात पर कि प्रभु मिले तो सब मिला और प्रभु न मिला तो कुछ भी न मिला। सब तरफ से अपनी आकांक्षाओं को बटोर ले, इकट्ठा कर ले, सारी आकांक्षाओं को एक प्रभु में डुबो दे। जब सारी आकांक्षाएं एक आकांक्षा बन जाती हैं, उसका नाम अभीप्सा। संसारी आदमी की बहुत आकांक्षाएं होती हैं—धन भी पाना, पद भी पाना, प्रतिष्ठा भी पानी, प्रेम भी पाना, सम्मान भी पाना, इस संसार को भी सम्हालना है और अगर कोई दूसरा संसार है तो थोड़ा दान इत्यादि करके उसको भी सम्हालना है, उसके पास पच्चीस वासनाएं होती हैं, सभी को सम्हालने में सभी खो जाता है। एक को सम्हालने में सब सम्हल जाता है, सब को सम्हालने में एक भी खो जाता है।

भक्त की एक ही आकांक्षा होती है। वह सारी आकांक्षाओं को एक ही आकांक्षा में डुबा देता है, वह सारे तीरों को एक ही निशाने पर लगा देता है, वह सारी किरणों को इकट्ठा कर लेता है और एक ही दांव लगा देता है, भभककर उठती है फिर आग। जैसे छोटे-छोटे झरने खो जाएं हो सकता है मरुस्थल में, लेकिन जब सारे छोटे-छोटे झरने मिलकर गंगा बन जाते हैं तो फिर सागर तक पहुंचना सुनिश्चित है।

छोटी-छोटी आकांक्षाओं में बंटा हुआ आदमी खो जाता है, खंडित हो जाता है। भक्ति का अर्थ है, सारी आकांक्षाएं एक में लग गईं, एक परमात्मा को पाना ही लक्ष्य रहा।

तुम्हारे लिए यही मार्ग होगा। तुम्हारी मस्ती इसकी खबर देती है। तुम्हारा खुमार इसकी खबर देता है। भक्ति और भजन, गीत और गायन, वादन और नर्तन तुम्हारा मार्ग होगा।

प्यार का जश्न नई तरह मनाना होगा
गम किसी दिल में सही गम को मिटाना होगा

तुम गाओ भी और जहां कोई रोता हो, उसको भी गाने में लगाओ। तुम हंसो और जहां कोई रोता हो, उसको भी हंसाओ। तुम अगर रोओ भी तो तुम्हारे आंसू हंसने चाहिए। तुम अगर रोओ भी तो तुम्हारे रोने में गीत और प्रार्थना होनी चाहिए। तुम अपने सारे जीवन को एक उत्सव के रंग में रंग लो। तुम्हारे भीतर संन्यास घटित ही हो रहा है, सिर्फ उसकी बाह्य घोषणा करने की जरूरत है। उसकी भी हिम्मत जुटाओ।

आज इतना ही।

प्रवचन 7

भक्ति अति स्वाभाविक है

सूत्र

युक्तौँ च सम्परायात्।। ४१।।
शक्तित्वान्नानृतं वेद्यम्।। ४२।।
तत्परिशुद्धिश्च गम्यालोकवल्लिंगेभ्यः।।४३।।
सम्मान बहुमान प्रीति विरहेतर विचिकित्सा
महिमख्याति तदर्थ प्राण स्थान तदीयता सर्व तदभावा
प्रातिकूल्यादीनिच स्मरचेभ्यो बाहुल्यात।।४४।।
द्वेषादयस्तु नैँवम्।।४५।।

पूर्व सूत्र—

'चैत्याचितोर्नतितीयम्।

चैत्य और चित्त, ज्ञेय और ज्ञान, दृश्य और द्रष्टा से भिन्न कोई तीसरा पदार्थ जगत में नहीं है।'

जगत को दो में बांटा जा सकता है। जानने वाले में और जो जाना जाता है। मैं और तू में। यह अंतिम विभाजन है। इसके भी भीतर गए तो विभाजन समाप्त हो जाते हैं, भेद गिर जाते हैं। यहां तक भेद की सीमा है, यहां तक भेद का लोक है। फिर द्रष्टा में और गहरे गए, या दृश्य में गहरे गए तो दोनों के भीतर एक का ही आविर्भाव होता है।

ज्ञान यहीं तक जाता है, भक्ति इससे आगे जाती है। ज्ञान यहां रुक जाता है—ज्ञाता और ज्ञेय के भेद पर—इसलिए ज्ञान वस्तुतः अद्वैतवादी नहीं होता। हो नहीं सकता। ज्ञान तो द्वैतवादी होगा ही। अनिवार्यतः होगा। उसमें अंतर्निहित अनिवार्यता है द्वैत की। इसलिए बड़े से बड़े ज्ञानी भी चाहे लाख कहें कि संसार मिथ्या है माया है, पर संसार को मानते हैं। संसार को बिना माने नहीं चलता। ज्ञान की घटना ही नहीं घटती अगर ज्ञाता और ज्ञेय का भेद न हो। ईश्वर को जानोगे कैसे अगर जानने वाला ईश्वर से भिन्न न हो? अभिन्न हो तो जानना समाप्त हो गया। तुम वृक्ष को जानते हो, क्योंकि वृक्ष से भिन्न हो। अगर तुम वृक्ष हो गए, तो फिर वृक्ष को कैसे जानोगे? फिर जानने वाला नहीं बचा। ज्ञानी अनंत-अनंत भेदों से उठते-उठते उस दशा में आ जाता है जहां दो बचते हैं। दो के पार ज्ञान की यात्रा नहीं है। वहां ज्ञान थक जाता है। फिर अगर ज्ञानी कहे भी कि एक है, तो वह एक उसके द्वैत पर ही आधारित होता है। फिर वह ब्रह्म और माया कहेगा द्वैत को, कोई नाम देगा, पुरुष और प्रकृति कहेगा, इससे भेद नहीं पड़ता, दो तो कायम रहते हैं।

भक्ति इससे आगे छलांग लेती है, आगे उड़ान लेती है, जहां दो वस्तुतः समाप्त हो जाते हैं। क्योंकि भक्ति का आग्रह जानने में नहीं है, होने में है। भक्ति के आग्रह को ठीक से समझ लो।

भक्ति की बुनियादी धारणा है कि बिना एक हुए कोई उपाय जानने का भी नहीं है। ज्ञान की धारणा है—दो हों तो ही जाना जा सकता है, भक्ति की धारणा है—एक सधे तो ही ज्ञान है। उसे भक्ति ज्ञान भी नहीं कहती इसीलिए, क्योंकि ज्ञान में दो की भाषा आ जाती है, उसे प्रेम कहती है।

एक जानना है बाहर-बाहर से और एक जानना है भीतर से। प्रेमी भी एक-दूसरे को जानते हैं, लेकिन वह जानना वैज्ञानिक के जानने से भिन्न है। तुम एक डाक्टर के पास गए, तुम्हारे सिर में दर्द है, तुमने अपने सिरदर्द की कहानी कही, डाक्टर जानता है सिरदर्द को, सिरदर्द के संबंध में पढ़ा है लिखा है, खुद भी कभी अनुभव किया है, दवा भी जानता है, तुम्हें सिरदर्द से छुटकारा दिलाने का उपाय भी करेगा, लेकिन उसका जानना बाहर से है। तुम्हारी प्रेयसी, या तुम्हारी मां, या तुम्हारा पति, या तुम्हारा मित्र, जब तुम उससे कहोगे कि सिरदर्द है, वह भी जानता है, यद्यपि उसने शास्त्र नहीं पढ़े हैं और सिरदर्द क्या है, इसका विश्लेषण न कर सकेगा। लेकिन उसका जानना एक और आयाम का जानना है—सहानुभूति का, समानुभूति का। जब तुम्हारे प्रिय के सिर में दर्द होता है, तो तुम्हारे सिर में भी दर्द हो जाता है। जब बेटा परेशान होता है, तब मां परेशान हो जाती है। यह परेशानी बाहर-बाहर नहीं रहती, यह भीतर छू जाती है। प्रेमी एक-दूसरे में गड्ड-मड्ड हो गए होते हैं। इसलिए जब कोई प्रियपात्र मरता है तो प्रियपात्र ही नहीं मरता, तुम्हारा एक बड़ा हिस्सा मर जाता है।

तुमने जिससे प्रेम किया था, वह मर गया। उस दिन तुम जानोगे कि तुम्हारा एक बड़ा हिस्सा मर गया, तुम्हारी आत्मा का एक खंड समाप्त हो गया। तुम अब उतने ही नहीं हो जितने तब थे जब तुम्हारा प्रेमी जिंदा था। अब तुम खाली-खाली हो, अधूरे-अधूरे हो। तुम्हारे भवन का एक खंड गिर गया, अब तुम खंडहर हो। जब प्रियपात्र के मर जाने पर कोई रोता है, चीखता-चिल्लाता है, तो वह सिर्फ इसलिए नहीं रो रहा है चिल्ला रहा है कि प्रियपात्र मर गया, उसकी मृत्यु में उसकी भी मृत्यु घट गई है, वह भी अब आधा है, अपंग है, उसके भी पैर टूट गए हैं। अब वह कभी पूरा न हो सकेगा। अब यह खालीपन रहेगा और अखरेगा। जितना बड़ा प्रेम होगा, जितना गहन प्रेम होगा, उतनी ही बड़ी मृत्यु घटित होगी। और अगर प्रेम परिपूर्ण हो तो प्रियपात्र के मरते ही तुम भी मर जाओगे। एक श्वास ज्यादा न ले सकोगे।

सती की प्रथा ऐसे ही शुरू हुई थी। फिर पीछे विकृत हुई—सभी चीजें विकृत हो जाती हैं—लेकिन ऐसे ही शुरू हुई थी। कभी कोई प्रेमी मरा था और उसकी प्रेयसी फिर सांस न ले सकी थी। फिर सांस लेने में कोई अर्थ ही न रह गया था। चिता पर चढ़ने भी जाना नहीं पड़ा था—चिता पर चढ़ने लायक था ही अब कौन, प्रिय की मृत्यु में ही स्वयं की भी मृत्यु हो गई थी।

इतना तादात्म्य हो तो एक तरह का ज्ञान होगा, उसे ज्ञान कहना ठीक नहीं

क्योंकि ज्ञान से हम समझते हैं भेद, दूरी, फासला। वह ज्ञान अनूठे ढंग का ज्ञान होगा, वहां फासला न होगा, दुई न होगी, द्वैत न होगा। उसी को शांडिल्य प्रीति कहते हैं।

एक ऐसे जानने का ढंग भी है जो हार्दिक है। एक जानने का ढंग है जो बौद्धिक है। बौद्धिक ज्ञान में ज्ञाता और ज्ञेय का फर्क होता है, चेत्य और चित्र का फर्क होता है, दृश्य और द्रष्टा का फर्क होता है। हार्दिक ज्ञान में, भाविक ज्ञान में सब भेद समाप्त हो जाते हैं। शांडिल्य कहते हैं—तभी असली ज्ञान है। क्योंकि जब तक दूरी है, तब तक कैसा ज्ञान।

रामकृष्ण के जीवन में एक उल्लेख है—ऐसे बहुत संतों के जीवन में उल्लेख हैं। पर रामकृष्ण का उल्लेख ताजा है, वे गंगा पार कर रहे थे दक्षिणेश्वर में, नाव में बैठे, उनके भक्त भजन गा रहे हैं। अचानक बीच भजन में वे चिल्लाए—मुझे मारते क्यों हो! मुझे मारते क्यों हो! जो भजन गा रहे थे वे तो एकदम ठिठक कर रह गए, कौन रामकृष्ण को मार रहा है, कौन मारेगा! किसलिए? उन्होंने कहा—आप कहते क्या हैं, परमहंसदेव? कोई आपको मार नहीं रहा, आपको हुआ क्या है? और उन्होंने अपनी चादर उघाड़ी और अपनी पीठ दिखाई और पीठ पर कोड़ों के निशान हैं और खून बह रहा है।

भक्त तो किंकर्तव्यविमूढ़ हो गए। उन्होंने कहा यह हमारी समझ के बाहर है, यह हुआ कैसे? रामकृष्ण ने कहा, उस तरफ देखो—बीच गंगा में नाव है—उस किनारे पर कुछ लोग मिलकर एक मल्लाह को पीट रहे हैं। जब नाव किनारे जाकर लगी, भक्तों ने उस आदमी को जाकर देखा जिसको पीटा गया था, उसकी कमीज उघाड़ी, उसकी पीठ पर ठीक वैसे ही कोड़े के चिह्न थे जैसे रामकृष्ण के—ठीक वैसे ही। अब बात और अबूझ हो गई। उन्होंने रामकृष्ण को पूछा—यह हुआ कैसे? उन्होंने कहा—उस क्षण में तादात्म्य हो गया। उसे लोग मार रहे थे, तुम तो भजन में लीन थे, मेरी आंखें उस तरफ लगी थीं। जब वे उसे मार रहे थे तब एक क्षण को मैं उसके साथ एक हो गया।

इस स्थिति का नाम है समानुभूति। यह सहानुभूति से आगे का कदम है। लोगों में तो सहानुभूति ही नहीं है, तो समानुभूति तो कहां से होगी! सहानुभूति का अर्थ है—दया; तुम्हें पीड़ा हो रही है, मुझे दया आती है। समानुभूति का अर्थ है—तुम्हारी पीड़ा मेरी पीड़ा हो गई। उधर तुम रोते हो, इधर मैं रोता हूं।

वैज्ञानिक बहुत से प्रयोग कर रहे हैं इस संबंध में और समानुभूति पर बड़ी खोज पिछले बीस वर्षों में हुई है—विशेषकर रूस में बड़ी खोज हुई है। खास करके मां और उसके बच्चों के बीच। अभी परीक्षण पशुओं में चल रहा है। एक खरगोश को दूर पानी में ले जाकर, मील भर गहरे पानी में ले जाकर मारा गया और उसकी मां ऊपर घाट पर खेल रही है। जब उसे मारा गया, तब खरगोश की मां को जैसे बिजली के धक्के लगे—यंत्र लगाए गए थे जो परीक्षण कर रहे थे, धक्के लगे। जैसे भीतर कोई गहरी चोट लगी। फिर इस प्रयोग को बहुत तरह से दोहराया गया। जब भी बच्चे को मारा गया, तभी मां को चोट पहुंची। हजार मील की दूरी पर भी चोट पहुंची।

क्योंकि मां और बेटे का संबंध बड़ा गहरा है। बेटा मां के पेट में नौ महीने रहा है। बेटा मां के पेट में नौ महीने इस तरह रहा है कि मां होकर रहा है। इस तरह का गहरा संबंध फिर किसी का कभी नहीं होगा—क्योंकि कौन किसके पेट में नौ महीने रहेगा! तो मां और बेटे के हृदय के तार गहराई में जुड़े हैं, प्राण संयुक्त हैं।

ठीक ऐसी घटना जुड़वां बच्चों में भी घटती है। एक जुड़वां बच्चा बीमार हो भारत में और उसका भाई चीन में बीमार हो जाएगा। समानुभूति! एक ही अंडे में दोनों बड़े हुए थे, एक ही साथ धड़के थे—उनके हृदय की धड़कन एक ही लय जानती है—जो बीमारी एक को पकड़ेगी वह दूसरे को पकड़ जाएगी, हजारों मील का फासला हो तो भी पकड़ जाएगी। ये समानुभूति के लक्षण हैं, यह एक अनूठे ढंग का जानना है, जहां हृदय जुड़े होते हैं। इस जोड़ का नाम भक्ति है। जिस दिन तुम्हारा हृदय विराट से जुड़ जाता है, जिस दिन तुम्हारा प्रेमी और कोई नहीं, स्वयं परमात्मा होता है, जिस दिन सारे अस्तित्व के साथ तुम एकता में लयबद्ध हो जाते हो, तुम्हारी भिन्न तान नहीं रहती, तुम एकतान हो जाते हो, तुम इस विराट संगीत में एक स्वर हो जाते हो, तुम इस विराट संगीत के विपरीत नहीं बहते, तुम इस धारा के साथ एक हो जाते हो, यह धारा जहां जाती है वहीं जाते हो, तुम्हारे भीतर विपरीतता समाप्त हो जाती है, भक्ति का जन्म होता है।

आज के सूत्र की शुरुआत है—

युक्तौ च सम्परायात्।

वियोग के पूर्व में दोनों एक ही हैं। जैसे जन्म के पहले मां और बच्चा एक हैं। भेद बाद में आता है। इसलिए भेद गौण है। भेद ऊपर-ऊपर हैं। ऐसे ही हम इस अस्तित्व से एक हैं। जब तुम पैदा नहीं हुए थे तब तुम कहां थे? मां के गर्भ में भी नहीं आए थे, तब तुम किस गर्भ में थे? तब तुम इस विराट के गर्भ में थे। इस विराट से तुम अलग हुए, ऐसी बस मान्यता है तुम्हारी। इस विराट से अलग हो कैसे सकोगे? इस विराट के बिना जी कैसे सकोगे? इस विराट से टूटकर श्वास भी नहीं चलेगी। यह विराट ही हम में जीता है। हम अभी भी गर्भ में हैं: हमें सिर्फ भ्रांति हो गई है। मछली अभी भी सागर में है, मगर सागर को भूल गई है। ऐसे ही हम भी भूल गए हैं, नहीं तो परमात्मा ने तुम्हें सब तरफ से घेरा है। तुम्हारे खून में वही बहता है और तुम्हारे हड्डी-मांस-मज्जा में वही बैठा है; तुम्हारी श्वास में वही चलता, तुम्हारे हृदय में वही धड़कता। तुम वही हो। उसी के पुंजीभूत रूप। उसका ही एक आकार। उसकी ही एक लहर। उसकी ही एक तरंग हो तुम। उससे रंचमात्र भिन्न नहीं।

शांडिल्य का सूत्र बड़ा प्यारा है—युक्तौ च सम्परायात्। सोचो तो जरा, जब तुम नहीं थे तब तुम कहां थे? और जब तुम फिर नहीं हो जाओगे तब तुम कहां होओगे? ऐसा समझो, सागर शांत है, हवाएं नहीं बहतीं, कोई लहर नहीं उठती; फिर आई हवा की एक लहर, आया बड़ा एक झोंका, उठी एक बड़ी लहर, सागर में—सागर में लहर जब नहीं उठी थी तब कहां थी? सागर ही थी तब, अब उठी। फिर थोड़ी देर में सागर में गिर जाएगी, तब कहां होगी? सागर में ही होगी तब। ऐसा

सोचो, जब नहीं उठी थी लहर तब सागर में थी। जब उठी, तब भी सागर में ही है, सिर्फ एक नया रंग, एक नया रूप, एक नया आकार उठा—नाम-रूप। यह संसार बस नाम-रूप है। फिर जल्दी ही नाम-रूप गिर जाएगा, फिर लहर सागर की सागर में हो जाएगी। ऐसे उठेगी कई बार, गिरेगी कई बार। ऐसे तुम कई बार जन्मे और कई बार मरे। अभी फिर जन्मे हो, अभी फिर मरोगे। जो व्यक्ति यह पहचान ले कि जन्म के पहले भी मैं उसी में था, मृत्यु के बाद भी उसी में होऊंगा और निश्चित ही जब आगे भी उसी में था, पीछे भी उसी में होऊंगा, तो बीच में भी उसी में ही हो सकता हूं—और कहां होऊंगा? अगर मेरा अतीत भी उसमें, मेरा भविष्य भी उसमें, तो मेरा वर्तमान भी उसमें ही होगा। जो जाग जाता है इस भाव में कि मैं परमात्मा में हूं और हम क्षणभर को भी भिन्न नहीं हुए, वही भक्त। युक्तौ च सम्परायात्। वियोग के पूर्व दोनों एक ही हैं।

और ऐसी ही दशा परम विश्लेषण की है। वह जो द्रष्टा और दृश्य का भेद है, वह भी एक लहर मात्र है। नहीं तो देखने वाला और देखा जाने वाला एक ही है। वही देखता है, वही देखा जाता है। ऐसा समझो न, रात तुम सपना देखते हो, तब देखने वाला और जो दिखाई पड़ता है, उसमें कुछ भेद होता है? सपने में तुम्हीं सब होते हो। वह जो सपने की कहानी चलती है, वह जो सपने की फिल्म दोहरती है, उसमें सभी तुम होते हो—निर्देशक भी तुम, कथा-लेखक भी तुम, गायक भी तुम, नायक भी तुम, पर्दा भी तुम और दर्शक भी तुम। तुम्हीं सब होते हो। इसी गहन अनुभव के कारण, संसार को स्वप्न कहा है जानने वालों ने। स्वप्न का अर्थ यह होता है—सब एक है और फिर भी भेद मालूम पड़ता है। सुबह जागोगे जब तुम, तब कहां है सपना तुम्हारा? तब तुम्हीं में लीन हो गया। लहर उठी थी, तुम्हीं में वापस खो गई। दृश्य द्रष्टा से ही उठता है और द्रष्टा में ही लीन हो जाता है।

दोनों वियोग के पूर्व एक हैं। और संयोग के बाद फिर एक हैं। बीच में क्या भिन्न हैं? बस बीच में भिन्न भासते हैं, आभास होता है, उस आभास का नाम माया है।

वे अनादि काल से दोनों एक हैं। एक ही है जो दोनों में प्रकट हो रहा है। एक ने ही अपने को विभाजित कर लिया है—खेल के लिए, लीला के लिए। शास्त्र कहते हैं, वह अकेला था। ऊब गया अकेले-अकेले। उसने अपने को विभाजित किया। फिर अपने से ही छिया-छी, फिर अपने से ही खेल शुरू किया। यही तो तुम रोज सपने में करते हो। जो तुम सपने में करते हो, वही विराट अर्थ में सारे जगत में हो रहा है। इस जगत को परमात्मा का सपना समझो। इस जगत को परमात्मा का सपना समझा, तो तुम्हारे जीवन में क्रांति हो जाएगी। फिर तुम क्षणभर को भी अपने को भिन्न नहीं मान पाओगे। और जब कोई अपने को भिन्न नहीं मानता, तो अहंकार गया, संघर्ष गया, संकल्प गया; जद्दोजहद गई, तब विश्राम है।

उस विश्राम को शांडिल्य कहते हैं भक्ति। उसी विश्राम को मैं संन्यास कहता हूं। सब तरफ से जिसने अपने को छोड़ दिया धारा के साथ।

शक्तित्वान्नानृतं वेद्यम्।

शक्ति ही कि क्रिया है, इस कारण यह जगत मिथ्या नहीं।

और एक बहुत अदभुत वचन। तुम रोज सुनते हो तुम्हारे तथाकथित ज्ञानियों को यह कहते हुए कि जगत मिथ्या है, झूठा है। शांडिल्य बड़ा बहुमूल्य भेद करते हैं। वह कहते हैं, जगत माया तो है लेकिन मिथ्या नहीं। मिथ्या और माया शब्दों को समझ लेना चाहिए।

मिथ्या का अर्थ होता है, जो है ही नहीं। माया का अर्थ होता है, जो है तो नहीं लेकिन है जैसा भासता है। इन दोनों में फर्क है। ये पर्यायवाची नहीं है। मिथ्या का अर्थ होता है—अनृत, असत्य। जिसका कोई अस्तित्व नहीं है। माया का अर्थ होता है, अस्तित्व है तो नहीं लेकिन प्रतीत होता है। जैसे, सपना। सपने को क्या कहोगे? माया कहोगे या मिथ्या कहोगे? अगर मिथ्या कहो तो सपना है ही नहीं। लेकिन यह तो तुम नहीं कह सकते कि सपना था ही नहीं। तुम्हें पूरी तरह याद है, सुबह भी याद है कि सपना था, तुमने देखा है, अपनी ही आंखों से देखा है, नहीं होता तो दिखाई कैसे पड़ता? एक बात। नहीं होता तो दिखाई नहीं पड़ता।

कई रातें ऐसी होती हैं जब सपना नहीं होता, तब तो तुम सुबह नहीं कहते कि सपना देखा, हालांकि दिखाई नहीं पड़ा, हालांकि था नहीं, मगर देखा। जब सपना नहीं होता तब रात खाली होती है। तो स्वप्नशून्य निद्रा में और स्वप्नसहित निद्रा में कुछ भेद तो है। स्वप्नशून्य निद्रा में कोई तरंग नहीं होती, स्वप्न से भरी निद्रा में तरंगें होती हैं। सुबह जागकर पता चलता है कि वे तरंगें सत्य नहीं थीं। मगर क्या उनको बिलकुल एकांतिक रूप में असत्य कह सकोगे? सत्य तो नहीं थीं क्योंकि सुबह हाथ में कुछ लगता नहीं—हाथ खाली के खाली। रात सोने के महल थे, बड़ा साम्राज्य था और सुबह हाथ खाली, कुछ भी हाथ में नहीं। सच तो नहीं था सपना, लेकिन क्या तुम इतने ही जोर से कह सकोगे कि झूठ था? झूठ भी नहीं कह सकोगे। क्योंकि झूठ होता तो देखा कैसे? तो कुछ ऐसा था कि सच और झूठ के बीच में था।

यह तीन शब्द समझ लो—सत्य, जो है और सदा रहेगा। झूठ, जो नहीं है और कभी नहीं हो सकेगा। और मिथ्या, जो दोनों के मध्य में है; थोड़ा है, थोड़ा नहीं है; कभी है, कभी नहीं है; आज है, कल नहीं होगा; कल था, आज नहीं है; क्षणभर को होता है फिर विलीन हो जाता है—तरंग है, लहर है। मिथ्या नहीं कह सकोगे इसे, इसे माया कहेंगे। जैसे जादूगर खेल दिखाता, वह माया है। है तो नहीं सच में, मगर बिलकुल झूठ भी नहीं है। अंग्रेजी का शब्द मैजिक संस्कृत के माया शब्द से ही बना है।

शांडिल्य कहते हैं—यह जगत माया है, सच, लेकिन मिथ्या नहीं है। मिथ्या क्यों नहीं है? नहीं हो सकता। क्योंकि सच्चे सागर में अगर लहर उठी है तो लहर की भांति भला झूठ हो, लेकिन है तो सच्चे सागर का ही अंग। सत्य के सागर में झूठी लहर कैसे उठ सकती है? और अगर सत्य के सागर में झूठी लहर उठ सकती है तो सागर ही झूठ हो गया। सत्य में झूठ कैसे उठ सकता है? एक बहुत बहुमूल्य प्रश्न उन्होंने उठाया है। शक्तित्वान्नानृतं वेद्यम्। यह जगत उसकी ही शक्ति है। तो झूठ तो नहीं हो सकता। यह खेल उसका है—खेल सही—लेकिन झूठ नहीं है। सत्य भी नहीं

है, क्योंकि क्षणभंगुर है। सत्य के साथ अर्थ होता है जो शाश्वत है और झूठ के साथ अर्थ होता है जो कभी नहीं है, और सत्य जो सदा है। मगर यह कुछ बीच की दशा है—अभी लगता है, है; अभी नहीं हो जाता है।

जवान थे और जवानी के सपने देखे थे, फिर बूढ़े हो गए, वे सपने सब फिजूल हो गए, तब हंसता है आदमी, बूढ़ा होकर हंसता है, उसे भरोसा नहीं आता कि मैं ऐसी नासमझियां कर सका। मैं ऐसी मूढ़ताएं कर सका। मैं सौंदर्य के पीछे ऐसा दीवाना होकर भाग सका। मैं स्त्री-पुरुषों में इतना तल्लीन हो सका। भरोसा नहीं आता कि यह कैसे हुआ! लेकिन कभी हुआ था। आज स्वप्न भंग हो गया है, लेकिन जब स्वप्न था तब बड़ा बलशाली था। जब स्वप्न था तो उसने खूब नचाया था। जब स्वप्न था तो बड़े झंझावात आए थे, उसने खूब दौड़ाया था, जी-जान की बाजी लगवा दी थी। तब वही सूझता था। तब लगता था सब खो जाए मगर यह सपना पूरा हो।

जो आदमी धन के पीछे ही दौड़ता रहा, दौड़ता रहा, और एक दिन जागकर पाता है कि सब धन पानी का बबूला है, रोता नहीं होगा? भीतर मन में पश्चात्ताप नहीं होता होगा कि मैं इतना मूढ़ था! तुम्हें नहीं हुआ है? किसी न किसी जगह तुम्हें भी हुआ होगा। किसी ने कुछ कह दिया था, दो कड़वे शब्द कह दिए थे और तुम आग-बबूला हो गए थे, मरने-मारने को तैयार हो गए थे, फिर पीछे पछताए हो और सोचा कि यह भी क्या हुआ, ऐसी तो कुछ खास बात न थी! इतना क्रुद्ध हो जाने का तो कोई कारण न था! अकारण मैं विक्षिप्त हुआ। अकारण मैंने संघर्ष सिर लिया। अकारण मैंने चोट पहुंचाई। अब तुम जार-जार रोते हो और तुम सोचते हो यह हुआ कैसे, मेरे बावजूद हो गया? मैं तो चाहता भी नहीं था कि यह हो। मगर जब इस तूफान ने तुम्हें पकड़ा था तब तुम्हें जरा भी होश नहीं था। काश तुम्हें उसी समय होश आ जाता, तो यह उसी वक्त झूठ हो जाता। होश पीछे आया। अगर रात सपने में तुम जाग जाओ तो उसी वक्त सपना समाप्त हो जाएगा। भरी जवानी में भी सपने टूट गए हैं। आखिर बुद्ध का टूटा, आखिर महावीर का टूटा। राजमहलों में सपने टूट गए हैं। भर्तृहरी का टूटा, सब कुछ था और अचानक सपना टूट गया है। जब कि सपना बड़ी गर्मी में था। जब कि सपना बड़ा जवानी में था। जब कि सपना पूरा होने के करीब लग रहा था, तब सपने टूट गए हैं। और टूटते ही सब व्यर्थ हो गया।

बुद्ध ने जब घर छोड़ा और जब वे अपने रथ से गांव के दूर जंगल में निकल गए और जब उन्होंने सारथी को वापस भेजा, तो सारथी ने कहा—आप यह कर क्या रहे हैं? आप जा कहां रहे हैं? इस राजमहल को छोड़कर जाते हैं! इस सोने जैसे महल को छोड़कर जाते हैं! दुनिया इसी के लिए तड़फती है। और अपनी उस प्यारी पत्नी की तो याद करो, और अपने नए पैदा हुए बच्चे की तो याद करो, अभी-अभी पैदा हुआ है। उसे छोड़कर कहां जाते हो?

वह बूढ़ा सारथी बुद्ध को याद दिला रहा है कि तुम जो छोड़कर जा रहे हो, वह बड़ा प्यारा है। बड़ा बहुमूल्य है। बुद्ध हंसने लगे, उन्होंने कहा—मैं पीछे लौटकर देखता हूं, न तो मुझे कोई राजमहल दिखाई पड़ता है, न कोई पत्नी दिखाई पड़ती है, न

कोई बेटा दिखाई पड़ता है; मुझे सिर्फ दिखाई पड़ती हैं लपटें और लपटें, वहां सब जल रहा है, इसलिए मैं भाग रहा हूं। सारथी को समझ में नहीं आता, वह कहता है—कहां की लपटें? किन लपटों की बातें कर रहे हैं आप? किस सपने की बात कर रहे हैं, जागो कहां की लपटे? सुंदर महल है, पत्नी है, पिता है, राज्य है; सब सुविधा है, जाते कहां हो? मुझे तो कोई लपटें नहीं दिखाई पड़तीं।

वह भी ठीक कह रहा है। हालांकि बूढ़ा हो गया है, लेकिन अभी उसका सपना नहीं टूटा है। बुद्ध भी ठीक कह रहे हैं। यद्यपि अभी जवान हैं, अभी सपने देखने के दिन थे, मगर सपना टूट गया है। जितनी मेधा होती है, उतनी जल्दी सपना टूट जाता है। जितनी प्रतिभा होती है, उतनी जल्दी सपना टूट जाता है। प्रतिभा की कसौटी क्या है?

पश्चिम में प्रतिभा की जो कसौटी है, वह पूरब में नहीं है। पूरब की अपनी कसौटी है और पूरब की कसौटी बड़ी बहुमूल्य है। पश्चिम में प्रतिभा की कसौटी है—तुम्हारा आई क्यू, कितना? इंटेलीजेंस कोसिएंट कितना? परीक्षा में तुम कितने अंक पाते हो? अगर सौ के इस तरफ है तो साधारण, अगर सौ के उस तरफ है तो विशेष, अगर डेढ़ सौ के आगे गया तो बहुत विशेष, अगर दो सौ के करीब पहुंच गया तो तुम महाप्रतिभावान; और इधर पचास के नीचे गिर गया तो बुद्धू, और तीस के नीचे गिर गया तो बिलकुल जड़। बुद्धि मापी जाती है आंकड़ों में। कितने प्रश्न हल कर सकते हो?

पूरब की परीक्षा कुछ और है। पूरब कहता है—कितने जागे हो? कितने प्रश्न हल कर सकते हो यह सवाल नहीं है, कितना जागरण? जागरण की मात्रा कितनी है? अवेयरनेस कोसिएंट—ए.क्यू. कितना होश है? चीजें जैसी हैं उनको वैसा ही देख पाते हो कि अभी भी सपने का प्रक्षेपण चलता है? बुद्ध को हम प्रतिभाशाली कहते हैं। आइंस्टीन को हम प्रतिभाशाली न कह सकेंगे। यद्यपि मरने के कुछ दिन पहले उसे थोड़ा-थोड़ा जागरण आना शुरू हुआ था—थोड़ी करवटें उसने बदलनी शुरू की थीं। आइंस्टीन बुद्धिमान तो था, मेधावी नहीं था। मेधा तो वही, जो जगत के सारे सपनों को उखाड़ दे और जगत के सत्य को दिखला दे। लहरें विदा हो जाएं और सागर दिखाई पड़ जाए। नाम-रूप खो जाए और यथार्थ दिखाई पड़ जाए। यथाभूतम्। वह जो सब भूतों का अंतर्तम है, वह जो सब अस्तित्व के भीतर छिपा हुआ महा अस्तित्व है, वह दिखाई पड़ जाए; परमात्मा अनुभव में आ जाए तो हम कहते हैं—प्रतिभा, मेधा; तो हम कहते हैं—प्रज्ञा, बुद्धत्व।

शक्तित्वान्नानृतं वेद्यम्।

यह जो सब तरफ फैला हुआ दिखाई पड़ रहा है जगत, यह उसी की ऊर्जा की तरंग है। इसलिए मिथ्या तो नहीं; माया जरूर है। मिथ्या कहो तो इसे छोड़कर भागना पड़ेगा। माया कहो तो जागकर जी लो, बस काफी है। इसलिए भक्त छोड़कर नहीं भागता। ज्ञानी भगोड़ा हो जाता है। ज्ञानी डरता है। अब यह बड़े मजे की बात है, ज्ञानी कहता है मिथ्या और फिर डरता है। जब है ही नहीं तो डरना क्या। होना तो यह चाहिए

कि ज्ञानी डरे ही नहीं, ज्ञानी तो बाजार में रहे, घर-गृहस्थी में रहे—भागना कहां है? जब है ही नहीं—कहता तो है मिथ्या—मगर वह मिथ्या भी शायद अपने को समझाने के लिए कहता है। वह मिथ्या कहना भी संसार से लड़ने की ही उसकी एक तर्ज है, संसार से लड़ने की ही एक विधि है। मिथ्या कहकर अपने को समझाता है कि मिथ्या है, झूठ है इसमें रखा क्या है?

एक जैन-मुनि से मेरा मिलना हुआ, उन्होंने अपनी एक कविता सुनाई। कविता थी, कविता की दृष्टि से बड़ी अच्छी थी, मगर मुनि के मुंह से ठीक नहीं थी। हालांकि उनके भक्तों ने बड़े सिर हिलाए। क्योंकि साधारणतः कोई भी कहता कि बात बिलकुल गजब की है, ठीक है, यही तो कहा जाता रहा है सदियों से।

मुनि ने अपनी कविता में कहा था कि तुम रहो अपने राजमहलों में, मेरे लिए तो तुम्हारे राजमहल मिथ्या हैं। तुम मजा कर लो संसार में, मेरे लिए संसार तो मिथ्या है। तुम बैठो सिंहासनों पर अपने, मैं तो अपने धूल में ही मस्त हूं। बिलकुल ठीक। साधारणतः यही कहा जाता है—सारे महात्मा यही कहते हैं, इसमें कुछ नया भी नहीं था। भक्तों ने सिर हिलाया।

मैंने उनसे कहा—अगर यह बात सच ही है कि राजसिंहासन मिथ्या हैं, तो उनका उल्लेख क्यों? उनकी चर्चा क्यों? अगर राजमहल हैं ही नहीं, तो किसकी बातें कर रहे हो, कौन राजमहल में रहता है फिर? और मजा यह है कि राजाओं ने कभी नहीं लिखीं ये कविताएं उन्होंने कभी नहीं कहा कि तुम मजा करो अपनी धूल में, हम तो अपने राजमहल में ही ठीक! तुम कर लो मजा, धूल में रखा क्या है, सब मिथ्या है, हम तो अपने राजमहल में ही ठीक! तुम कर लो मजा अपनी फकीरी में, सब मिथ्या है, हम तो अपने सिंहासन पर ही ठीक! ऐसा किसी राजा ने कभी नहीं कहा। लेकिन मुनि सदा से कहते रहे हैं। लगता है मुनि के मन में कहीं छिपी ईर्ष्या है। मुनि के मन में कहीं छिपी लिप्सा है, वासना है। दिखता तो उसे भी है कि सोने का महल रहने योग्य है, मजा तो वहां है, लेकिन अब अपने को झुठला रहा है, अपने को समझा रहा है, लीपापोती कर रहा है, कह रहा है कि क्या रखा है वहां... यह कविता किसी और को समझाने के लिए नहीं है, यह कविता अपने को ही समझाने के लिए है कि वहां कुछ नहीं है, सब मिट्टी है, सब पानी के बबूले हैं—अगर पानी के ही बबूले हैं तो इतना भी श्रम क्या करते हो, यह कविता भी किसलिए लिखी? पानी के बबूलों के निवेदन में यह कविता लिखी जाती है? जरूरत क्या है? बात खतम हो गई।

कहते हैं संसार माया है। और अगर संसार को माया, मिथ्या कहने वाले व्यक्ति को कोई स्त्री छू ले तो वह एकदम घबड़ा जाता है! यह घबड़ाहट क्या? जो है ही नहीं, उसके छूने से इतने क्या घबड़ा गए! इतनी क्या परेशानी हो गई!

मैं एक सभा में निमंत्रित था, वहां एक जैन-मुनि भी निमंत्रित थे। वे आकर द्वार पर ठिठककर खड़े हो गए। बिछी हुई दरी हटानी पड़ी। मैंने पूछा—मामला क्या है? उन्होंने कहा—वह दरी पर नहीं चल सकते क्योंकि दरी पर स्त्रियां बैठी हुई हैं। दरी पर स्त्रियां बैठी हुई हैं, दरी तक स्त्री हो गई! अब वह दरी पर कैसे चलें? दरी में

तक खतरा है। और मैं जानता हूं कि खतरा हो सकता है। दबाया होगा स्त्री के प्रति मन को बहुत, तो अब वह दरी से भी रस ले सकता है।

तुम्हारे दमन से भरे अनेक शास्त्र कहते हैं—जिस जगह स्त्री बैठी हो, कितनी देर तक उस जगह फिर मुनि को नहीं बैठना चाहिए। क्योंकि काफी देर तक स्त्री की तरंगें उस जगह को घेरे रहती हैं। स्त्री झूठ है, झूठ जा चुका, झूठ की तरंगें अभी बैठी हैं! उस जगह पर बैठना मत। ये कौन लोग हैं? ये रुग्ण-चित्त की दशाएं मालूम पड़ती हैं, इन्हें चिकित्सा की आवश्यकता है। ये विक्षिप्त लोग मालूम होते हैं।

भक्ति ज्यादा स्वस्थ है।

शांडिल्य कहते हैं—मिथ्या मत कहो, क्योंकि है तो। लेकिन माया कहा जा सकता है। माया का अर्थ कि जब तक तुम नशे में हो तब तक मालूम होता है सच, जब तुम्हारा नशा टूटता है तब मालूम होता है झूठ। असली सवाल नशा तोड़ने का है। एक झूठ से दूसरे झूठ को तोड़ने से क्या होगा?

मैंने सुना है एक आदमी सिर पर एक टोकरी लिए चला आता था। उस टोकरी में छेद थे कई। साथ चलते हुए एक राहगीर को जिज्ञासा उठी, उसने कहा—इस टोकरी में आप क्या लिए हैं, इसमें बड़े छेद हैं? उसने कहा—इसमें मैं नेवला ला रहा हूं। नेवला! छेद किसलिए किए हैं? तो उसने कहा—छेद इसलिए किए हैं कि वह श्वास ले सके। नेवला किसलिए ला रहे हो उस आदमी ने पूछा! नेवले की क्या जरूरत, नेवले का क्या उपयोग? उसने कहा, बात यह है कि मुझे जरा शराब पीने की आदत है, और जब मैं ज्यादा पी लेता हूं तो मुझे सांप दिखाई पड़ते हैं। उन सांपों के लिए नेवला ला रहा हूं, क्योंकि कहते हैं नेवला सांपों को खा जाता है या टुकड़े-टुकड़े कर देता है। उस आदमी ने कहा—मेरे भाई, लेकिन अभी तो तुम होश में हो। वह जो सांप तुम्हें जब तुम शराब पीते हो दिखाई पड़ते हैं, सच्चे नहीं होते। तो उसने कहा—यह नेवला ही कौन सच्चा है? खाली डिब्बा है, मगर अपने को भरमाने के लिए। इसको रखेंगे पास, जब नकली सांप हमला करेंगे, नकली नेवला छोड़ देंगे।

संसार मिथ्या है। फिर ये योग, जप-तप, ये सब झूठे नेवले हैं। अगर संसार है ही नहीं, तो ये विधि-विधान संसार से छूटने के, इनका क्या अर्थ है? बीमारी ही नहीं है, तो यह औषधि किसलिए ढो रहे हो? मगर बीमारी झूठ है, और तुम जानते हो औषधि भी झूठ है।

शांडिल्य ज्यादा ठीक बात कहते हैं, वह कहते हैं बीमारी झूठ है ऐसा मत कहो, बीमारी है तो। मिथ्या है। जब तक चढ़ी है सिर पर, तब तक है। जब तक होश नहीं है, तब तक है। जब तक ध्यान नहीं है, तब तक है। जब तक जागरण नहीं घटा है, तब तक है। और जब जागरण घटेगा तब तुम पाओगे कि लहर असत्य नहीं थी। लहर को ही देखा था, इसलिए भूल हो गई थी। लहर के पीछे छिपा सागर है। नाम के पीछे छिपा अनाम है। रूप के पीछे छिपा अरूप है। दृश्य के पीछे छिपा अदृश्य है। भूल हमारी थी कि हम ऊपर ही ऊपर रुक गए, सतह पर रुक गए और गहरे में न गए।

यह जो भी दिखाई पड़ता है, उसी परमात्मा की ऊर्जा है; इसलिए मिथ्या नहीं

हो सकता। इस जगत में मिथ्या कुछ भी नहीं है। माया है। माया का अर्थ झूठ नहीं होता, माया का अर्थ होता है—सपना। जब तक नींद है, तब तक सच है। इस दृष्टि से देखने पर संसार से भागने की कोई जरूरत नहीं रह जाती—जागने की जरूरत रह जाती है, भागने की जरूरत नहीं रह जाती। भगोड़े मत बनना। जगोड़े बनो। जागो।

तत्परिशुद्धिश्च गम्यालोकवल्लिंगेभ्यः।

उसकी भक्ति की शुद्धता मनुष्यों के चिह्न से अनुभव होगी। और कैसे जानोगे कि कोई जाग गया? कैसे पहचानोगे कि किसी में भक्ति का उदय हुआ? कैसे जानोगे कि किसी की चेतना शुद्ध हुई? कैसे जानोगे कि कोई प्रभु से जुड़ा? तो तुम्हारे लिए कुछ लक्षण देते हैं भक्त को कैसे पहचानोगे? और तुम्हारे भीतर भक्ति उमग रही है इसको कैसे पहचानोगे? तुम्हारे भीतर वस्तुतः यात्रा शुरू हो गई परमात्मा की तरफ, इसकी पहचान क्या होगी, कसौटी क्या होगी?

भक्ति की परिशुद्धि का ज्ञान लौकिक प्रीति की भांति ही होता है। प्रीति तो प्रीति है, लौकिक हो कि अलौकिक हो। उसके लक्षण तो एक जैसे हैं। गहराई बढ़ जाती है। कोई अपनी पत्नी के लिए रो रहा है। निश्चित ही रोना है, मगर आंसू बहुत गहरे नहीं हो सकते। आंसुओं में पैसिफिक सागर की गहराई नहीं हो सकती। आंसू ऐसे ही होंगे जैसे वर्षा में डबरे बन जाते हैं सड़क के किनारे। कोई परमात्मा के लिए रो रहा है। उसके आंसुओं में पैसिफिक सागर की गहराई होगी, अनंत गहराई होगी। आंसुओं में उतनी ही गहराई होती है, जितनी प्रीति की गहराई होती है। प्रीति की गहराई साधारण लोगों में तुम कितनी कर सकते हो, साधारण लोगों में ही गहराई नहीं है। अब तुम एक बहुत बड़ा जहाज ले आओ और वर्षा में बन गए डबरे में चलाओ, तो चले कहां? जहाज के लिए सागर चाहिए। जितना बड़ा सागर हो उतना बड़ा जहाज चल सकता है। डबरे में तो कागज की नाव ही चल सकती है। डबरे में असली नाव नहीं चल सकती; खिलौनों की नाव, प्लास्टिक की नाव चल सकती है। नाव नाममात्र को होगी, उसमें तुम बैठ नहीं सकते।

साधारण जीवन में जो प्रीति देखी जाती है, वह डबरों की प्रीति है। मगर लक्षण तो वही हैं। डबरे में भी पानी तो वही है जो सागर में है। और डबरे के पानी का भी विश्लेषण करो तो एक बूंद के विश्लेषण में भी वही एच. टू. ओ, वही उदजन और आक्सीजन मिल जाएगी जो सारे सागरों में भरी पड़ी है। उस अर्थ में भेद नहीं है। और इसीलिए भक्ति में एक अपूर्व विज्ञान है कि वह लोक को अलोक से जोड़ती है। ज्ञान लोक को अलोक से तोड़ता है, वह दुश्मनी पैदा करवाता है, वह कहता है—यह संसार परमात्मा के विपरीत है। भक्ति कहती है—यह संसार परमात्मा का है, विपरीत कैसे हो सकता है? उथला है जरूर, मगर इस उथले में तैरना सीख लो ताकि गहरे में जा सको। गहरे में कोई सीधा नहीं जा सकता, उथले में तैरना सीखना होता है। यह संसार उथला परमात्मा है, इसमें तैरना सीख लो।

कभी तैरना सीखने गए हो? तो जब तैरना सिखाने कोई बैठता है तुम्हें, तो पहले उथले में सिखाएगा, नदी के किनारे-किनारे, गले-गले तक ले जाएगा, एक बार

तैरना सीख लिया तो फिर तुम कितनी ही गहराइयों में जाओ फिर कोई भेद नहीं पड़ता, फिर कुछ अंतर नहीं पड़ता, उथला पानी हो कि गहरा, सब बराबर है, तैरने वाले को सब बराबर है। लेकिन गैर-तैरने वाले को सब बराबर नहीं है, गहरे में जान संकट में आ जाएगी। उथले में तुम अपने को सम्हाल रख सकते हो। संसार उथला परमात्मा है। छोटे-छोटे डबरों में भरा परमात्मा है। छोटी-छोटी देहों में भरा परमात्मा है। यहां तैरना सीख लो। यहां प्रेम करना सीख लो। यहां प्रेम की कला से अभिज्ञ हो जाओ। फिर दूर तक यात्रा हो सकती है। फिर तुम डुबकी मार सकते हो। लक्षण वही हैं।

शांडिल्य कहते हैं—भक्ति की परिशुद्धि का ज्ञान लौकिक प्रीति की भांति बाह्य चिह्नों से ही होता है। जैसे लोक में प्रीतम की चर्चा से प्रिया के पुलक अश्रुपात होते हैं, या गदगद भाव पैदा होता है, या चेहरे पर एक आभा छा जाती है। तुमने देखा, किसी से उसके प्रेम की बात करो, उसकी आंखों में रौनक आ जाती है। जो आंखें अभी-अभी मंदिम-मंदिम मालूम होती थीं, फीकी-फीकी मालूम पड़ती थीं, जिन पर धूल जमी थी, अचानक आंखों में एक तेज आ जाता है। किसी से किसी के प्रेमी की बात करो, उसका चेहरा जो फीका-फीका, बुझा-बुझा था, उस पर कोई ज्योति जल उठती है। उसका जीवन जो उदास-उदास और हारा-हारा था, जरा उससे प्रेमी की बात करो, स्फूर्ति का जन्म हो जाता है। जैसे किसी ने प्राणदायक औषधि दे दी। सिर्फ स्मरण पर्याप्त होता है। अभी जो घसिट-घसिट कर चल रहा था, वह नाचने को तत्पर हो जाता है। किसी से किसी के प्रेमी की बात करो, उसकी आंखों से आंसुओं की धार लग जाती है। आंसू गीत हैं, आंसू संगीत हैं; आंसू हृदय का भाव हैं।

शांडिल्य कहते हैं—जैसे लोक में प्रीति के लक्षण होते हैं, ऐसे ही लक्षण भक्ति के भी होते हैं। भगवत-कथा सुनकर, कि श्रवण सुनकर, कि नाम संकीर्तन सुनकर, कि कहीं चार भक्त बैठे हों मस्ती में प्रभु की महिमा का बखान करते हों, गदगद भाव का जन्म होता है, आंख से आंसू बहने लगते हैं? रोमांच हो जाता है। व्यक्ति इस जगत का हिस्सा नहीं रह जाता, किसी और लोक में प्रवेश कर जाता है। इस अपूर्व अवसर का नाम सत्संग है। जहां बैठकर तुम गदगद हो जाओ, जहां बैठकर तुम्हारी आंख आंसुओं से भर जाएं, जहां बैठकर तुम्हारे हृदय में नई पुलक, नई उमंग उठे, जहां बैठकर तुम्हें प्रभु का स्मरण आने लगे, जहां बैठकर तुम्हें याद आए कि अरे, मैं अपने जीवन के साथ क्या करता रहा हूं? कूड़ा-कर्कट ही बीनने में बिता दूंगा सब? और हीरे-जवाहरातों की खदान पास ही है। और मैं डबरों में ही तैरता रहूंगा? और सागर इतने निकट है। विराट इतने पास है।

उफक के दरीचों से किरणों ने झांका
फजा तन गई रास्ते मुस्कुराए
सिमटने लगी नर्म कुहरे की चादर
जवां शाखसारों ने घूंघट उठाए
परिंदों की आवाज से खेत चौंके
पुर-असरार लय में रहट गुनगुनाए

हसीं शबनम-आलूद पगडंडियों से
लिपटने लगे सब्ज पेड़ों के साए
वो दूर एक टीले पे आंचल सा झलका
तसव्वुर में लाखों दीए झिलमिलाए

तुम अगर अपने प्रेमी की राह देख रहे हो, तुम अगर अपनी प्रेयसी की प्रतीक्षा कर रहे हो जरा दूर एक आंचल सा झलमला जाए, लाख दीए जल जाते हैं हृदय में। जरा किसी की पगध्वनि सुनाई पड़ जाए, सरगम छिड़ जाता है हृदय में। जरा कोई हवा का धक्का ही सही द्वार पर चोट कर जाए, तुम भागे, शायद जिसकी प्रतीक्षा थी वह आ गया। देखते हो उस क्षण तुम्हारे भीतर क्या घटता है? उसको ही अनंतगुना कर लो, तो तुम्हें भक्त के लक्षण का पता चलेगा।

उसकी भक्ति की शुद्धता मनुष्यों के चिह्न से अनुभव होगी। और ये चिह्न खयाल रखना, दूसरों की कसौटी और परीक्षा के लिए नहीं शांडिल्य ने दिए हैं। शांडिल्य पर बहुत सी टीकाएं लिखी गई हैं और बहुत से अनुवाद किए गए हैं, लेकिन सभी टीकाओं में और सभी अनुवादों में एक बात मुझे दिखाई पड़ी कि उन सब ने यह मान लिया है कि शांडिल्य ये लक्षण दूसरों की पहचान के लिए दे रहे हैं, कि कैसे भक्तों को पहचानोगे? शांडिल्य ये लक्षण दूसरों की पहचान के लिए नहीं दे रहे हैं—दूसरों से क्या लेन-देन है—ये तुम्हारे भीतर पहचानने के लिए लक्षण हैं। ये तुम्हारी अंतर्यात्रा के लिए सुगम उपाय हैं। और फिर दूसरा तो धोखा भी दे सकता है। आखिर फिल्म-अभिनेता को तुम देखते ही हो न, उसे कोई प्रेम नहीं है और प्रेम प्रकट कर रहा है। और कभी-कभी तो ऐसा होता है कि प्रेमी भी उतना प्रेम प्रकट नहीं कर सकते जैसा अभिनेता करता है। और अभिनेता जानते हैं कि जब आंसू नहीं भी आ रहे हैं तब भी कैसे बुला लिए जाएं—और आंसू टपकने लगते हैं। बड़ी-बड़ी बूंदें प्रकट होती हैं। जब नहीं हंसना है तब अभिनेता हंसता है, जब नहीं रोना है तब रोता है। जहां प्रेम नहीं है वहां प्रेम प्रकट करता है। जहां क्रोध नहीं है वहां क्रोध की लपट आती है। अभिनय का अर्थ ही यही है कि जो वस्तुतः नहीं हो रहा है वह ऐसा मालूम पड़े कि वस्तुतः हो रहा है।

तो तुम खयाल रखना, ये लक्षण दूसरों के लिए नहीं हैं—दूसरे तो हो सकते हैं अभिनेता हों। और ऐसा अक्सर है। तुम लोगों को बैठे देखोगे रामकथा सुनते और डोलते, उन में से सौ में निन्यानबे अभिनेता हैं। क्योंकि वे जानते हैं डोलना चाहिए, इसलिए डोल रहे हैं। क्योंकि डोलने से दूसरे समझेंगे कि वे धार्मिक हैं। रोना चाहिए, इसलिए रो रहे हैं। चाहिए के कारण। घटना घट नहीं रही है, वस्तुतः नहीं घट रही है। सब ऊपर-ऊपर हो रहा है। सब औपचारिक है। तुम भी तो मुस्कुराते हो जब नहीं मुस्कुराना। तुम भी तो हंसते हो जब हंसी नहीं आती। भीतर कुछ और है, बाहर कुछ और।

नहीं, तुम्हें दूसरे की पहचान के लिए सूत्र नहीं देंगे शांडिल्य। असल में धार्मिक व्यक्ति दूसरे की पहचान करने की झंझट में पड़ता ही नहीं—जरूरत क्या है, लेना-देना क्या है? कौन भक्त है, कौन नहीं है, इसकी तुम्हें क्या चिंता है? तुम्हें एक ही चिंता

होनी चाहिए कि मेरे जीवन में अभी वह परम घटना शुरू हुई या नहीं? मेरे भीतर भक्ति का आविर्भाव हुआ या नहीं? तुम्हारे भीतर हृदय गदगद होता है या नहीं? तुम्हारे भीतर हृदय में एक सरसरी दौड़ जाती है या नहीं? तुम्हारे भीतर धड़कनें कुछ तेज हो जाती हैं या नहीं? तुम्हारे शरीर में रोमांच होता है या नहीं? उस पर ध्यान रखना।

वे लक्षण होंगे कि प्रीति की पहली-पहल घटना घटनी शुरू हुई, अंकुरण हुआ प्रीति का। अषाढ़ के पहले मेघ घिरे, जल्दी ही खूब बरसा होगी। और जब प्रीति के लक्षण तुम्हें पकड़ में आ जाएं अपने भीतर तो डरना मत। क्योंकि वे प्रीति के लक्षण दूसरों को तो समझ में आएंगे कि तुम शायद पागल हो गए हो। यह भी क्या बात हुई!

रामकृष्ण के साथ ऐसा रोज हो जाता था। उनको कहीं ले जाना मुश्किल होता था। क्योंकि किसी ने रास्ते में जयरामजी कर ली वह वहीं भाव-विह्वल हो जाते। जिसने की थी उसने तो सिर्फ औपचारिक जयरामजी थी, नमस्कार की बात थी, उसमें रामजी से तो कुछ लेना भी नहीं था उससे, लेकिन रामकृष्ण को तो राम का नाम ही सुना है कि बेखुदी आ जाती, मस्ती आ जाती। राम का नाम क्या था शराब था वह वहीं खड़े हो जाते चौरस्ते पर, आंखें आकाश की तरफ उठ जातीं, शरीर जड़ हो जाता, या गिर जाते रास्ते पर, आंख से आंसू बहने लगते, शरीर में रोमांच हो जाता, भीड़ इकट्ठी हो जाती; उन्हें कहीं ले जाना मुश्किल था!

निश्चित ही लोग पागल समझते थे। निश्चित ही चिकित्सक मानते थे कि यह कुछ हिस्टीरिया जैसी चीज है, कुछ मिरगी जैसी बीमारी है। मगर मैं तुमसे कहता हूं—चाहे चिकित्सक सही ही क्यों न हों, रामकृष्ण पागल ही रहे हों, और उन्हें मिरगी की बीमारी के दौर ही पड़ते रहें हों, तो भी मैं तुमसे कहूंगा, चिकित्सकों से और उनके स्वास्थ्य से रामकृष्ण का पागलपन बेहतर है। क्योंकि रामकृष्ण परम आनंद में जीए।

तुम जब अपने भीतर भक्ति के इन लक्षणों को देखोगे तो रोकना मत। तुम्हारा मन यही कहेगा—रोक लो; लोग क्या कहेंगे, लोग क्या समझेंगे; लोग पागल मानेंगे, सम्हाल लो अपने को। ये लक्षण शांडिल्य इसीलिए गिना रहे हैं ताकि जब ये घटे तो तुम सम्हालना मत, होने देना, प्रकट होने देना, इनमें दूर जाना है, इनमें डूब जाना है। इन्हीं के सहारे यात्रा होनी है। यही वाहन है।

और जहां बन सके, जितना बन सके, जिस प्रकार से बन सके, उतना समय भगवत कथा में लगाना। जहां चर्चा होती हो भगवान की, वहां बैठ जाना, लाख काम छोड़कर बैठ जाना। जहां कोई राम-भजन होता हो, जहां संकीर्तन होता हो, जहां कोई मस्ती में नाचता हो, हजार काम छोड़ देना, नाच लेना उसके साथ, न नाच सको तो कम से कम उसके पास बैठ लेना, कम से कम उसकी नाचती हुई ऊर्जा की थोड़ी वर्षा तुम पर हो जाए, थोड़े छींटे तुम पर पड़ जाएं, थोड़ी संभावना तुम्हारे भीतर भी प्रकट होने लगे, एकाध बीज शायद तुम्हारे हृदय में चला जाए; कौन जाने कब, किस शुभ क्षण में, किस मुहूर्त में, तुम्हारा भाव-द्वार खुला हो और प्रभु-स्मरण पकड़ जाए! पकड़ जाए तो यात्रा शुरू हो जाए। जब तुम्हारे हृदय में एकाध बीज पड़ जाता है, फिर तुम्हारे बस के बाहर हो जाएगी बात। फिर तुम्हें खोज करनी ही होगी, फिर तुम्हें तलाश पर जाना ही होगा।

ये बाह्य लक्षण हैं, आंतरिक लक्षण भी पैदा होंगे।

सम्मान बहुमान प्रीति विरहेतर विचिकित्सा महिमख्याति तदर्थ प्राण स्थान तदीयता सर्व तदभावा प्रातिकूल्यादीनि च स्मरणेभ्यो बाहुल्यात।

सम्मान, बहुमान, प्रीति विरह, इतर विचिकित्सा, महिमा, कीर्तन, प्रीतम के अर्थ जीना, तदीयता, तदभाव, अप्रातिकूल्य इत्यादि प्रेम के आंतरिक लक्षण प्रकट होंगे।

सम्मान। जो व्यक्ति जरा सी भी प्रभु की खोज से भर जाएगा, इस जगत के प्रति, इस अस्तित्व के प्रति उसमें महा सम्मान पैदा होगा। छोटी-छोटी बातों के प्रति सम्मान पैदा होगा—फूलों के प्रति, चांद-तारों के प्रति, सूरज के प्रति, नदी-पहाड़ों के प्रति, क्योंकि यह सब उसी विराट की लीला है। इन सब में वही अनेक-अनेक रूपों में आया है। तब तुम वृक्ष को ऐसा नहीं देखोगे कि सिर्फ वृक्ष, तब वृक्ष में तुम उसी की महिमा देखोगे—वही हरा होकर प्रकट हुआ, वही लाल होकर फूल बना है। तब तारों में तुम इतना ही नहीं देखोगे कि सिर्फ तारे हैं—जैसा वैज्ञानिक देखता है—तब तुम्हें तारों में उसी की रोशनी, उसी का रूप, उसी का सौंदर्य झलकता हुआ दिखाई पड़ेगा। सम्मान पैदा होगा। रिवरेंस।

पश्चिम के बड़े विचारक श्वीत्जर ने रिवरेंस फार लाइफ, जीवन के प्रति सम्मान को धार्मिक व्यक्ति का आधारभूत गुण माना है। शांडिल्य उसी की चर्चा कर रहे हैं। ऐसा व्यक्ति किसी भी चीज को तोड़ नहीं सकता। जोड़ सके तो जोड़ेगा, तोड़ नहीं सकेगा। एक पत्ते को भी नहीं तोड़ सकेगा वृक्ष से; एक फूल को नहीं तोड़ सकेगा। इतना सम्मान होगा उसके भीतर। क्योंकि कुछ भी तोड़ो, परमात्मा ही तोड़ा जाता है। कुछ भी मिटाओ, परमात्मा ही मिटता है। विध्वंस उसके जीवन से समाप्त हो जाएगा। उसके जीवन में सृजनात्मकता होगी। उसके जीवन में सृष्टि के प्रति सम्मान के साथ ही साथ सृजन का आविर्भाव होगा।

दूसरा, बहुमान। शांडिल्य तृप्त नहीं हुए सिर्फ सम्मान से। सम्मान साधारण है। बहुमान भी पैदा होगा। जितना करेगा उतना ही थोड़ा लगेगा। सब उंडेल देगा फिर भी लगेगा कि पूरा धन्यवाद नहीं कर पाया। इतना दिया है परमात्मा ने, इतना दिए जाता है, कैसे उऋण हो सकता हूं। बहुमान पैदा होगा। अपार कृतज्ञता का भाव पैदा होगा।

भक्त सब जगह झुका होगा। देखा न, जैसे वृक्ष जब फलों से लद जाते हैं तो झुक जाते हैं। भक्त फलवान हो गया। झुक जाएगा। सब तरफ झुका होगा। वृक्षों के चरण छू लेगा। नदियों की पूजा कर लेगा। पर्वतों की श्रद्धा करेगा। सूरज को नमस्कार करेगा। सारा जगत देवी-देवताओं में परिवर्तित हो जाएगा—यही हुआ था। जो लोग इस सत्य को नहीं जानते हैं, नहीं पहचानते हैं, उन्हें बहुत हैरानी होती है कि क्यूं इस देश में लोग सूरज को पूजते हैं? सूरज भी कोई पूजने की बात है! सूरज कोई देवता है! चांद को पूजते हैं! चांद में क्या रखा है, अब तो आदमी भी उस पर चल लिया! उन्हें पता नहीं है कि भक्त सब तरफ भगवान को देखता है। प्रत्येक चीज दिव्य हो जाती है, देवता हो जाती है, क्योंकि प्रत्येक चीज में परमात्मा का प्रतिफलन होने लगता है। प्रत्येक चीज दर्पण हो जाती है, उसी का रूप झलकता है। प्रीति, गहन प्रीति

पैदा होगी। उस व्यक्ति के जीवन में प्रीति ही प्रीति की तरंगें होंगी। उठेगा, बैठेगा, चलेगा, सोएगा, और तुम पाओगे उसके चारों तरफ प्रीति का एक सागर लहराता। तुम उसके पास भी आ जाओगे तो उसकी प्रीति से भर जाओगे। तुम उसके पास आ जाओगे, तुम्हारी हृदय-वींणा झंकार करने लगेगी।

इतर विचिकित्सा। परमात्मा के अतिरिक्त उसे और सब चीजों में अरुचि हो जाएगी—स्वाभाविक अरुचि। विराग नहीं, अरुचि। चेष्टा नहीं होगी उसकी, लेकिन उसे और किसी चीज में रुचि नहीं रह जाएगी—कहीं लोग बैठकर धन की बात करते हैं, तो वह बैठा रहे वहां लेकिन उसे रुचि नहीं होगी। कहीं कोई किसी की बात करते हैं कि हत्या हो गई, वह बैठा भी रहे वहां तो उसे रुचि नहीं होगी। हां, कहीं कोई प्रभु का गुणगान करता हो तो वह एकदम सजग हो जाएगा, एकदम लपट आ जाएगी। उसके जीवन में, विरह पैदा होगा। और जितना-जितना भगवान की पहचान होगी, उतने ही विरह की भावदशा बनेगी। जितनी पहचान होगी, उतनी ही पाने की आकांक्षा जगेगी। जितने करीब आएगा, उतनी ही दूरी मालूम होगी—विरह का मतलब होता है, जितने करीब आएगा उतनी ही दूरी मालूम होगी। जब पता ही नहीं था तब तो दूरी भी नहीं थी। तब तो खोजते ही नहीं थे तो दूरी कैसे होती? अब जैसे-जैसे करीब आएगा, जैसे-जैसे झलक मिलेगी, वैसे-वैसे लगेगा—कितनी दूरी है! जैसे साधारण प्रेमी में विरह होता है, वही विरह विराट होकर भक्त में प्रकट होगा।

चांद मद्धम है आस्मां चुप है
नींद की गोद में जहां चुप है
दूर वादी में दूधिया बादल
झुककर पर्वत को प्यार करते हैं
दिल में नाकाम हसरतें लेकर
हम तेरा इंतिजार करते हैं
इन बहारों के साए में आ जा
फिर मुहब्बत जवां रहे न रहे
जिंदगी तेरे नामुरादों पर
कल तक मेहरबां रहे न रहे
रोज की तरह आज भी तारे
सुबह की गर्द में न खो जाएं
आ तेरे गम में जागती आंखें
कम से कम एक रात सो जाएं
चांद मद्धम है आस्मां चुप है
नींद की गोद में जहां चुप है

जैसे प्रेमी चौबीस घंटे हर चीज से अपनी प्रेयसी की ही स्मृति से भर जाता है—आकाश में चांद है तो उसे प्रेयसी का चेहरा दिखाई पड़ता है; बगिया में गुलाब खिला तो उसे प्रेयसी की याद आती है; कोयल ने कुहू-कुहू की कि उसकी प्रेयसी ने

ही जैसे उसे पुकारा; हर चीज निमित्त बन जाती है, बहाना बन जाती है। यह तो साधारण डबरों का प्रेम। लेकिन जब तुम विराट सागर के प्रेम में पड़ोगे तो तो निश्चित ही हर चीज, निश्चित ही हर चीज विरह को जगाएगी। हर चीज उसी की याद लेकर आएगी। तीर पर तीर तुम्हारे हृदय में चुभे जाएंगे।

आज फिर चांद की पेशानी से उठता है धुआं
आज फिर महकी हुई रात में जलना होगा
आज फिर सीने में उलझी हुई वजनी सांसें
फट के बस टूट ही जाएंगी बिखर जाएंगी
आज फिर जागते गुजरेगी तेरे ख्वाब में रात
आज फिर चांद की पेशानी से उठता है धुआं

प्रतिपल भक्त एक धधकता हुआ अंगारा हो जाता है। प्रतिपल भक्त के भीतर बस एक ही अभीप्सा है, एक ही आकांक्षा, एक ही प्यास, एक ही भूख होती है—कैसे प्रभु से मिलन हो जाए? जितनी यह भूख बढ़ती, उतना ही परमात्मा करीब आता। जिस दिन प्यास पूर्ण हो जाती, उसी दिन प्रार्थना भी पूर्ण हो जाती। प्यास ही प्रार्थना है। और प्यास की परिपूर्णता ही परमात्मा का मिलन बन जाती है। कुछ और नहीं चाहिए, कोई और विधि-विधान काम का नहीं है। तुम्हारा रोआं-रोआं उसे पुकार सके, तुम्हारा कण-कण उसकी प्यास से भर सके, एक ऐसी घड़ी आ जाए कि तुम्हारे भीतर उसकी प्यास के अतिरिक्त कुछ भी न बचे, ऐसी त्वरा हो, ऐसी तीव्रता हो, बस उसी तीव्रता में, उसी त्वरा में घटना घट जाती है। कुछ टूट जाता। कुछ यानी तुम्हारा अहंकार। और जहां तुम्हारा अहंकार टूटा कि तुम चकित होकर पाते हो—परमात्मा सदा से मौजूद था, तुम्हारी आंखों पर अहंकार का धुंध था, वह टूट गया है। परमात्मा कभी खोया नहीं था—मिला भी नहीं है, सिर्फ बीच में तुम सो गए थे, अहंकार की नींद में खो गए थे, नींद टूट गई है, संसार का सपना विदा हो गया है। तब भी यही वृक्ष होंगे, तब भी यही लोग होंगे, सब ऐसा ही होगा, और फिर भी सब नया हो जाएगा क्योंकि तुम नए हो गए। फिर पत्थर में वही सोया मालूम होगा। फिर तुम्हारी पत्नी में भी वही है और पति में भी वही है और बेटे में भी वही है और पिता में भी वही है। भक्त के लिए सारा अस्तित्व मंदिर हो जाता है।

महिमा कीर्तन। भक्त को बड़ा आनंद आता है प्रभु की महिमा गाने में। क्योंकि जब भी वह उसकी महिमा का गुणगान करता है तभी अपने को भूल जाता है। उसकी महिमा का गुणगान अपने अहंकार से मुक्त होने का उपाय है। तुमने देखा, लोग अपनी ही महिमा का गुणगान करते हैं। लोगों को बातें सुनो। जरा गौर करो उनकी सारी बातों का निचोड़ क्या है? वे यही कह रहे हैं कि मेरे जैसा आदमी दुनिया में कोई दूसरा नहीं; सारी बातों का निचोड़ यही है। कोई कह रहा है, मैं जंगल शिकार करने गया, ऐसा शेर मारा कि किसी ने क्या मारा होगा! कोई मछली पकड़ लाया है तो उसका वजन बढ़ा-चढ़ा कर बता रहा है कि उसका वजन इतना है। कोई चुनाव जीत लिया है, कोई ताश के पत्तों में जीत लिया है। लोग सारे खेल कर रहे हैं, बात

सिर्फ एक है कि मेरा जैसा कोई भी नहीं। मैं विशिष्ट हूं, मैं असाधारण हूं। सब दूसरों को छोटा करने में लगे हैं, अपने को बड़ा करने में लगे हैं। आदमी की सामान्य स्थिति क्या है? वह आत्म-स्तुति में लगा है।

भक्त भगवान की स्तुति में लगता है। उस स्तुति में ही लगते-लगते भगवान हो जाता है। अपनी स्तुति में जो लगेगा, वह भगवान से छिटकता जाएगा और जो भगवान की स्तुति में लग जाएगा, एक दिन भगवान हो जाएगा। वह जो विशिष्ट होने की आकांक्षा थी, उसी दिन पूरी होती है जब कोई बिलकुल सामान्य हो जाता है।

महिमा कीर्तन, प्रीतम के अर्थ जीना। भक्त फिर अपने लिए नहीं जीता। इसलिए जीता है कि थोड़ी देर और परमात्मा का गुणगान कर ले। थोड़ी देर और गीत गा ले, थोड़ी देर और प्रार्थना कर ले। उसके जीवन का एक ही लक्ष्य रह जाता है।

यही तोहफा है यही नजराना
मैं जो आवारा-नजर लाया हूं
रंग में तेरे मिलाने के लिए
कतर-ए-खूने जिगर लाया हूं
पहले कब आया हूं कुछ याद नहीं
लेकिन आया था कसम खाता हूं
फूल तो फूल हैं, कांटों पे तेरे
अपने ओठों के निशां पाता हूं
फूल के बाद नए फूल खिलें
कभी खाली न हो दामन तेरा
रोशनी-रोशनी तेरी राहें
चांदनी-चांदनी आंगन तेरा
यही तोहफा है यही नजराना
मैं जो आवारा नजर लाया हूं

भक्त कहता है—

मेरे पास और क्या है, एक भटकती हुई आंख है—आवारा नजर।

यही तोहफा है यही नजराना
मैं जो आवारा-नजर लाया हूं
रंग में तेरे मिलाने के लिए
कतर-ए-खूने जिगर लाया हूं

जिगर के खून की एक बूंद, हृदय को चढ़ाने को लाया हूं, जीवन को चढ़ाने को लाया हूं। आदमी ने बड़ी धोखे की ईजादें कर ली हैं। तुम जाते हो फूल तोड़कर मंदिर में भगवान पर चढ़ा आते हो, तुम समझते हो तुमने कुछ चढ़ाया। जब तक जिगर की बूंद न चढ़ाओगे तब तक कुछ नहीं चढ़ाया। अपना फूल चढ़ाओ। तुम गए और नारियल तोड़ आते हो। यह खोपड़ी जब तक न टूटे। लोगों ने तरकीबें खोज ली हैं—नारियल जरा खोपड़ी जैसा मालूम पड़ता है। उसमें दो आंखें भी होती हैं,

दाढ़ी-मूंछ भी होती है, और उसके भीतर जो है उसे हम खोपड़ा भी कहते हैं। लोगों ने सिर चढ़ाने की जगह नारियल चढ़ाना शुरू कर दिया! लोगों ने अपने जिगर का कतरा चढ़ाने की जगह सिंदुर चढ़ाना शुरू कर दिया! वह खून का प्रतीक है सिर्फ। लोगों ने अपने जीवन का फूल चढ़ाने की जगह वृक्षों के फूल चढ़ाने शुरू कर दिए—वे तो चढ़े ही हुए हैं! वे तो वृक्षों पर ही चढ़े ही थे! उन्हें तोड़कर तुमने कुछ बढ़ोतरी नहीं की, कुछ घटाया ही। आदमी अपने को चढ़ाए। प्रीतम के अर्थ जीए, प्रीतम के अर्थ मरे।

तदीयता। वह ही है, मैं नहीं हूं, ऐसी भक्त की भावदशा होती है। तदभाव। वही सब में है, सब में वही है, ऐसी उसकी प्रतीति होती है। इन्हीं तरंगों में वह रंगता जाता अपने को, इन्हीं भावों से भरता जाता अपने को।

अप्रातीकूल्य। और भगवान के प्रतिकूल आचरण का उसमें अभाव होता है। वह कुछ भी नहीं कर सकता जो भगवान के प्रतिकूल हो, विपरीत हो। ऐसी कोई बात उससे नहीं हो सकती जो इस विराट अस्तित्व के विपरीत जाती हो। होगी भी कैसे? तदीयता पैदा हो गई—तू ही है, मैं नहीं हूं। तदभाव पैदा हो गया—सब में तू ही है।

कांटे का रंग
और कांटे की ताजगी
पांव से निकले हुए
खून में है
भीतर की बेचैनी और खुशी
आंख से टपकी
बूंद में है
मगर
न इसे कोई देखता है
न उसे कोई समझता है

भक्त के पास सिर्फ भाव है चढ़ाने को। तदीयता का भाव। तदभाव भक्त अपने को मिटाता है और भगवान को आमंत्रित करता है। रो-रोकर भक्त अपने अहंकार को गलाता है, अपने को विदा देता है। जिस दिन अपने से खाली हो जाता है उसी दिन से परमात्मा से भरने की संभावना शुरू हो जाती है। तुम मिटो तो परमात्मा आए। जब तक तुम हो, तब तक परमात्मा नहीं हो सकता है।

ये उसके अंतर-लक्षण हैं।

द्वेषादयस्तुनैवम्।

द्वेष बुद्धि आदि से ऐसा नहीं होता।

भक्त संसार के प्रति कोई द्वेष बुद्धि से नहीं जीता। जैसा तथाकथित तपस्वी जीता है। तपस्वी के मन में संसार के प्रति बड़ा द्वेष है। तपस्वी सिर के बल खड़ा हो गया संसारी है। तुम्हारे भोगी में और तुम्हारे योगी में बहुत फर्क नहीं होता। तुम्हारे योगी और भोगी की भाषा एक ही होती हैं। भोगी धन पकड़ता है, त्यागी धन से भागता है—मगर दोनों ही धन से आलिप्त होते हैं। भोगी कहता है—और धन हो

जाए, त्यागी कहता है—मैं धन से डरता हूं, धन छूटे। मगर दोनों धन से आतंकित हैं। एक मोह से भरा है, एक भय से—मगर आतंक दोनों में है। भोगी कहता है—सुंदर स्त्री है और सुंदर स्त्री, और योगी डरा हुआ है। सुंदर क्या असुंदर स्त्री से भी डरा हुआ है। स्त्री से कहीं मिलना न हो जाए, वह भाग रहा है जंगलों की तरफ कि दूर स्त्री से निकल जाए। भोगी तलाश करता जाता है कि चलो पेरिस चलें, योगी भागता है हिमालय की गुफाओं में—मगर दोनों स्त्री से आतंकित है। दोनों में कुछ भेद नहीं है, भाषा एक ही है। एक-दूसरे की तरफ पीठ किए खड़े हैं, लेकिन भाषा में कुछ भेद नहीं है। दोनों का तर्क एक है।

भक्त का तर्क भिन्न है। भक्त कहता है—संसार से द्वेष करके तुम परमात्मा से प्रेम न कर सकोगे। प्रेमी द्वेष करना जानता ही नहीं। संसार से भी प्रेम करता है—इतना प्रेम करता है, इतना गहरा प्रेम करता है कि संसार के घूंघट उठ जाते हैं उस प्रेम में और संसार में ही छिपे हुए परमात्मा की झलक मिलनी शुरू हो जाती है।

द्वेषादयस्तु नैवम्। द्वेष बुद्धि आदि से ऐसा नहीं हो सकता। यह जो भक्त की परम दशा है, यह प्रीति से ही हो सकती है, निरंतर प्रीति से, गहरी होती प्रीति से हो सकती है। इसे द्वेष से लाने का उपाय बुनियादी रूप से गलत है। संसार और परमात्मा में विरोध नहीं है, तुम्हारे महात्माओं ने तुमसे कुछ भी कहा हो! तुम्हारे महात्मा गलत होंगे। संसार और परमात्मा में विरोध नहीं है, संसार परमात्मा का है, विरोध हो नहीं सकता। यहां हर चीज पर उसी का हस्ताक्षर है, उसी का चिह्न है, विरोध हो नहीं सकता। अगर तुम्हें विरोध दिखता है, तो तुम्हारी कहीं भ्रांति है। तुमने विरोध खड़ा कर लिया है। खोजो, टटोलो और तुम उसे यहीं पाओगे छिपा हुआ। हर पत्थर को तोड़ो और तुम उसी को छिपा पाओगे धड़कते। हर पत्ते में तुम उसे हरा पाओगे। हर झरने में तुम उसे कलकल करता हुआ पाओगे। हर दीए में वही रोशन है और हर दिल में वही धड़कन है और हर श्वास में वही श्वास है।

द्वेष से नहीं, प्रेम से भरो। और यही भक्ति की निर्मलता है; और भक्ति की सरलता, सहजता, स्वाभाविकता है। भक्ति तुम्हें अस्वाभाविक होने को नहीं कहती। भक्ति कहती है—तुम्हें प्रेम तो मिला ही है, जन्म से ही लेकर आए हो, इसी प्रेम की सीढ़ी बना लो।

त्यागी उल्टे कामों में लग जाता है, जो उसे जन्म से नहीं मिला है। कोई बच्चा जन्म से त्याग लेकर नहीं आता। त्याग सीखी भाषा है। लेकिन हर बच्चा प्रेम लेकर आता है। प्रेम सीखी भाषा नहीं है, निसर्ग की भाषा है। त्याग आदमी की ईजाद है, प्रेम परमात्मा का निर्माण। परमात्मा पर भरोसा करो।

तुमने देखा, छोटा बच्चा पैदा हुआ और प्रेम से गदगद रहता है। अभी सीखने का तो मौका ही नहीं मिला। छोटे बच्चे की आंखों में झांका? कैसी सरल प्रीति! अभी किसी ने कुछ सिखाया भी नहीं। सच तो यह है, जैसे ही लोग सिखाएंगे वैसे ही प्रीति कम होती चली जाएगी। वैसे ही चालबाजियां बढ़ेंगी, द्वेष बढ़ेगा, बेईमानियां बढ़ेंगी; वैसे ही बच्चा राजनीति सीखेगा, कूटनीति सीखेगा, धोखाधड़ी सीखेगा; ढोंग सीखेगा,

पाखंड सीखेगा, जवान होते-होते प्रीति के तो प्राण निकल जाएंगे, गर्दन घुट जाएगी; बूढ़ा होते-होते तो सब रेगिस्तान हो जाएगा, प्रीति का झरना खोजे से न मिलेगा कहां खो गया, लेकिन हर बच्चा प्रेम की बड़ी शुद्ध क्षमता लेकर आता है। भक्ति कहती है इसी शुद्ध क्षमता को निखारो, परिशुद्ध करो, फैलाओ, बड़ा करो। इसी के सहारे तुम परमात्मा तक पहुंच जाओगे—परमात्मा ने तुम्हें इस जगत में भेजा तो जरूर तुम्हारे भीतर कुछ रख दिया है पाथेय, कलेवा, जिससे रास्ता कट जाएगा। और कोई दीया तुम्हारे भीतर रख दिया है कि जब तुम्हें जरूरत होगी तो तुम जला लोगे और वापस घर लौट आओगे। कोई नक्शा तुम्हारे भीतर छोड़ दिया है कि कहीं तुम भटक ही न जाओ। कुछ सूत्र तुम्हारे भीतर रखा है कि जिस दिन भी तुम होश से अपने को समझोगे, तुम्हें धागा मिल जाएगा। उस धागे को पकड़कर तुम यात्रा कर लोगे।

प्रेम तुम्हारे भीतर सूत्र है। प्रेम सूत्रों का सूत्र है। प्रेम स्वर्ण-सूत्र है। भक्त उसी पर भरोसा करता है, उसी को निखारता है—स्नेह से प्रीति बनाता है, प्रीति से श्रद्धा बनाता है, श्रद्धा को भक्ति में रूपांतरित करता है। एक-एक सोपान चढ़ते-चढ़ते एक दिन तुम पाते हो कि तुम्हारा प्रेम अपने पूरे आकाश को पा लिया, पूरा खिल गया।

इस प्रेम की पूरी खिलावट में, इस प्रेम के पूरे कमल के खिल जाने में उपलब्धि है—उसकी, जिसे वस्तुतः कभी खोया नहीं लेकिन हम किसी सपने में खो गए हैं और जो है वह दिखाई नहीं पड़ रहा है; और जो नहीं है, वह दिखाई पड़ने लगा है।

संसार माया है, उस परमात्मा की ही लीला, उसकी ही ऊर्जा। और संसार तुम्हारे लिए एक शिक्षण का अवसर है। सीखो। संसार प्रेम को निखारने की प्रक्रिया है। इसलिए तुम्हें प्रेम इतने जोर से पकड़ता है। प्रेम से बड़ी कोई शक्ति है इस जगत में? आदमी प्रेम के लिए जीवन भी दे देता है। कभी-कभी झूठे और सिखाए प्रेम के लिए भी जीवन दे देता है। जैसे मातृभूमि के प्रेम में कोई मर जाता है। वह सिखाया हुआ है और झूठा है। वह राजनैतिक चालबाजी है। नहीं तो कौन सा देश किसका है? सारी पृथ्वी सब की है। लेकिन उसमें भी आदमी मर जाता है। कभी कुल के प्रेम में, परिवार के प्रेम में जान दे देता है। वह बड़ा छुद्र है, दो कौड़ी का है, लेकिन प्रेम ही इतना बहुमूल्य है कि कृत्रिम प्रेम भी कभी-कभी जीवन देने योग्य मालूम पड़ता है। तो असली प्रेम की तो बात ही हम क्या कहें। जिस दिन असली प्रेम पैदा होगा, उस दिन तुम चुपचाप अपनी जीवन-ऊर्जा को परमात्मा से चरणों में रख दोगे, तुम कहोगे—सब समर्पित है। उस समर्पण में ही क्रांति घट जाती है।

शांडिल्य को खूब हृदयपूर्वक समझना। शांडिल्य बड़ा स्वाभाविक सहज योग प्रस्तावित कर रहे हैं। जो सहज है, वही सत्य है। जो असहज हो, उससे सावधान रहना। असहज में उलझे, तो जटिलताएं पैदा कर लोगे। सहज से चले तो बिना अड़चन के पहुंच जाओगे।

आज इतना ही।

प्रवचन ८

विरह की परिपूर्णता ही परमात्मा से मिलन

प्रश्नसार

आपने कहा जो सहज है वही भक्त है, वही भक्ति है।
पर हमारे जीवन की सहजताएं किस भांति भक्ति कहे जा सकते हैं?

भगवान का प्रवचन आंख बंद करके सुनना, या खुली आंख सुनना? एक साधिका की समस्या।

यह मन-पंछी बहुत ऊंची उड़ाने भरता है, लेकिन पहुंचता कहीं नहीं। प्रभु, इस पर कुछ कहने की अनुकंपा करें।

शीघ्र समाधि की चाह एक भयंकर तनाव बनी जा रही है।
मैं क्या करूं?

क्या ध्यान भक्ति और ज्ञान से परे तीसरा ही कोई मार्ग है?

विरह क्या है?

पहला प्रश्नः कल आप ने कहा कि जो सहज है वही भक्त है, वही भक्ति है। पर हमारे जीवन में तो सोना-खाना, काम-क्रोध, लोभ-मोह, मनोरंजन आदि ही सहज हैं। कृपा करके कहिए कि ये सब किस भांति भक्ति कहे जा सकते हैं?

बीज भी सहज है, फूल भी सहज है। बीज की यात्रा फूल तक, वह भी सहज है। लेकिन बीज अगर बीज होने पर ही रुक जाए, तो वह रुक जाना सहज नहीं है। जहां अवरोध है, जहां रुकावट है, जहां यात्रा टूट गई, जहां मार्ग मंजिल से नहीं जुड़ता, वहीं असहज हो गया कुछ। बीज बढ़ता रहे। बीज में कुछ बुराई नहीं है। बीज में ही छिपा है फूल। बीज में ही छुपी है सुगंध। बीज में ही छुपा है सौंदर्य। लेकिन छुपा ही न रह जाए, प्रकट हो, अभिव्यक्ति हो, नाचे।

मनुष्य जिन चीजों को साधारणतः जीता है, वे सब सहज हैं—खाना, पीना, काम-क्रोध, लोभ-मोह—मगर बीज की भांति। वहीं रुक गए तो अड़चन हो जाएगी। वहीं रुक गए तो भक्ति खो गई। भक्ति है भगवान तक यात्रा। वहां से चले; उसे पड़ाव समझो, मंजिल मत बनाओ। थोड़ी देर रुकना भी पड़े तो रुक जाओ, मगर सदा के लिए न रुक जाओ। बढ़ते रहो, आगे बढ़ते रहो।

और तुम चकित होओगे जानकर कि अगर रुक गए, तो आदमी जीने लगता है खाने-पीने के लिए। और अगर बढ़ते रहे, तो आदमी खाता-पीता है जीने के लिए। और दोनों में जमीन-आसमान का फर्क हो गया। अगर रुक गए तो काम काम ही रह जाता है। अगर बढ़ते रहे, तो काम से ही राम का जन्म होता है। काम बीज है राम का। अगर रुक गए तो क्रोध क्रोध रह गया, और तुम्हें सड़ा डालेगा। बीज रुकेगा तो सड़ेगा। बीज रुकेगा तो बीज भी नहीं रह सकेगा। आज नहीं कल राख रह जाएगी।

बीज बढ़े तो ही बच सकता है। बीज बड़ा हो, फैले, विराट बने; फूल आएं, फल आएं, एक बीज में हजार बीज आएं, तो बीज बचेगा।

क्रोध बीज है। अगर रुक जाए, तो सड़ जाओगे, नर्क बन जाएगा। अगर आगे बढ़ जाए तो क्रोध से ही करुणा का जन्म है। क्रोध तुम्हारी ऊर्जा है। राह नहीं पाती तो भटक जाती है। तुम्हारे भोतर ही भीतर घूमती है। द्वार नहीं पाती तो तुम्हें तोड़ डालती है। द्वार मिल जाए, सम्यक मार्ग मिल जाए, तो क्रोध ही करुणा बन जाएगी।

जीवन जहां है अभी, निश्चित ही सहज है। मैं तुमसे यह अधिकारपूर्वक कहना चाहता हूं कि खाना-पीना सहज है, सोना-उठना-बैठना सहज है, काम-क्रोध सहज है, मनोरंजन सहज है, बस यहां रुक मत जाना। मनोरंजन पर रुक गए तो खिलौनों से ही खेलते रहे, असली बात शुरू ही न हुई।

मनोरंजन में क्या रस है? यही न कि थोड़ी देर को मन भूल जाता है। किस बात को मनोरंजन कहते हो? फिल्म देखी, कि नाच देखा, कि गीत सुना, कि थोड़ी देर को उलझ गए, तल्लीन हो गए, थोड़ी देर को मन विस्मृत हो गया, इसी को मनोरंजन कहते हो। यही आगे बढ़े तो एक दिन तुम ऐसी जगह पहुंच जाओगे जहां मन सदा के लिए विस्मृत हो जाता है। मनोभंजन हो जाता है। उस दिन परम आनंद है। उसी मनातीत अवस्था का नाम भक्ति है; या ध्यान है; या समाधि है।

मनोरंजन पर रुकना मत, मनोरंजन को समझो, पहचानो, सार-सूत्र गहो। उसमें से निचोड़ लो कि बात क्या है? मनोरंजन में मैं क्यूं इतना डूब जाता हूं? किसलिए यह आकांक्षा? किसलिए बार-बार चाहता हूं कुछ हो जिसमें तल्लीन हो जाऊं? अपने से ऊब गए हो, इसलिए कहीं डूबना चाहते हो। मगर जहां डूबते हो, चुल्लू भर पानी में, वहां डूब पाओगे? फिल्म कितनी देर डुबाएगी? और नाच कितनी देर भुलाएगा? और शराब कितनी देर मस्ती रखेगी? जल्दी ही मस्ती टूट जाएगी। जल्दी ही सिनेमागृह के बाहर निकल आओगे। ज्यादा देर संगीत भरमाएगा नहीं। फिर अपनी जगह वापस, पहले से भी बदतर हालत में। क्योंकि यह थोड़ी देर को जो मन भूल गया था, इसने सुख की एक झलक भी दे दी, अब दुख और बड़ा होकर दिखेगा, तुलना में और कठिन होकर दिखेगा। देखा नहीं कभी राह से गुजरते हो रात, अंधेरी रात और एक तेज कार पास से गुजर जाती है पूरे प्रकाश को आंखों में डालते हुए, फिर उसके बाद रास्ता और अंधेरा हो जाता है। पहले कुछ सूझता भी था, अब कुछ भी नहीं सूझता। थोड़ी देर को तो तुम बिलकुल अंधे हो जाते हो।

जीवन में दुख है, शराब पी ली, थोड़ी देर के लिए दुख विस्मृत हुआ, लेकिन कब तक डूबोगे? थोड़ी देर बाद वापस लौटना ही होगा। शराब शाश्वत हो जाए तो परमात्मा मिल गया। शाश्वत शराब का नाम ही परमात्मा है, कि जिसमें डूबे तो डूबे, फिर लौटे नहीं। चुल्लूभर पानी में न डूब सकोगे। कुल्हड़ों में नहीं डूब सकोगे, सागर चाहिए। समझदार व्यक्ति अपने जीवन की सामान्यता में से खोज करता है, जांच करता है, परख करता है, सूत्र पकड़ता है कि मनोरंजन में राज क्या है? फिर मनोरंजन का राज समझ में आ गया तो वह सोचता है कि अब मैं कैसे उस दशा को खोजूं जहां

मन सदा के लिए खो जाए। एकबारगी छुटकारा हो इससे, फिर लौटकर मिलन न हो। लेकिन अभी तुम जैसे जीते हो वह एक अंधी आदत है। उसमें होश नहीं है, उसमें विचार नहीं है, उसमें विवेक नहीं है, उसमें बोध नहीं है।

सांस लेना भी कैसी आदत है
जीए जाना भी क्या रवायत है
कोई आहट नहीं बदन में कहीं
कोई साया नहीं है आंखों में
पांव बेहिस हैं, चलते जाते हैं
इक सफर है जो बहता रहता है
कितने वर्षों से कितनी सदियों से
जिए जाते हैं जिए जाते हैं
आदतें भी अजीब होती हैं

आदत से ऊपर उठना धर्म है। यांत्रिकता से ऊपर उठना विकास है। खाओ-पीओ जरूर, बस खाने-पीने में समाप्त मत हो जाना। नाचो और गाओ भी जरूर, मगर उस परम नृत्य को मत भूल जाना। उसे याद रखना। और यह हर नाच उसी परम नृत्य की याद दिलाता रहे, तो फिर कोई अड़चन नहीं है।

संगीत सुनो, संगीत से मेरा विरोध नहीं है, लेकिन यह तुम्हारे भीतर तीर बनकर बैठ जाए और परम संगीत की खोज शुरू हो। प्रेम करो, जरूर करो; रूप से, रंग से लगाव बनाओ, लेकिन यह लगाव तुम्हें अरूप की याद दिलाए, यह लगाव छुद्र पर समाप्त न हो, यह तुम्हें अंकुश बन जाए, यह तुम्हें परमात्मा की तरफ ले चलने लगे।

जब एक स्त्री में इतना सौंदर्य हो सकता है, एक पुरुष में इतना सौंदर्य हो सकता है, जब एक फूल में इतना सौंदर्य हो सकता है और आकाश में भटकते एक बादल में इतना सौंदर्य हो सकता है, तो उस परम में जो सब के भीतर छिपा है, जो राजों का राज है, उसमें कितना सौंदर्य न होगा! जब उसकी ये छोटी-छोटी भाव-भंगिमाएं इतना मन को आंदोलित कर जाती हैं, तो जब उससे ही मिलन हो जाएगा...नौकर-चाकरों से मिलते रहे हो; जब नौकर-चाकरों से मिलकर ऐसा सुख मिल रहा है, तो मालिक से मिलकर क्या न होगा!

सूफी फकीर चिल्लाते हैं—याऽमालिक! उनका मंत्र है—याऽऽमालिक!! खोज एक है—मालिक कैसे मिल जाए? द्वारपालों की वेषभूषा में मत उलझ जाओ। द्वारपाल भी बड़ी वेशभूषा वाले होते हैं—रंगीन वस्त्र होते उनके, सोने की बटनें होतीं उनकी, उन्हीं में मत उलझ जाना, मालिक की तलाश करनी है, मालिक कहीं महल के भीतर है। तुम महल के बाहर ही मत सोच लेना कि महल आ गया। बस इतनी याद रहे, तो सब सहज है; खाना-पीना, काम-क्रोध, मोह-लोभ, सब सहज है। पर आगे बढ़ते रहो। यात्रा जारी रहे। धीरे-धीरे जैसे-जैसे आगे बढ़ोगे, जरा क्रोध से आगे बढ़ोगे, करुणा की झलक मिलेगी; जरा रूप के आगे जाओगे, अरूप की तरंग आ

जाएगी; जरा संगीत में गहरे उतरोगे, तो नाद सुनाई पड़ेगा, ओंकार सुनाई पड़ेगा।

तुमको देखा
अलस सुबह
गीली मिट्टी से अंकुर फूटे
सहज-सहज
हिलती फसल
बालियां
नजियायीं भारी—
पके आम चुगे बागों में
लूट
उड़ कर गई
जहां से
वह नन्हीं सी
नीली चिड़िया
हरी हो गई डाली
फुनगी
, अंग कसे बंधन
टूटे
दिखा गांव चौमास, भुरारा
रितु का चढ़ा हुआ रंग
पेड़ों पर
परस तुम्हारा
हवा कंपाती
जल-तल
कौरे, नाचे, भीत भितौने
टूटे-फूटे
तुमको देखा
एक सांझ
सूर्य अस्त था
पेड़ों में बिंध कर
लाली फैली
दूर-दूर तक
फूले कांसों पर
सजल आंख से
अंजन छूट
तुमको देखा

अलस सुबह
गीली मिट्टी से अंकुर फूटे
दिखा गांव चौमास, भुरारा
रितु का चढ़ा हुआ रंग
पेड़ों पर
परस तुम्हारा

मैं प्रेम-विरोधी नहीं हूं—यही मेरी देशना है। यही मेरा मौलिक संदेश है। मैं संसार-विरोधी नहीं हूं। मैं संसार के अति प्रेम में हूं। मैं तुम्हें वैराग्य नहीं सिखाता, मैं तुम्हें राग को गहरा करने की कला सिखाता हूं। मैं तुम्हें निषेध नहीं सिखाता कि तुम भागो और छोड़ो और जंगलों में चले जाओ। मैं तो उस भगोड़ेपन को मूढ़ता कहता हूं। मैं तो कहता हूं, इस संसार में थोड़े गहरे उतरो, ऊपर-ऊपर नहीं—याऽऽमालिक, इस संसार में संसार का मालिक भी छिपा है, तुम जरा खोदो। तुम महल में प्रवेश ही नहीं करते। तुम महल की चारदीवारी के चारों तरफ चक्कर काटते रहे जन्मों-जन्मों से। महल तुम्हारी प्रतीक्षा करता है, मालिक तुम्हारी प्रतीक्षा करता है, सब सहज है।

असहज कब घटता है?

जब कोई चीज रुक जाती है। बच्चा जवान हो, सहज है। बच्चा बच्चा ही रह जाए, तो असहज है। बूढ़ा बूढ़ा ही रह जाए, मरे न तो असहज है। मृत्यु सहज है। जवान बूढ़ा हो, यह सहज है। चीजें बहें, धारा चलती रहे, डबरा न बन जाए; जहां गत्यावरोध होता है, जहां धारा डबरा बन जाती है, वहीं कुछ असहज हो जाता है। बस इतनी याद रहे। संन्यास यानी प्रवाह। अनंत प्रवाह। जहां हो, वहीं से आगे जाना है। आगे जाते ही रहना है; जब तक कि अंतिम न मिल जाए।

और अंतिम का क्या अर्थ होता है? अंतिम का अर्थ होता है, जहां नदी सागर में खो जाती है। फिर और यात्रा-पथ नहीं रह जाता। नदी बचती ही नहीं। यात्री ही खो जाए, तभी समझना कि यात्रा का अंत आ गया है।

दूसरा प्रश्नः लोग आंख बंद कर के प्रवचन सुनते हैं। और मैं डरती हूं कि कहीं एक पल के लिए भी आंख न बंद हो। मैं चाहती हूं कि आपको देखती रहूं, देखती ही रहूं। आपकी आंखों की रोशनी जब मेरी आंखों में आती है तो जो दिव्य अनुभव होता है, उसका वर्णन नहीं कर सकती। इस अनुभव में मैं आधा प्रवचन ही सुन पाती हूं। यह कैसी प्यास है? क्या यह पूरी हो सकती है?

पूछा है शांता ने। दुनिया में दो तरह के लोग हैं। एक, जो कान से जीते हैं; और एक, जो आंख से जीते हैं। दुनिया में हर चीज दो में बंटी है। एक ही दो में बंटा है, मगर दो में बंटे बिना दुनिया नहीं बनती।

कुछ लोग आंख से जीते हैं। कुछ लोग कान से जीते हैं। जो कान से जीते हैं, वे मुझे आंख बंद कर के सुनना पसंद करेंगे। उनका रस, उनका मुझसे संबंध कान से

जुड़ेगा। जो आंख से जीते हैं, वे आंख बंद न कर पाएंगे। आंख बंद करेंगे तो उन्हें लगेगा कुछ खोया। कान उनके लिए पर्याप्त नहीं होगा। वे आंख से ही पीएंगे, वे आंख से ही सुनेंगे; आंख ही उनका द्वार है।

जो तुम्हें सहज हो, वैसा ही करना। अगर आंख खोले रखने में ही रस आता हो, तो फिकर छोड़ो प्रवचन की। आधा सुना, कि नहीं सुना चिंता न करो। आधे से ज्यादा, जो चूक गया है, उससे ज्यादा तुम्हें आंख से मिलेगा। अपनी प्रकृति को समझो। दूसरे आंख बंद कर के सुन रहे हैं, इसकी नकल में मत पड़ना। नकल अक्सर भ्रांति में डाल देती है, हानि में पहुंचा देती है। कभी किसी की भूलकर नकल मत करना। जो आंख बंद करके सुन रहा है, उसे उसी में रस होगा। उससे मेरा संबंध ध्वनि का है। उसके हृदय का द्वार उसके कान से जुड़ा है। तुम्हारे हृदय का द्वार तुम्हारी आंख से जुड़ा है।

कान निष्क्रिय तत्व है, आंख सक्रिय तत्व है। जो व्यक्ति बहुत सक्रिय होते हैं; उनकी आंख केंद्र होती है जीवन की। सक्रिय व्यक्ति आंख से जुड़ेगा। फर्क समझ रहे हो? जब तुम कान से सुनते हो तो कान कुछ भी नहीं करता। मैं बोलूंगा तो तुम्हारे कान तक पहुंचेगा, कान ग्राहक होगा। कान सुनने मेरे ओठों तक नहीं आ सकता। कान प्रतीक्षा करेगा अपनी जगह। कान कोई यात्रा नहीं कर सकता। कान सिर्फ ग्राहक यंत्र है। आंख यात्रा करती है। जब तुम मुझे देख रहे हो तो तुम्हारी आंख वहीं नहीं बैठी है, प्रतीक्षा नहीं कर रही है मेरे आने की। तुम्हारी आंख मेरे पास आ गई है, तुम्हारी आंख ने मुझे छू लिया है। आंख सक्रिय तत्व है। जो भी व्यक्ति सक्रिय है, वह आंख से बहेगा।

सदा अपने स्वभाव को सुनो। अपने स्वभाव की सुनो और उसके अनुसार चलो।

शांता का जीवन आंख में होगा। तुमने देखा अंधे आदमी संगीत में बड़े कुशल हो जाते हैं। क्यों? उनकी आंख से बहती सारी ऊर्जा आंख से तो बह नहीं सकती, इसलिए कान में ही समाविष्ट हो जाती है। उनकी आंख और कान संयुक्त हो जाते हैं कान में। इसलिए ध्वनि का उनका अनुभव गहरा हो जाता है। अंधा आदमी जिस प्रगाढ़ता से सुनता है, आंख वाला कभी सुनता ही नहीं, सुन ही नहीं सकता, क्योंकि उसकी ऊर्जा कुछ तो बंटी ही रहती है—कुछ आंख में, कुछ कान में। शांता की भी वही गति होगी, इसलिए आधा प्रवचन चूक जाता है। आधी आंख, आधा कान। कान जिसका प्रगाढ़ होता है, वह संगीत में लीन हो पाता है। आंख जिसकी प्रगाढ़ होती है, वह चित्रकला या मूर्तिकला जैसी बातों में प्रवीण हो पाता है। दोनों में फर्क होता है। एक चित्रकार आंख से जीता है, एक संगीतज्ञ कान से जीता है।

आंख से ही मुझे आने दो। जहां से भी द्वार संभव हो सके वहां से मुझे आने दो। और तुम इस की फिकर मत करो कि दूसरे आंख बंद करके सुन रहे हैं, तो ज्यादा पा रहे होंगे। वे कान से पा रहे हैं, तुम आंख से पाओगी।

अपने ही अनुसार जीओ। सदा अपने अनुसार जीओ और कभी हानि नहीं होगी। भूलकर भी अनुकरण मत करना। अनुकरण गड्ढे में ले जाएगा।

पूछा है—लोग आंख बंद करके प्रवचन सुनते हैं, और मैं डरती हूं कि कहीं

एक पल के लिए भी आंख बंद न हो जाए। मैं चाहती हूं कि आपको देखती रहूं, देखती ही रहूं। आपकी आंखों की रोशनी जब मेरी आंखों में आती है तो जो दिव्य अनुभव होता है, उसका वर्णन नहीं कर सकती। हर बात के लिए कुछ कीमत तो चुकानी पड़ती है। अगर आंख से तुम्हें कुछ अनुभव हो रहा है, तो फिर कान का अनुभव तुम्हें खोना पड़ेगा। दोनों हाथ लड्डू संभव नहीं है। मगर वह कीमत चुकाने जैसी है। शब्द कुछ छूट जाएंगे स्वभावतः जब आंख गहराई में उतरेगी तो शब्द कुछ डगमगा जाएंगे—कान सुनेगा भी और नहीं भी सुनेगा, सुनेगा भी और पकड़ नहीं पाएगा, पकड़ भी लेगा तो हृदय तक नहीं पहुंचा पाएगा, क्योंकि हृदय उस समय आंख से जुड़ा होगा।

यह तुम ने देखा? तुम रास्ते पर हो, किसी ने कह दिया तुम्हारे घर में आग लगी है, फिर तुम भागे; फिर रास्ते पर कोई मिलता है, नमस्कार करता है, मगर तुम्हें दिखाई नहीं पड़ता। कहीं रेडियो लगा है, कोई सुंदर गीत चल रहा है, मगर तुम्हें सुनाई नहीं पड़ता। नहीं कि सुनाई नहीं पड़ता—कान है तो सुनाई तो पड़ेगा ही; और राह पर कोई नमस्कार करेगा तो आंख है तो दिखाई पड़ेगा ही—लेकिन नहीं, अब तुम्हारा हृदय यहां नहीं है। हृदय तो घर में आग लगी है, वहां चला गया। तुम्हारी इंद्रियों से तुम्हारे हृदय का संबंध टूट गया।

यही फर्क है सुनने और सुनने में। सुनते सभी हैं; लेकिन वे ही लोग सुन पाते हैं जिनका हृदय कान से जुड़ा हो, जिनका हृदय कान से पीछे खड़ा हो। देखते सभी हैं, लेकिन देखने देखने में फर्क है। वही देख पाते हैं, जिनकी आंख के पीछे हृदय खड़ा हो। छूते सभी हैं, छूने छूने में फर्क है। वही छू पाते हैं, जिनके छूने में हृदय पीछे खड़ा हो। जिस इंद्रिय से हृदय जुड़ जाता है, वही इंद्रिय अनुभव लाती है।

तो जो सहज हो रहा है, होने दो। आंख से ही चलो। इस अनुभव में मैं आधा ही प्रवचन सुन पाती हूं। पूरा भी जाए तो जाने दो। शब्द से तुम्हारी संपदा नहीं बढ़ेगी। तुम्हारी संपदा आंख के अनुभव से बढ़ेगी। तुम्हारी संपदा दर्शन से बढ़ेगी। यह कैसी प्यास है? क्या यह पूरी हो सकती है? प्यास होती ही इसलिए है कि पूरी हो। प्यास के पहले प्यास की पूर्ति का साधन है। देखते नहीं, मां के पेट में बच्चा आता है, बच्चा पैदा हुआ कि मां की छाती दूध से भर जाती है। अभी बच्चा पैदा ही हुआ है, अभी बच्चे ने मांग भी नहीं की है कि मुझे भूख लगी है। बच्चे के आगमन के पहले दूध आ गया है।

चिड़ियां देखते हो घोंसला बनाती हैं, अभी अंडे रखे नहीं हैं, अभी अंडे आने वाले हैं। चिड़ियों को कुछ पता भी नहीं हो सकता, चिड़ियां कुछ बहुत सोच-विचार नहीं करतीं—और वैज्ञानिक बहुत चकित हुए हैं यह जानकर, देखकर निरीक्षण कर के कि बहुत से ऐसे पक्षी हैं जिनको जन्म के बाद मां-बाप का साथ ही नहीं मिलता, तो शिक्षण तो हो ही नहीं सकता—किसी ने उनको बताया नहीं कि जब अंडे तुम्हारे भीतर पकने लगें तो कैसे घोसला बनाना; कोई बताने वाला नहीं कोई विद्यालय नहीं, कोई उनके पास सर्टिफिकेट नहीं। लेकिन जब मादा अनुभव करती है कि गर्भवती है, जल्दी से घोंसला बनाने लगती है। बच्चों के लिए इंतजाम करना होगा। कुछ विचार

से नहीं हो रहा है यह, स्वभावतः हो रहा है। यह पक्षी नहीं कर रहा है, परमात्मा कर रहा है। इस तत्व को समझ लेने का नाम आस्था है। इस तत्व में निमज्जित हो जाने का नाम आस्था है कि जब प्यास है, तो जलस्रोत कहीं मौजूद होगा, तभी प्यास है; प्यास सबूत है इस बात का कि जलस्रोत होगा। नहीं तो प्यास होती ही नहीं।

इस जगत में कोई भी बात असंगत नहीं है। यहां एक बड़ी गहरी संगति है। तुम्हें दिखे, न दिखे; तुम समझ पाओ, न समझ पाओ; यह दूसरी बात, लेकिन इस जगत में एक बड़ी गहरी संगति है। सब जुड़ा है।

यह प्यास है तो जरूर पूरी होगी। जलस्रोत की दिशा में चलो। सच तो यह है कि प्यास परिपूर्ण हो जाए तो उस की परिपूर्णता में ही तृप्ति हो जाती है। प्यास का पूर्ण हो जाना ही जलस्रोत का आगमन है।

आग में जल, पर धुआं बनकर न लौ पर छा
प्यार है ज्वाला—इसे जी से लगाए जा
बेकली को कल समझ, अभिशाप को वरदान
है यही उत्सर्ग-व्याकुल प्राण की पहचान
जग समझ पाया न हंसमुख पत्थरों का मोल
किंतु फिर भी तू न अंतस की मिटन को खोल
दाह वह कैसा न जो परितप्त कर दे प्राण
वह तृषा कैसी न जिसमें सूख जाएं गान
प्यार कर लेकिन प्रणय की रागिनी मत गा
आग में जल, पर धुआं बन कर न लौ पर छा

प्यास पूर्ण हो जाए तो वही परितोष है, वही परितृप्ति है। दाह वह कैसा न जो परितप्त कर दे प्राण। इस प्यास में और आहुति डालो। इस प्यास में प्राणों को और समर्पित करो। ये प्यास तुम्हारे रोएं-रोएं को पकड़ ले। जिस दिन यह प्यास रोएं-रोएं को पकड़ लेगी और कण-कण में व्याप्त हो जाएगी, जिस दिन तुम प्यास की एक लपट हो जाओगे, उसी क्षण तृप्ति हो जाएगी। प्यास है तो तृप्ति निश्चित है।

तीसरा प्रश्नः यह मन-पंछी बहुत ऊंची उड़ानें भरता है लेकिन पहुंचता कहीं नहीं है। मैं अपने को वहीं पाता हूं जहां हूं। प्रभु, इस पर कुछ कहने की अनुकंपा करें।

मन यानी कल्पना। मन का सत्य से कभी कोई संबंध नहीं होता इसलिए मन उड़े कितना ही पहुंचेगा कहीं नहीं। तुम आंख बंद करके उड़ान भरो, कलकत्ता पहुंचो, कि वाशिंग्टन, कि मास्को कि पैकिंग, मगर रहोगे पूना में। जब भी आंख खोलोगे, पाओगे पूना में। तब चौंकना मत कि मैंने कितने मन से उड़ान भरी कि कलकत्ते पहुंच जाऊं और पहुंच भी गया था और कलकत्ते के रास्ते पर भी चलता था, और कलकत्ते के लोग चारों तरफ थे, और कलकत्ते की बास थी और यह हुआ क्या? इधर आंख खोलता हूं तो पाता हूं जहां का तहां हूं!

रात तुम सपने देखते हो, कहां-कहां नहीं पहुंच जाते हो, मन पंछी कितनी उड़ान नहीं भरता? पाताल से लेकर स्वर्ग तक की यात्राएं करते हो, लेकिन सुबह अपनी खाट पर। मन की उड़ानें कहीं ले जा नहीं सकतीं। मन पर भरोसा छोड़ो। मन के भरोसे ने ही भटकाया है। और मजा यह है कि अगर मन की उड़ानें छूट जाएं, अगर मन बिलकुल छूट जाए, मन से श्रद्धा टूट जाए कि यह कहीं ले जाता नहीं, यह सिर्फ आश्वासन देता है लेकिन कोई आश्वासन कभी पूरे नहीं करता—कौन से आश्वासन मन ने पूरे किए हैं? हर बार धोखा दिया है। लेकिन अजीब है तुम्हारा भरोसा इस मन में, धोखे पर धोखे दिए जाता है, फिर भी तुम भरोसा किए चले जाते हो! मन बड़ा कुशल है तुम्हें राजी कर लेने में। मन कहता है, कल नहीं हो पाया लेकिन आने वाले कल होगा। आज नहीं कर पाया, कोई बात नहीं, एक मौका और। और तुम आशा से भरे एक मौका और देते हो। ऐसे ही तुम मौके दिए चले जाते हो। और मन पंछी काफी उड़ानें भरता है। और इन्हीं उड़ानों में तुम्हारी जीवन-ऊर्जा व्यर्थ जा रही है।

ध्यान रखना, जब तुम स्वप्न देखते हो तब भी तुम्हारी जीवन-ऊर्जा व्यर्थ जा रही है। स्वप्न में भी जीवन-ऊर्जा नष्ट होती है। विचारों की तरंगों में भी जीवन-ऊर्जा नष्ट होती है। यही जीवन-ऊर्जा अगर कहीं न जाए, मन और विचार के छिद्रों से बाहर न जाए, तुम इस ऊर्जा को अपने भीतर ही सम्हाल लो—उस सम्हालने का नाम संयम है। जैसे कोई मटकी छेद वाली हो और पानी बाहर बहता रहे, रिसता रहे और खाली हो जाए, ऐसी तुम्हारी दशा है। यह मन छेद और छेद, सारे छेदों का नाम है। तुम्हारा भीतर का तत्व इससे रिसता रहता है, तुम खाली के खाली रह जाते हो। ये मन के छिद्रों को बंद कर दो, अछिद्र हो जाओ और तब तुम पाओगे, जिसे तुम पाने चले थे वह तुम्हारे भीतर है। खोओ भर मत परमात्मा को—परमात्मा को पाना नहीं है, खोओ भर मत, परमात्मा मिला हुआ है। और तब तुम चकित होओगे कि जहां मैं हूं, वहीं होना है; कहीं और जाना ही नहीं है। जिस आकाश को तुम खोजते थे, वहीं तुम हो। मन ने तुम्हें भरमाया और भटकाया। मन तुम्हें अपने से दूर ले गया। मन तुम्हें स्वयं की सत्ता से तोड़ता रहा।

मन का मतलब ही यह होता है—जहां तुम हो, वहां नहीं होने देता। समझो तुम यहां बैठे मुझे सुन रहे हो, लेकिन मन हो सकता है बाजार में पहुंच गया हो, दुकान पर बैठ गया हो, कामधंधा शुरू कर दिया हो, तुम यहां बैठे हो और मन यहां नहीं है। तुम जहां होते हो मन वहां से भाग जाता है। यही मन की जो सतत भ्रमणा है, यही भ्रमणा छूट जाए, तुम जहां हो वहीं पूरे के पूरे हो जाओ समग्रता में, तो क्या पाने को है? तुम परमात्मा में विराजमान हो। तुम वहां से कभी क्षणभर को भी हटे नहीं हो। इंचभर को भी तुम्हारे बीच और परमात्मा के बीच कभी फासला नहीं हुआ, सिर्फ मन तुम्हें दूर-दूर भटकाया है, दूर-दूर दौड़ाया है। और मजा यह है कि दौड़ाता है, पहुंचाता कहीं भी नहीं।

तुम कहते हो—यह मन पंछी बहुत ऊंची उड़ानें भरता है। ऊंची भरे कि नीची, इसकी उड़ान में कुछ भी सार नहीं है, सब कल्पनाजाल है। लेकिन पहुंचता कहीं नहीं

है। ठीक समझ में आई बात तुम्हें। तो अब इस मन पंछी को और ज्यादा सहायता मत दो, अब और न उड़ाओ ये पतंगें, ये कागज की नावें और न चलाओ, ये झूठे दीए और न जलाओ, ये ताश के घर और न बनाओ, अब मन को विदा दे दो, अलविदा दे दो, हाथ जोड़कर नमस्कार कर लो, आखिरी जयरामजी कर लो, और जैसे हो वैसे ही रह जाओ—अन्यथा होने की कोई जरूरत भी नहीं है; जो हो, वही ठीक है; जहां हो वहीं ठीक हो—जैसे ही तुम राजी हो जाओगे जो हो उससे; जैसे हो, उससे; जहां हो, उससे; तुम्हारे जीवन में संतोष की वर्षा हो जाएगी। मेघ बरस जाएंगे आनंद के।

चौथा प्रश्नः मैं समाधि चाहता हूं और शीघ्र। यह शीघ्रता भयंकर तनाव बनी जा रही है। मैं क्या करूं?

एक तो समाधि या संबोधि चाही नहीं जा सकती। जो चाहा जा सकता है, वह संसार है। जो नहीं चाहा जा सकता, वही परमात्मा है, वही समाधि है। चाह और समाधि का कोई संबंध कभी नहीं होता, उन का मिलन कभी नहीं होता। चाह का मतलब ही है कि तुम जो नहीं हो, वह और समाधि का अर्थ है, तुम जो हो, वह।

जो हो, उसको क्या चाहोगे, कैसे चाहोगे? कोई स्त्री पुरुष होना चाह सकती है, लेकिन कोई स्त्री स्त्री कैसे होना चाहेगी? है ही। तुम जो हो, उसे कैसे चाहोगे? चाहने का प्रयोजन क्या है? चाहना सदा उसका होता है जो तुम नहीं हो। और जो तुम नहीं हो, वह तुम कभी नहीं हो सकते।

इसलिए चाहना दुख में ले जाता है, असफलता में ले जाता है, विषाद में ले जाता है; हर चाह टूटती है, खंडित होती है; हर चाह के बाद तुम मुंह के बल जमीन पर गिरते हो, धूल भरी रह जाती है तुम्हारे मुंह में; हर चाह विफलता लाती है; हर चाह हताशा लाती है; चाह से कभी कोई उपलब्धि नहीं होती। हो नहीं सकती। क्योंकि चाह का मौलिक अर्थ है, वही होने की कोशिश जो तुम नहीं हो—वह तुम हो नहीं सकते। आम आम होगा, नीम नीम होगी।

अब चाह का अर्थ होता है, नीम आम होना चाहे। नीम इस तरह की भूल करती नहीं, इसलिए नीम परेशान नहीं है। नहीं तो नीम की भी नींद खो जाए और नीम भी विक्षिप्त हो और पागलखाने में पड़ी हो और घबड़ाहट में जहर पी ले, आत्मघात कर ले। लेकिन कोई नीम इस चिंता में ही नहीं है। नीम पूरे मजे में है। अपनी निबौरियों के साथ पूरी राजी है। न आम को फिक्र है कुछ और होने की। न गुलाब कमल होना चाहता है, न कमल गुलाब होना चाहता है। घास का फूल भी फिक्र नहीं करता, दो कौड़ी फिक्र नहीं करता गुलाब होने की। घास का फूल सिर्फ घास होना चाहता है। आदमी को छोड़कर इस सारी प्रकृति में किसी को कुछ और होने की चिंता नहीं है। इसलिए प्रकृति में ऐसी शांति है। ऐसा अपूर्व सुख छाया है।

हिमालय पर जाते हो, तुम्हें जो शांति दिखाई पड़ती है, वह किस बात की शांति है? वह इसी बात की शांति है कि वहां कोई चाह नहीं। पहाड़ पहाड़ हैं, वृक्ष

वृक्ष हैं, झरने झरने हैं, नदियां नदियां हैं, वहां कोई चाह नहीं, अचाह व्याप्त है। उसी अचाह के कारण तुम भी थोड़ी देर के लिए बड़े सन्नाटे में भर जाते हो। बंबई जाते हो, चारों तरफ शोरगुल है चाह का, तन जाते हो, खिंच जाते हो, परेशान हो जाते हो; दिनभर के बाद बंबई से घर लौटते हो, राहत मिलती है। चाह का बाजार है।

जहां-जहां आदमी की दुनिया है, वहां-वहां चाह का शोरगुल है। जहां-जहां परमात्मा की दुनिया है, वहां-वहां अचाह का संगीत है। वृक्षों के पास बैठो, वृक्षों से कुछ सीखो, एक ही बात समझ में आएगी वृक्षों के पास कि हर वृक्ष जैसा है वैसा होने से राजी है। उसमें कभी भी प्रतिस्पर्धा नहीं है। यही सूत्र है।

समाधि तो फल सकती है, अभी, इसी क्षण, मगर तुम्हीं बाधा हो। तुम कह रहे हो, मैं संबोधि, समाधि चाहता हूं, और शीघ्र। एक तो चाह में ही भूल हो गई, चाह में ही जहर घोल दिया तुम ने अपने प्राणों में, और फिर दूसरा जहर और ला रहे हो—शीघ्र; धीरज भी नहीं है, धैर्य भी नहीं है। यह करेला हुआ नीम चढ़ा। ऐसे ही कड़वा था और नीम पर चढ़ा दिया। यह दोहरी बात हो गई। यह बीमारी व्यर्थ तुम ने बढ़ा ली। शीघ्रता से कभी कोई संबोधि को या समाधि को उपलब्ध हुआ है? वहां तो वे ही पहुंचते हैं, जो अनंत प्रतीक्षा करने को राजी हैं। जो कहते हैं, आज तो आज, कल तो कल, परसों तो परसों, इस जन्म में तो इस जन्म में, अगले जन्म में तो अगले जन्म में—और अगर कभी नहीं तो कभी नहीं। जो इतनी हिम्मत रखते हैं कि कभी नहीं तो कभी नहीं; ऐसी जिनकी विश्रांति है, ऐसे जो तनाव-रहित हैं, ऐसा जहां धैर्य का झरना बह रहा है, वहां समाधि अभी है और यहीं है, इसी वक्त घट जाएगी।

तुम्हें मेरी बात समझ में न आती हो तो कर के देख लो। मगर खयाल रखना, भूल में मत पड़ना, यह मत सोचना कि चलो अगर तेजी से इस ढंग से घटती है, अगर यह ढंग है तेजी से घटाने का, तो यही कर लेंगे। तो चूक जाओगे; क्योंकि यह ढंग नहीं है। यह तेजी से घटाने का ढंग नहीं है। तेजी से तो घटाने की बात ही बाधा है।

तो एक तो चाह और शीघ्र, स्वभावतः शीघ्रता तनाव बनी जा रही है, बन ही जाएगी पागल कर देगी तुम्हें। अगर यही पागलपन चाहिए तो धन के पीछे दौड़ो, ध्यान के पीछे नहीं, क्योंकि धन और पागलपन का थोड़ा संबंध है। पागलपन से दौड़ोगे तो मिल जाएगा। अगर बिलकुल सिर देकर पड़ ही गए पीछे, तो मिल जाएगा। दूसरे पागल भी लगे हैं, अगर तुम्हारा पागलपन उन से ज्यादा हुआ तो मिल ही जाएगा। दूसरे भी दौड़ रहे हैं, लेकिन अगर तुम धुआंधार पीछे पड़ गए, तो धन मिल जाएगा। हालांकि धन से कुछ मिलता नहीं, लेकिन इतनी तो राहत होगी कि जिसको चाहा था उस को पा लिया।

सिकंदर जरूर बड़ा पागल रहा होगा, नहीं तो दुनिया जीतना मुश्किल मामला है! तुम्हारी राजधानियों में पागलों का जमाव है। जो पागल हैं, वह सब वहां पहुंच जाते हैं। मेरा वश चले तो सब राजधानियों पर बड़ी दीवाल उठवा कर जो उनके भीतर हैं उनको बाहर निकलने का मौका न दूं, उनको भीतर ही रखूं—दुनिया में शांति हो जाए। एक बार जो एम. पी. हो जाए, एक बार जो मिनिस्टर हो जाए, उसे फिर

राजधानी से बाहर न निकलने दूं। फिर चाहे वह भूतपूर्व हो, या कुछ भी हो, राजधानी से बाहर न निकलने दूं। उस पर रुकावट डाल दूं। ये जहर लेकर फिर सारे देश में घूमते हैं, सारी दुनिया में घूमते हैं, ये दूसरों में भी जहर पैदा करवाते हैं। ये पागल लोग हैं, ये पागलों की जमात है।

मगर अगर तुम्हें शीघ्रता चाहिए और चाह का रस है, तो धन और पद के पीछे दौड़ो; क्योंकि उनसे चाह का तर्क तालमेल खाता है। तुम ध्यान के पीछे दौड़ रहे हो! ध्यान तो उन को मिलता है जो बैठ जाते हैं, दौड़ते नहीं। ध्यान कोई दिल्ली थोड़े ही है, दिल्ली चलो! ध्यान के लिए कहीं जाने की जरूरत नहीं है, यहीं आंख बंद करो, यहीं हल्के-फुल्के होकर बैठ जाओ, यहीं राजी हो जाओ अपने से, यहीं स्वीकार कर लो जैसा है, जो है, इंचभर भी विरोध न रखो, सहज भाव से जीने लगो, अपने आप घट जाएगी समाधि। तुम्हें उसका हिसाब रखने की भी जरूरत नहीं है। अपने आप दिन निकल आएगा; अपने आप रात कट जाएगी। फिर तुम करोगे भी क्या? जब सूरज निकलेगा तभी निकलेगा न! तुम्हारे शोरगुल मचाने से, दंड-बैठक लगाने से, प्राणायाम साधने से सूरज निकलने वाला नहीं है। सूरज जब निकलेगा तब निकलेगा। तुम मजे से सो रहो, जितनी देर नहीं निकला है इतनी देर विश्राम कर लो, जब निकलेगा तो फिर कामधाम के दिन आएंगे। तुम कहते हो समाधि चाहिए, जिनको समाधि मिल गई उनसे तो पूछो! जब समाधि मिल जाती है तो फिर बांटो उसे! जाग गए, अब जगाओ औरों को! हजार झंझटें आती हैं, मेरी मानो! जब तक नहीं मिली तब तक शांति से विश्राम कर लो थोड़ी देर और, भगवान को धन्यवाद दो।

दिन निकलने दे
जरा सा दिन निकलने दे!

रास्ते आधे-अधूरे से
दिख रहे जो तानपूरे से
तार में सरगम सम्हलने दे
थम, जरा सा दिन निकलने दे!

राग जब आकार पाएगा
स्याह घेरा टूट जाएगा
खून, स्याही में उबलने दे
थम, जरा सा दिन निकलने दे!

उंगलियां खुद तार को छूकर
व्योम को ले आएंगी भू पर
घाटियों को आंख मलने दे
थम, जरा सा दिन निकलने दे!

जल्दी न करो, दिन अपने से करीब आ रहा है। सुबह अपने से होती है। आदमी के किए कुछ भी नहीं होता। करने वाला कर रहा है। जब रात हो तो सो रहो, और जब दिन हो तो काम में लग जाओ। जब समाधि मिलेगी, तो बांटना पड़ेगा—बड़ा काम आ जाएगा सिर पर! जब तक समाधि नहीं मिली, तब तक भगवान को धन्यवाद दो, चादर ओढ़कर सो रहो; विश्राम कर लो, समाधि के लिए तैयार कर लो अपने को, समाधि के लिए शक्ति जुटा लो कि जब मिले समाधि, तो तुम बांट सको।

अब यह मजा है। जिनको समाधि नहीं मिली, वे भी दौड़ते हैं—वे दौड़ते हैं पाने के लिए। और जिनको समाधि मिली, वे भी दौड़ते हैं—वे दौड़ते हैं बांटने के लिए। महावीर को समाधि मिली, फिर बयालीस साल तक दौड़ते रहे, एक गांव से दूसरे गांव। बुद्ध को समाधि मिली, फिर चालीस साल तक सुबह से सांझ तक समझाते रहे लोगों को। जगत का क्रिया-कलाप चलता ही रहता है। अज्ञानी भी क्रिया में होता है, ज्ञानी भी क्रिया में होता है। फर्क इतना ही होता है, अज्ञानी पाने की क्रिया में होता है, ज्ञानी देने की क्रिया में होता है। फर्क बड़ा है। लेकिन ज्ञान की घटना तभी घटती है जब तुम उसकी अपेक्षा भी नहीं कर रहे थे। जब तुम सोच भी नहीं रहे थे कि अब घटेगी। आकस्मिक घटती है। अनायास घटती है। एक दिन अचानक तुम पाते हो कि तुम्हें किसी ताजी हवा ने घेर लिया, कोई सूरज उगा कोई किरण उतरी, कोई गीत बजने लगा, कोई तार छिड़ गया।

उंगलियां खुद तार को छूकर
व्योम को ले आएंगी भू पर
घाटियों को आंख मलने दे
थम, जरा सा दिन निकलने दे!

संबोधि को चाहो मत, समाधि को चाहो मत। चाह बाधा है। फिर शीघ्रता तो भूलकर मत करना। समाधि कोई मौसमी फूल का पौधा नहीं है कि अभी बोया और दो-चार-आठ दिन में अंकुर निकल आए और दो-तीन सप्ताह में फूल आ गए—मगर पांच-छह सप्ताह में गए भी! आए भी और गए भी; पीछे कुछ न बचा। समाधि तो विराट वृक्ष है। समय लेगा, धीरज मांगेगा, प्रतीक्षा चाहेगा, धीरे-धीरे बढ़ेगा; तभी तो चांद-तारों से बात हो सकेगी, तभी तो हवाओं से मुलाकात हो सकेगी, तभी तो आकाश में फैलकर खड़ा हो सकेगा। समाधि है पृथ्वी का आकाश से मिलन। यह बड़ी घटना है। इससे बड़ी और कोई घटना नहीं है। यह घटना इतनी बड़ी है कि तुम्हारी छोटी सी चाह में नहीं समा सकती। चाह तो चम्मच जैसी है और यह घटना सागर जैसी है।

मैंने सुना है, अरस्तु एक दिन सागर के किनारे टहलने गया और उसने देखा एक पागल आदमी—पागल ही होगा, अन्यथा ऐसा काम क्यों करता—एक गड्ढा खोद लिया है रेत में और एक चम्मच लिए हुए है; दौड़कर जाता है, सागर से चम्मच भरता है, आकर गड्ढे में डालता है, फिर भागता है, फिर चम्मच भरता है, फिर गड्ढे में

डालता है। अरस्तु घूमता रहा, घूमता रहा, फिर उसकी जिज्ञासा बढ़ी, फिर उसे अपने को रोकना संभव नहीं हुआ—सज्जन आदमी था, एकदम से किसी के काम में बाधा नहीं डालना चाहता था, किसी से पूछना भी तो ठीक नहीं, अपरिचित आदमी से, यह भी तो एक तरह का दूसरे की सीमा का अतिक्रमण है। मगर फिर बात बहुत बढ़ गई, उसकी भागदौड़, इतनी जिज्ञासा भर गई कि यह मामला क्या है, यह कर क्या रहा है, पूछा कि मेरे भाई, करते क्या हो? उसने कहा, क्या करता हूं, सागर को उलीच कर रहूंगा! इस गड्ढे में न भर दिया तो मेरा नाम नहीं! अरस्तु ने कहा कि मैं तो कोई बीच में आने वाला नहीं हूं, मैं कौन हूं, जो बीच में कुछ कहूं, लेकिन यह बात बड़े पागलपन की है यह चम्मच से तू इतना बड़ा विराट सागर खाली कर लेगा! जन्म-जन्म लग जाएंगे फिर भी न होगा, सदियां बीत जाएंगी फिर भी न होगा! और इस छोटे से गड्ढे में भर लेगा? और वह आदमी खिलखिलाकर हंसने लगा, और उसने कहा कि तुम क्या सोचते हो, तुम कुछ अन्य कर रहे हो, तुम कुछ भिन्न कर रहे हो? तुम इस छोटी सी खोपड़ी में परमात्मा को समाना चाहते हो? अरस्तू बड़ा विचारक था। तुम इस छोटी सी खोपड़ी में अगर परमात्मा को समा लोगे, तो मेरा यह गड्ढा तुम्हारी खोपड़ी से बड़ा है और सागर परमात्मा से छोटा है; पागल कौन है?

अरस्तू ने इस घटना का उल्लेख किया है और उसने लिखा है कि उस दिन मुझे पता चला कि पागल मैं ही हूं। उस पागल ने मुझ पर बड़ी कृपा की। वह कौन आदमी रहा होगा? वह आदमी जरूर एक पहुंचा हुआ फकीर रहा होगा, समाधिस्थ रहा होगा, वह सिर्फ अरस्तू को जगाने के लिए, अरस्तू को चेताने के लिए उस उपक्रम को किया था।

नहीं, तुम्हारी चाह तो छोटी है—चाय की चम्मच—इस चाह से तुम समाधि को नहीं पा सकोगे। चाह को जाने दो। और फ़िर जल्दीबाजी मचा रहे हो! जल्दबाजी में तो चम्मच में थोड़ा-बहुत पानी आया, वह भी गिर जाएगा—अगर ज्यादा भागदौड़ की तो, और ज्यादा जल्दबाजी की। तुमने देखा न, कभी कभी जल्दबाजी में यह हो जाता है, ऊपर की बटन नीचे लग जाती है, नीचे की बटन ऊपर लग जाती है; सूटकेस में सामान रखना था वह बाहर ही रहा जाता है, सूटकेस बंद कर दिया, फिर उसको खोला तो चाबी नहीं चलती, कि चाबी अटक जाती है। तुमने जल्दबाजी में देखा, स्टेशन पहुंच गए और टिकट घर ही रह गई। और बड़ी जल्दी की!

जितनी जल्दबाजी करते हो, उतने ही अशांत हो जाते हो। जितने अशांत हो जाते हो, उतनी संभावना कम है समाधि की। शांत हो रहो। और शांत होने की कला है अचाह से भर जाना। चाहो ही मत, मांगो ही मत; कहो कि जो जब होना है, होगा, हम प्रतीक्षा करेंगे। जल्दी भी क्या है? समय अनंत है।

पांचवां प्रश्नः आप कहते हैं कि दो ही मार्ग हैं—भक्ति और ज्ञान। लेकिन आप न तो भक्ति सिखवाते हैं और न ज्ञान, आप तो ध्यान सिखवाते हैं। तो क्या ध्यान भक्ति और ज्ञान से भी परे हैं?

ध्यान ज्ञान और भक्ति का सार है। ध्यान निचोड़ है दोनों का। जिसको भक्ति प्रीति कहता है, जिसको ज्ञानी बोध कहता है, ध्यान बोध और प्रीति का निचोड़ है। ऐसा समझो कि कुछ फूल भक्ति के और कुछ फूल ज्ञान के और दोनों को निचोड़कर तुम ने एक इत्र बनाया, वही है ध्यान। ध्यान भक्त की भक्ति है, ज्ञानी का बोध है। ध्यान का एक पंख भक्ति है और एक पंख ज्ञान है।

ध्यान सार है। भक्ति से पाओ तो भी ध्यान मिलेगा और ज्ञान से पाओ तो भी ध्यान मिलेगा। अंतिम अर्थों में जो संपदा तुम्हारे हाथ में लगेगी, उसका नाम ध्यान है।

समझो।

भक्ति का अर्थ होता है, भक्त खो जाता है, भगवान बचता है। ज्ञान का अर्थ होता है, भगवान खो जाता है, ज्ञानी बचता है, आत्मा बचती है। इसलिए महावीर और बुद्ध जो ज्ञान के परम शिखर हैं, उन्होंने परमात्मा को स्वीकार नहीं किया। कह दिया कि परमात्मा नहीं है। यह ज्ञान की उदघोषणा है। दूसरा नहीं बचता, एक आत्मभाव बचता है, आत्मा बचती है। शांडिल्य और नारद दूसरी ही घोषणा करते हैं, वे कहते हैं, भगवान बचता है, भक्त नहीं बचता; भक्त तो भगवान में लीन हो जाता है। यह भक्त के कहने का ढंग है। भक्त अपने को समाप्त कर देता है। लेकिन अगर दोनों पर गौर करो तो दोनों की सार बात एक है कि दो नहीं बचते, एक बचता है—वही ध्यान है। फिर जो एक बचता है, उसको भगवान कहो कि आत्मा कहो कि निर्वाण कहो, क्या फर्क पड़ता है, ये सब कामचलाऊ नाम हैं। तुम्हारी जो मर्जी, तुम्हारा जो लगाव, जैसी तुम्हारी रुचि, वही कहो।

भक्त की रुचि है कि वह कहता है—भगवान बचता है; अब मैं कहां, तू ही है। और ज्ञानी की रुचि है कि अब तू कहां, मैं ही हूं—अहं ब्रह्मास्मि, अनलहक। ये कहने के ढंग हैं। दोनों एक ही बात कह रहे हैं कि दो नहीं रहे अब, एक बचा है। अब एक को कैसे कहें, हमारी भाषा में हर चीज दो है, तो दो में से कोई एक चुनना पड़ेगा। कहने के लिए एक शब्द का उपयोग करना पड़ेगा, एक शब्द छोड़ना पड़ेगा। अपनी-अपनी मौज। कोई मैं को छोड़ देता है, कोई तू को छोड़ देता है।

इसलिए मैं ध्यान सिखाता हूं। ध्यान का अर्थ है—मैं तुम्हें सार सिखाता हूं। सारे धर्मों का सार ध्यान है। सारे धर्म ध्यान को कहने के अलग-अलग ढंग हैं। सारे धर्म ध्यान को पाने के अलग-अलग मार्ग हैं। भक्ति की यात्रा अलग है और ज्ञानी की यात्रा अलग है, लेकिन मंजिल एक है, वही मंजिल ध्यान है।

ध्यान का क्या अर्थ हुआ?

ध्यान का अर्थ हुआ—न तो भक्त बचा, न भगवान; न मैं, न तू; सिर्फ बोध बचा, सिर्फ प्रीति बची, गुण बचा, भगवत्ता बची—न भगवान, न भक्त। इसलिए मैं ध्यान सिखाता हूं। फिर जो ध्यान सीधा नहीं सीख पाते, उनको या तो मैं भक्ति सिखाता हूं, या ज्ञान सिखाता हूं। मेरे मंदिर में सारे धर्मों के द्वार हैं। यह मंदिर किसी एक धर्म का मंदिर नहीं है। यह धर्म का मंदिर है, किसी धर्म का नहीं। इसमें तुम जिस हैसियत से आना चाहो, स्वीकार हो। तुम जिस मार्ग से इसे पाना चाहो, स्वीकार हो।

तुम जिस भाषा का उपयोग करना चाहो, स्वीकार हो। और अगर तुम्हारे पास इतनी प्रतिभा है कि तुम सारे मार्गों का निचोड़ इत्र पकड़ सकते हो सीधा-सीधा, तो ध्यान पकड़ लो। अगर ध्यान दूर की बात मालूम पड़े, तुम्हारी पकड़ में न आती हो, तो फिर भक्ति या ज्ञान।

छठवां प्रश्नः मैं संन्यास लेना चाहता हूं। क्या मैं पात्र हूं और क्या वह शुभ मुहूर्त आ गया है?

संन्यास लेना मत चाहो। तुम्हारा लिया संन्यास बहुत दूर तक नहीं जाएगा। संन्यास को घटने दो, घटाओ मत। अगर संन्यास के भाव ने तुम्हें पकड़ लिया है, तो चल पड़ो, अब सोचो मत। सोचकर निर्णय मत लो संन्यास का। सोच-विचार कर तुम संन्यास लोगे, वह तुम्हारी बुद्धि की निष्पत्ति होगी। और फिर तुम्हारी बुद्धि के पार न ले जाएगी, और पार ही जाना है। पागल की तरह चल पड़ो, प्रेमी की तरह चल पड़ो। हिसाब-किताब न बिठाओ। अब क्या तुम भी पूछते हो! क्या शुभ मुहूर्त आ गया है? क्या किसी ज्योतिषी से पूछोगे जाकर? किसी हस्त रेखाविद को हाथ दिखाओगे?

ऐसा हो जाता है। एक दफा माउंट आबू में एक सज्जन मेरे पास आए, हाथ मेरे आगे कर दिया और कहा—आप देखकर तो बताइए कि संन्यास है भी मेरे हाथ में कि नहीं? हो तो मैं ले लूं। हाथ पर तुम्हें भरोसा है, हृदय की फिकर नहीं है! हाथ की लकीरों में क्या रखा है? युद्ध के मैदान पर हजारों लोग एक दिन में मर जाते हैं, क्या तुम सोचते हो सब की लकीरें उसी दिन मृत्यु की सूचना देती थीं? हवाई जहाज गिरता है और डेढ़ सौ आदमी एक साथ मर जाते हैं, उनके हाथ तो देखो! सबके अलग-अलग।

हाथ की रेखाएं! तुम होश में हो? लेकिन आदमी इसी तरह के जाल में पड़ा रहा है। प्रेम की न सुनेगा, ज्योतिषी से पूछेगा कि इस स्त्री से विवाह करूं कि नहीं। यह ज्योतिषी कौन है? और ज्योतिष के आधार पर कहीं प्रेम घटा है? यह तो बड़ी अजीब बात हुई! लेकिन हम इसी तरह जीवन जी रहे हैं। हम अंतर की आवाज नहीं सुनते। हम बाहर से प्रमाण चाहते हैं। तुम पूछते हो—मैं संन्यास लेना चाहता हूं। फिर रुके क्यों हो? फिर कौन रोक रहा है? फिर कौन तुम्हें पकड़कर पीछे खींच रहा है? तुम्हारी बुद्धि कह रही है, पहले सोच-विचार तो कर लो; अभी शुभ महूरत आ गया? पीछे झंझट में तो न पड़ोगे? पात्र भी हो कि नहीं? पहले सुपात्र तो हो जाओ। बुद्धि बड़ी चालबाज है। बुद्धि ऐसे-ऐसे तर्क देती है कि जो बिलकुल ठीक मालूम पड़ते हैं।

अब यह तर्क, बुद्धि कहेगी—पहले सुपात्र तो हो जाओ। अब बड़ी मुसीबत हो गई? सुपात्र का मतलब क्या होगा? सुपात्र का मतलब, पहले बुद्ध हो जाओ, महावीर हो जाओ। फिर संन्यास लोगे? फिर संन्यास किसलिए लोगे? और जब तक बुद्ध नहीं हुए, तब तक सुपात्र कहां? यह तो ऐसा ही हुआ कि किसी चिकित्सक के पास गए और उसने कहा कि हट भाग यहां से, पहले बीमारी तो ठीक करके आ, फिर हम औषधि देंगे, ऐसे हम कुपात्र में औषधि नहीं डालते; न मालूम कितनी बीमारियां

लिए चला आ रहा है! रक्त-चाप बढ़ा हुआ है, हृदय की चाल गड़बड़ है, नब्ज ठिकाने नहीं है, पेट खराब है, खून विषाक्त है, ऐसे आदमी में हम अपनी शुद्ध दवा नहीं डालते। तू पहले यह सब ठीक करके आ। लेकिन फिर तुम आओगे किसलिए?

संन्यास औषधि है। संन्यास चिकित्सा है। मैं वैद्य हूं। तुम स्वस्थ हो जाओगे तो फिर तो दवा की कोई जरूरत न रहेगी। तुम अपात्र हो, इसीलिए तो जरूरत है। अब बुद्धि बड़े हिसाब की बातें करती है और ऐसी बातें करती है जो कि जंचती भी हैं। बुद्धि कहती है—पहले पात्र तो हो जाओ! अब यह मामला इतना बड़ा है कि पात्र होने में अगर लगे, तो जन्म-जन्म बीत जाएंगे और तुम पात्र न हो पाओगे। कुछ न कुछ कमी रह जाएगी। आदमी की सीमाएं हैं।

किसी मित्र को दो दिन पहले ध्यान करते समय अपूर्व अनुभव हुआ, आनंदमग्न हो गए। मगर फिर घबड़ा गए। फिर मुझे पत्र लिखा। और पत्र में लिखा कि पहले यह तो बताइए कि मुझ अपात्र को इतना बड़ा अनुभव हो ही कैसे सकता है? सिगरेट मैं पीता, पान मैं खाता, सिनेमा मैं जाता, कामिनी-कांचन में मेरा लगाव है, मुझे अपात्र को ये हो ही कैसे सकता है? अब हो गया तो भी मानते नहीं हैं। अभी बुद्धि यह तर्क निकाल रही है कि अपात्र को हो ही कैसे सकता है? जैसे कि परमात्मा तुम्हारी सिगरेट से डरेगा, कि यह आदमी सिगरेट पीता है, इसके पास नहीं आना है। तुम परमात्मा को डराने चले हो छोटी-मोटी बातों से? कि तुम सिनेमा जाते हो।

परमात्मा कब आ जाता है अकारण, कब तुम्हें भर देता है, कुछ कहा नहीं जा सकता; इसीलिए शांडिल्य कहते हैं—प्रसाद अपात्र से अपात्र में उतर आता है। बस एक ही बात चाहिए कि अपात्र स्वीकार करने को राजी हो, बस उतनी बात चाहिए द्वार-दरवाजे बंद मत कर लेना! जब सूरज की किरण सुबह आती है और तुम्हारे दरवाजे से प्रवेश करती है, तो वह यह नहीं कहती—पहले घर साफ बुहारो, शुद्ध करो, पानी छिड़को, इस धूल भरे घर में मैं नहीं आऊंगा; कपड़े-लत्ते धोओ, स्नान करो, फिर मैं निकलूंगा तुम्हारे लिए; अभी मैं उनके लिए निकला हूं जो स्नान कर चुके हैं; ब्रह्ममुहूर्त में उठे थे; तुम अपात्र अभी बिस्तर में पड़े हो। लेकिन तुम कभी बिस्तर में भी पड़े होते हो कंबल ओढ़े और सूरज की किरण आकर तुम्हें जगाने लगती है तुम्हारे कमरे में; ऐसा ही परमात्मा आता है।

तुम्हारी अपात्रता और तुम्हारी पात्रता, सब दो कौड़ी की हैं। तुम्हारी अपात्रता भी दो कौड़ी की है, तुम्हारी पात्रता भी दो कौड़ी की है। पात्रता में भी क्या करोगे? कोई आदमी धन के पीछे दीवाना है तो कहता है—मैं अपात्र। और वह धन छोड़ कर चला जाएगा जंगल में तो सोचेगा—पात्र। और धन में था ही क्या? तुम सोचते हो परमात्मा तुम्हारे सरकारी नोटों में भरोसा करता है? तुम भी नहीं करते, परमात्मा क्या खाक करेगा? तुम्हारे सरकारी नोटों का भरोसा क्या है, कब कैंसिल हो जाएं, कब कागज के टुकड़े हो जाएं! तुम सोचते हो तुम्हारे रिजर्व बैंक के गवर्नर के द्वारा जो प्रामीसरी नोट दिए जाते हैं, वह परमात्मा उन में भरोसा करता है? कि तुम्हारे पास दस लाख रुपए थे, तो तुम अपात्र; अब तुमने दस लाख के नोट छोड़ दिए, जंगल में

जाकर बैठ गए, तो तुम पात्र! तुमने छोड़ा क्या? पकड़ा क्या? कागज के नोट थे। कागज के नोटों से न तो कोई अपात्र होता है, न कोई पात्र होता है।

फिर आदमी की पात्रता मेरी दृष्टि में क्या है? एक ही कि आदमी अपना द्वार खोलने को राजी हो। आदमी विनम्र हो। और ध्यान रखना, इसे मैं दोहरा कर तुमसे कहना चाहता हूं कि जिनको तुम पात्र कहते हो, वे विनम्र नहीं होते, और वही उनकी गहरी से गहरी अपात्रता है। किसी ने उपवास कर लिया, वह पात्र हो जाता है। वह अकड़कर बैठ जाता है। किसी ने गरीब पत्नी को छोड़ दिया, अब पत्नी भूखों मरती है, परेशान होती है; कोई अपने बच्चों को छोड़कर चला गया, अब बच्चे अनाथ हो गए और भीख मांगने लगे; मगर यह अकड़कर बैठा है मंदिर में कि मैं मुनि हो गया; कि मैं त्यागी हूं, कि मैं व्रती हूं, कि देखो मैंने कितनी पात्रता अर्जित की है! यह अपराधी है, पात्र इत्यादि कुछ भी नहीं। इसने बच्चों को अनाथ कर दिया, इसने पत्नी को बाजार में खड़ा कर दिया, यह अपने छोटे-मोटे कर्तव्य भी नहीं निभा सका, इसको तुम पात्र कह रहे हो? वह सिर इत्यादि घुटाकर यहां बैठ गया है, इससे तुम सोचते हो कि परमात्मा इससे बड़े प्रसन्न हैं। कोई सिर घुटा लेने से परमात्मा का खास लगाव तुम में हो जाएगा?

यह क्या पात्रता है! लेकिन इस पात्रता का भाव पैदा हो गया, तो अहंकार मजबूत हो गया—यह और अपात्र हो गया। इससे तो तभी बेहतर था जब यह कहता था कि मैं अपात्र हूं, कभी-कभी शराब भी पी लेता हूं, और कभी-कभी किसी स्त्री के मोह में भी पड़ जाता हूं और कभी-कभी मन में क्रोध भी आ जाता है, मैं अपात्र हूं; मुझे कैसे परमात्मा मिलेगा, मैं अपात्र हूं। जिस दिन इसका ऐसा भाव था, मेरी दृष्टि में उस दिन यह ज्यादा पात्र था—कम से कम निर-अहंकारिता थी; दंभ नहीं था, अकड़ नहीं थी, यह झुक सकता था।

एक ही पात्रता है मेरी दृष्टि में—झुकने की क्षमता, ग्रहण करने की क्षमता, द्वार खोलने के लिए राजीपन। तुम अगर द्वार खोलने को तैयार हो हृदय के, तो आ गया मुहूर्त, आ गया शुभ दिन। अब सोचते मत रहो। अब पूछना किससे है? जिस बुद्धि से तुम पूछ रहे हो, वह बुद्धि तो बाधाएं खड़ी करेगी। बुद्धि तो कहेगी—कहां की झंझट में पड़ते हो; संन्यास ले लोगे, मुसीबतें आएंगी; दफ्तर में लोग हंसेंगे, गांव के लोग पागल समझेंगे।

एक जैन महिला ने मुझे आकर कहा कि मेरे पति आपका संन्यास ले लिए हैं। अगर उनको संन्यासी ही होना है, तो वह असली संन्यासी हो जाएं। असली! मैंने कहा—तेरा मतलब? उसने कहा—तो जैन-मुनि हो जाएं। हम भूखे मर लेंगे, मगर कम से कम कोई उनको पागल तो न समझेगा। अभी तो लोग उन्हें पागल समझने लगे हैं। हमारे बच्चे स्कूल जाते हैं तो लोग कहते हैं—तुम्हारे पिता जी को क्या हो गया? मैं स्त्रियों से मिलने में डरने लगी हूं, उनकी पत्नी ने कहा, क्योंकि जो मुझे देखता है, वे कहते हैं तुम्हारे पति को क्या हो गया? ये गैरिक वस्त्र क्यों पहन लिए हैं? यह माला क्यों लटका ली है? यह कैसा संन्यास?

पत्नी मुझसे कह रही थी कि अगर वे जैन-मुनि हो जाएं—हमें मुसीबतें होंगी बहुत क्योंकि वह छोड़ कर चले जाएंगे—लेकिन हम सम्हाल लेंगे, मैं बच्चों की देखभाल कर लूंगी, मगर वह कम से कम ऐसा संन्यास तो लें कि कोई हंसे न, कोई पागल न समझे। और जिस संन्यास में लोग हंसेंगे नहीं, पागल नहीं समझेंगे, समझ लेना वह तुम्हारी समाज-व्यवस्था का अंग है, इसलिए लोग नहीं हंसते।

महावीर पर लोग हंसे थे, जैन-मुनि पर नहीं हंसते। महावीर संन्यासी थे और जैन-मुनि संन्यासी नहीं है। बुद्ध पर लोग हंसे थे, जिस गांव में जाते थे उसी गावं में कोई आकर समझाता था कि आप भी यह क्या किए? इतना धन-दौलत, घर, आपका दिमाग खराब हो गया? अपना राज्य छोड़कर भाग गए, इस डर से कि इस राज्य के भीतर कहीं रुकूंगा तो पिता के आदमी आकर परेशान करेंगे, पड़ोस के राज्य में चले गए। पड़ोस के राजा को पता चला तो वह उनकी गुफा में दर्शन करने आया; उसने कहा कि तुम फिकर मत करो, अगर तुम्हारी पिता से नहीं बनती, या कोई झंझट हो गई है, तो मुझे तुम अपना पिता समझो, तुम्हारे पिता मेरे बचपन के मित्र हैं, हम साथ-साथ पढ़े और बड़े हुए, तम मेरे घर आ जाओ, मेरी बेटी से मैं तुम्हारा विवाह कर देता हूं, मेरी एक ही बेटी है, यह राज्य तुम्हारा; मगर यह क्या ढोंग रचा हुआ है!

बुद्ध को भी लोग यही कहने गए थे—यह क्या ढोंग रचा हुआ है? दिमाग तुम्हारा ठीक है? चलो बाप से नहीं बनती, हो सकता है, मेरे घर आ जाओ; यह राज्य भी तुम्हारा ही है, यह तुम्हारे राज्य से छोटा भी नहीं है, बड़ा है, तुम इसको सम्हाल लो, कोई चिंता न करो, मैं तुम्हारे पिता को सम्हाल लूंगा।

जब बुद्ध बुद्ध हो गए, ज्ञान को उपलब्ध हो गए और घर वापस आए तो भी बाप ने यही कहा कि तूने मुझे धोखा दिया, तू मेरे बुढ़ापे का एकमात्र बेटा, इकलौता बेटा, तू ही मेरे हाथ की लकड़ी, ये सब मैंने जिंदगी भर तेरे लिए किया, और तू छोड़कर भाग गया! बाप की आंखों में क्रोध की चिनगारी थी। बूढ़े बाप में बड़ा क्रोध था। और उन्होंने कहा कि मैं तुझे अभी भी माफ कर दूंगा, यह बाप का हृदय है। तूने ठीक नहीं किया, बहुत घाव पहुंचाया, बारह वर्ष तेरी प्रतीक्षा की है, चल तू लौट आया, कोई बात नहीं, भूल जाऊंगा बारह वर्ष तूने जो मेरे साथ किए और जो दुख दिए, मगर लौट आ, घर के भीतर चल, यह भिक्षा का पात्र फेंक, हमारे कुल में कभी कोई भिखारी नहीं हुआ, तू सम्राट का बेटा है; यह क्या तू हमारी मजाक उड़वा रहा है? लोग आते हैं और लोग कहते हैं—तुम्हारा बेटा भीख मांगता है। तू सोचता है मुझ पर क्या बीतती है? बारह साल से मैं सोया नहीं हूं। तूने मेरी उम्र कम कर दी है, मैं समय के पहले जीर्ण-जर्जर हो गया हूं।

बुद्ध सामने खड़े हैं और बाप यह कह रहे हैं! लेकिन अब बौद्ध भिक्षु को कोई यह नहीं कहता। अब बौद्ध भिक्षु परंपरा का हिस्सा हो गया है।

तुमसे मैं कहता हूं—यह जो संन्यास का द्वार मैंने खोला है, जब तक लोग इसे पागलपन समझेंगे तभी तक यह सार्थक है। जल्दी ही यह भी स्वीकृत हो जाएगा। जब यह स्वीकृत हो जाएगा, तब यह व्यर्थ हो जाएगा। तब तुम संन्यास मत लेना, तब

कोई फायदा नहीं होगा। तब तुम फिर किसी जीवित पागल को खोजना, जो तुम्हें फिर पागलपन में डाल दे। अभी मौका है। अभी लोग हंसेंगे, अभी लोग पागल समझेंगे, यही तो कसौटी है।

और फिर चूंकि मैं तुमसे घर छोड़ने को नहीं कहता, इसलिए मुसीबत और है। महावीर ने इतनी मुसीबत नहीं दी थी अपने लोगों को, जितनी मैं तुम्हें दे रहा हूं। बुद्ध ने इतनी मुसीबत नहीं दी थी। मैं तुम्हें एक बहुत ही बिबूचन की व्यवस्था में डाल रहा हूं। संन्यासी बना रहा हूं और घर से अलग नहीं कर रहा हूं। दुकान पर बैठोगे, गैरिक वस्त्रों में, बड़ी अड़चन होगी। गैरिक वस्त्रों में जंगल में बैठा जाता है! तब कोई अड़चन नहीं होता है। और दुकान पर बैठना हो तो गैरिक वस्त्रों में नहीं बैठा जाता है, तब कोई अड़चन नहीं होती है। मैं तुम्हारे जीवन में एक विरोधाभास पैदा कर रहा हूं। मैं तुमसे कह रहा हूं—जल में रहना और कमल की तरह रहना। गुलाब को इतनी अड़चन नहीं होती, वह जल में नहीं रहता, कमल को अड़चन होती है—पानी में और पानी न छूए। बाजार में रहना और बाजार न छूए। घर में रहना और घर न छूए। जमीन पर चलना और जमीन पर पैर न पड़ें। ऐसी कठिन कठिनाई तुम्हारे सामने खड़ी कर रहा हूं। लेकिन जितनी बड़ी चुनौती होती है, उतना ही बड़ा फल होता है।

तुम कहते—मैं संन्यास लेना चाहता हूं। फिर सोचो मत, फिर विचारो मत; कौन जाने हिम्मत का यह क्षण जो आज तुम्हारे द्वार आ गया है, कल रहे, न रहे; कल तुम कमजोर हो जाओ, कल आते-आते कायर हो जाओ; कल की कौन जानता है? और महूरत ज्योतिषियों से नहीं पूछे जाते। महूरत हृदय से पूछे जाते हैं।

पत्थर शब्दों में गढ़ मूरत
जिसमें दीखे जग की सूरत

सूरत जो तनाव वाली हो
चेतन हो, अलाव वाली हो
शुभ के लिए सजग है तो फिर
कागज में मत देख महूरत

तम से लड़ता हुआ सवेरा
'मैं' का खंडहर 'हम' का घेरा
तहखानों के राज खोलती
शैली जिसकी आज जरूरत
पत्थर शब्दों में गढ़ मूरत
कागज में मत देख महूरत

कागजी महूरत काम न आएंगे। ज्योतिषियों से पूछी गई बातें काम न आएंगी। तुम्हारा ज्योतिषी तुम्हारे भीतर, अंतसचेतन से पूछो, वहीं से जहां से यह लहर आई तुम्हारी भीतर कि अब संन्यास लूं। अथातो भक्तिजिज्ञासा। अब भक्ति की जिज्ञासा

करूं, अब खोजूं भगवान को, संसार बहुत खोजा, अब उसके लिए भी टटोलूं, तलाशूं, मौत करीब आती है, इसके पहले कुछ तो संपदा पास हो।

शुभ के लिए सजग है तो फिर
कागज में मत देख महूरत।

और जब भी शुभ भाव उठे, तो देर मत करना। महूरत देखने में भी देर हो जाएगी। तब तक हो सकता है शुभ की घड़ी आई और गई। जब अशुभ भाव आए, तो जितनी देर बन सके उतनी देर टालना। इसको तुम जीवन का सूत्र समझो। क्रोध उठे, तो कहना कल करेंगे, चौबीस घंटा सोचेंगे, जल्दी क्या है, क्रोध ही है, ऐसी कोई बड़ी बहुमूल्य चीज चूक नहीं जाएगी, चौबीस घंटे सोचकर करेंगे; और जब प्रेम आए तो अभी कर लेना, कल पर मत छोड़ना। दान देना हो तो अभी दे देना, चोरी करनी हो तो चौबीस घंटे सोच लेना। और तुम चकित होओगे, जिस चीज को सोचोगे चौबीस घंटे, वही नहीं होगी, और जिसको अभी कर लोगे, वही होगी। क्रोध लोग अभी कर रहे हैं, इसलिए क्रोध तो दुनिया में चलता है; और प्रेम कल पर टालते हैं, इसलिए प्रेम नहीं चलता। चोरी अभी करते हैं, दान कल पर छोड़ते हैं, इसलिए चोरी दुनिया में है और दान दुनिया में नहीं है। जो तुम अभी करते हो, वही होता है। जो तुम कहते हो कभी करेंगे, वह कभी नहीं होता। या तो अभी, या कभी नहीं।

शुभ के लिए सजग है तो फिर
कागज में मत देख महूरत।

और जिंदगी ऐसी ही बही जाती है, संन्यास ही जिंदगी में रंग लाता है। जिंदगी ऐसे ही बही जाती है, संन्यास ही जीवन में अर्थ लाता है। जिंदगी ऐसी वीणा है जिसको तुम ने छेड़ा नहीं। संन्यास वीणा को छेड़ता है, संगीत को जन्माता है। जीवन ऐसा अनगढ़ पत्थर है जिस पर तुमने छेनी नहीं उठाई, मूर्ति प्रकटे तो कैसे प्रकटे! संन्यास इस पत्थर के साथ संघर्ष है। इस पत्थर में जो-जो व्यर्थ है, वह छांटकर अलग कर देना है, और जो-जो सार्थक है, उसे प्रकट होने देना है। पत्थर ही तो मूर्ति बन जाता है, अनगढ़ पत्थर मूर्ति बन जाता है।

माइकल एंजेलो एक पत्थर वाले की दुकान के पास से गुजरता था, उसने दुकान के बाहर दूसरी तरफ, राह की दूसरी तरफ एक बड़ी संगमरमर की अनगढ़ चट्टान पड़ी देखी। वह अंदर गया और दुकान के मालिक से उसने कहा कि वह चट्टान मैं खरीद लेना चाहता हूं। मालिक ने कहा वह चट्टान बेचने का सवाल ही नहीं है, तुम ऐसे ही ले जाओ, क्योंकि वर्षों हो गए, वह बिकती ही नहीं है। हमने उसे इसीलिए सड़क के उस तरफ डाल दिया है कि जिसकी मर्जी हो, ले जाए। दुकान में जगह भी नहीं है। वह चट्टान बड़ी अनगढ़ है, उसका तुम करोगे क्या? माइकल एंजेलो ने कहा—वह मैं फिर समझ लूंगा, हम ले जाते हैं। दुकानदार ने कहा—धन्यवाद तुम्हारा, क्योंकि वह चट्टान नाहक जगह घेरे है, उसकी जगह हम कुछ और सामान रख सकेंगे।

वर्षों बाद माइकल एंजेलो ने उस दुकानदार को अपने घर निमंत्रण दिया,

भोजन पर बुलाया और कहा कि एक मूर्ति मेरी बनकर तैयार हुई है, देख लो। वह उस मूर्ति को देखने गया, ऐसी मूर्ति उसने देखी नहीं थी। ऐसी मूर्ति पृथ्वी पर दूसरी है भी नहीं। मरियम की गोद में सूली से उतारे गए जीसस की मूर्ति है। अभी-अभी सूली से उतरे हैं, अभी-अभी खून टपकता है, अभी खून गर्म है, जीसस की लाश उनकी मां मरियम के हाथों में है, इस मूर्ति को उसने खोदा है। अवाक खड़ा रह गया दुकानदार। उसने बहुत मूर्तियां देखी थीं बनते, जीवनभर संगमरमर का ही काम किया था, ऐसी मूर्ति नहीं देखी थी, उसने कहा—यह पत्थर तुमने कहां से पाया? यह पत्थर बहुमूल्य है। ऐसा पत्थर मैंने नहीं देखा। माइकल एंजेलो हंसा, उसने कहा यह वही पत्थर है जो तुमने सड़क के दूसरी तरफ फेंक दिया था और जिसे मैं मुफ्त उठा लाया था।

दुकानदार तो मान ही न सका कि यह वही पत्थर है! इससे ऐसी मूर्ति प्रकटी। तुम कैसे कल्पना कर सके उस अनगढ़ बेहूदे पत्थर को देखकर कि यह मूर्ति इसमें से निकल सकेगी? माइकल एंजेलो ने कहा—मैंने नहीं देखा, मैं तो रास्ते से गुजरता था, क्राइस्ट ने इस पत्थर के भीतर से मुझे आवाज दी कि भई सुन, मुझे इससे मुक्त कर, मुझे इस पत्थर में से निकाल, इसमें रहे मुझे बहुत दिन हो गए। वही पुकार सुनकर मैं यह पत्थर ले आया। इसमें जो-जो व्यर्थ था वह अलग कर दिया है, जो-जो सार्थक है वह प्रकट हो गया। मैंने मूर्ति बनाई नहीं, सिर्फ व्यर्थ को छांटकर अलग किया है।

जीवन भी ऐसा ही है। मूर्ति तो तुम्हारे भीतर परमात्मा की है ही, पुकार ही रही है, वही मूर्ति पुकारी है कि अब संन्यास ले लो। लेकिन कुछ अनगढ़ पत्थर में कुछ कोने हैं, व्यर्थ का कचरा-कूड़ा है, वह सब छांटना है। पात्र होने की प्रतीक्षा मत करो। संन्यास तुम्हें पात्र बनाएगा, संन्यास तुम में पात्रता की पहले से अपेक्षा नहीं करता है।

बैठ मत बेकार
पत्थरों पर पत्थरों को मार...
चिनगारी उठेगी

एक चिनगी
एक क्षण को, प्रण बनाएगी
नींद में डूबी हुई
बस्ती जगाएगी

जागरण: खिड़की, झरोखा, द्वार...
बैठ मत बेकार
पत्थरों पर पत्थरों को मार
चिनगारी उठेगी

द्वार जिनके बंद हैं
जिंदे नहीं हैं वे

हाय, बंदों के लिए
बंदे नहीं हैं वे

मांगती है आदमीयत धार...
बैठ मत बेकार
पत्थरों पर पत्थरों को मार
चिनगारी उठेगी।

संन्यास उसी का निमंत्रण है। पत्थरों पर पत्थरों को मार, चिनगारी उठेगी। संन्यास एक संघर्ष है। एक संकल्प भी और एक समर्पण भी। संकल्प कि अब तक मैं जैसा था उससे अन्यथा होने का क्षण आ गया, और समर्पण कि अब मैं परमात्मा के हाथों में अपने को छोड़ता हूं। अब वह जो चाहे हो जाए; और जो चाहे न हो, वह न हो; अब उसकी मर्जी मेरी मर्जी होगी। तो संन्यास एक संकल्प है और फिर एक समर्पण भी। संन्यास बड़ा विरोधाभासी है। उसके विरोधाभास में ही उसका सत्य है, उसके विरोधाभास में ही उसकी क्रांतिपूर्ण प्रक्रिया है। वह तुम्हें मारेगा भी और तुम्हें जिलाएगा भी। वह तुम्हें सूली भी देगा और सिंहासन भी।

जब हृदय कहे, तभी मुहूरत आ गया है। अब कागजों में मुहूरत देखने की जरूरत नहीं है। और ज्यादा प्रतीक्षा मत करना, अन्यथा मुहूरत निकल भी जा सकता है।

आखिरी प्रश्नः विरह क्या है?

भक्ति के मार्ग पर विरह आधी यात्रा है, और मिलन शेष आधी। दो ही कदम हैं भक्ति के—विरह और मिलन। पहले विरह, फिर मिलन। जो विरही है, वही मिलेगा। विरह का अर्थ है कि मुझे पता नहीं कि मैं कौन हूं। विरह का अर्थ है कि मुझे पता नहीं परमात्मा कहां है, कहां छिपा है। विरह का अर्थ है कि मुझे मेरे जीवन का अर्थ नहीं मिलता। विरह का अर्थ है, आंसू और आंसू मेरी आत्मा पर फैले हैं, मैं रो रहा हूं, मैं पुकार रहा हूं; राह नहीं सूझती, अंधेरा है, मैं टटोल रहा हूं, मैं भटक रहा हूं, मैं गिर रहा हूं, मैं उठ रहा हूं। विरह प्यास है। विरह अभीप्सा है। कुछ है जो प्रकट नहीं हो रहा है, और जो प्रकट हो जाए तो जीवन का अर्थ मिल जाए, जीवन में संगति आ जाए। संगीत आ जाए। कुछ है जो अनुभव में आता है भीतर कि पास ही है, फिर भी चूक-चूक जाता है। कुछ है जिसकी अचेतन में ध्वनि सुनाई पड़ती है, लेकिन चेतन तक नहीं आ पाती।

विरह का अर्थ है, परमात्मा है और मुझे नहीं मिल पा रहा है। तो मैं रोऊं, तो मैं पुकारूं, तो मैं गिरूं उसके अज्ञात चरणों में, तो मैं उस अज्ञात के लिए दीए जलाऊं, आरती सजाऊं, फूलमालाएं गूंथूं; मैं खाली हूं और मेहमान आ नहीं रहा है—मेहमान है निश्चित, इसकी प्रतीति होनी शुरू होती है भक्त को कि परमात्मा है निश्चित, हर तरफ उसकी छाया सरकती मालूम पड़ती है, फूलों में उसका रूप दिखाई

पड़ता है, पक्षियों में उसकी उड़ान मालूम होती है, झरनों में उसका कलकल नाद मालूम होता है, अस्पष्ट सी अनुभूति होती है, पगध्वनि सुनाई पड़ती है कभी-कभी किन्हीं क्षणों में और किसी-किसी झरोखे से वह झांक जाता है, किसी सपने में उसकी छाया पड़ती है, प्रतिध्वनि सुनाई पड़ती है—दूर की—एहसास होने लगता है कि है तो जरूर, लेकिन कब छाती से छाती मिले, कब आलिंगन हो!

विरह का अर्थ है, ऐसी चित्त की दशा जिसे एहसास तो होना शुरू हुआ, लेकिन एहसास अभी अनुभूति नहीं बना है। जिसे परमात्मा की प्रतीति अनुभव में तो आने लगी, लेकिन आमना-सामना नहीं हुआ, दरस-परस नहीं हुआ है। ध्वनि सुनी है कहीं से, लेकिन कहां से आती है, स्रोत नहीं मिल रहा है। ध्वनि सुनकर ही भक्त मस्त हो गया है। जैसे मदारी ने अपनी तुरही बजाई हो और सांप अपनी पोल में छिपा हुआ तड़फने लगे, ऐसा विरह है। सरकने लगे ध्वनि के स्रोत की तरफ, मस्त होने लगे, मदमस्त होने लगे।

इस विरह को शांडिल्य ने कहा—बड़ा उपयोगी है। जब दो विरही मिल जाते हैं, रोते हैं और एक-दूसरे को रुलाते हैं और प्रभु की महिमा बखान करते हैं, प्रभु की उपस्थिति की चर्चा करते हैं, प्रभु की झलकें एक-दूसरे से आदान-प्रदान करते हैं, तब सत्संग होता है। उसी सत्संग में धीरे-धीरे अनुभव निखरते हैं, साफ होते हैं। सोना विरह की अग्नि से गुजर-गुजरकर खालिस कुंदन बनता है। और एक दफा मजा आने लगता है आंसुओं का—क्योंकि ये आंसू परमात्मा के लिए हैं, ये दुख के आंसू नहीं हैं, ये बड़े अहोभाव के आंसू हैं; इतना भी क्या कम है कि हमें उसका एहसास होने लगा, हम धन्यभागी हैं कि हमें उसका एहसास होने लगा, अभागे हैं बहुत जिन्हें यह पता ही नहीं है कि परमात्मा जैसी कोई बात होती है, जिन्होंने कभी इस शब्द पर दो क्षण विचार नहीं किया है, जिन्हें प्रार्थना का कोई अर्थ नहीं मालूम।

आओ फिर नज्म कहें
फिर किसी दर्द को सहला के सुजा लें आंखें
फिर किसी दुखती हुई रग से छुआ दें नश्तर
या किसी भूली हुई राह पे मुड़कर इक बार
नाम लेकर किसी हमनाम को आवाज ही दे लें
फिर कोई नज्म कहें
आओ फिर कोई नज्म कहें

जब दो विरही मिलते हैं—और विरहियों का मिलन सत्संग है। जब दो प्रेमी मिल जाते हैं, या चार प्रेमी मिल बैठते हैं, तो करते क्या हैं? रोते हैं और रुलाते हैं। रोमांचित होते हैं, एक दूसरे की भावदशा को पीते हैं, एक दूसरे की भावदशा से आंदोलित होते हैं, एक-दूसरे से संक्रामित होते हैं।

आओ फिर नज्म कहें
फिर किसी दर्द को सहला के सुजा ले आंखें

फिर किसी दुखती हुई रग से छुआ दें नश्तर
या किसी भूली हुई राह पे मुड़कर इक बार
नाम लेकर किसी हमनाम को आवाज ही दे लें
फिर कोई नज्म कहें

इन घड़ियों में परमात्मा और थोड़े करीब आ जाता है। जितने तुम्हारे आंसू गहन होते हैं, उतना परमात्मा करीब आ जाता है—आंसू भरी आंखें ही उसे देखने में समर्थ हो पाती हैं। आंसू से भरी आंखें पात्र हो जाती हैं। लबालब। आंसू से भरी आंखें तुम्हारी प्रार्थना से भरी आंखें हैं, झलक उसकी गहराने लगती है। जितनी झलक गहराती है, उतनी तड़फ भी गहराने लगती है।

मगर निठुर न तुम रुके, मगर निठुर न तुम रुके
पुकारता रहा हृदय, पुकारते रहे नयन
पुकारती रही सुहाग-दीप की किरन-किरन
निशा-दिशा, मिलन विरह विदग्ध टेरते रहे
कराहती रही सलज्ज सेज की शिकन-शिकन
असंख्य श्वास बन समीर पथ बुहारते रहे
मगर निठुर न तुम रुके, मगर निठुर न तुम रुके

आता परमात्मा बहुत बार और चला जाता। आया हवा के झोंके से—यह आया और यह गया! और पीछे बड़ा विदग्ध भाव छोड़ जाता। विरह घना होने लगता है। विरह एक ऐसी घड़ी में आ जाता है, जब विरह भक्त की मृत्यु बन जाता है, जब भक्त अपने को बिलकुल ही गंवा देता है, जब विरही और विरह दो नहीं रह जाते, जब विरही और विरह एक ही हो जाते हैं, जब भक्त का रोआं-रोआं रोता है, श्वास-श्वास रोती है, धड़कन-धड़कन रोती है, उसी घड़ी क्रांति घटती है, उसी घड़ी विरह की रात्रि पूरी हुई, मिलन की सुबह आई।

विरह को सौभाग्य समझना। विरह द्वार पर दस्तक दे, टालना मत। विरह पुकारे, उसके पीछे जाना। विरह बहुत सताएगा, क्योंकि सताए बिना निखार नहीं है। विरह बहुत जलाएगा, क्योंकि बिना जलाए कोई परिशुद्धि नहीं है। विरह को मित्र मानना, तो एक दिन विरह तुम्हें इस योग्य बना देगा कि मिलन घट सके।

विरह तुम्हारे हाथ में है, मिलन तुम्हारे हाथ में नहीं। इसलिए विरह को जितना प्रगाढ़ कर सको उतना प्रगाढ़ करो। रोओ, रोमांचित होओ, नाचो, पुकारो। यही पुकार यही रुदन, यही नृत्य, यही तुम्हारे हृदय से उठती हुई कराह तुम्हें धीरे-धीरे परमात्मा की तरफ खींचती ले जाएगी। यही तुम्हें ठीक दिशा देगी, और इसी दिशा से एक दिन परमात्मा चला आता है। जिस दिन तुम्हारा विरह सचमुच परिपूर्ण हो जाता है, उस दिन तुम परमात्मा को पाने के हकदार हो गए, उस दिन तुम पात्र बने।

संन्यास के लिए पात्रता की जरूरत नहीं है, परमात्मा के लिए पात्रता की जरूरत आएगी। लेकिन वह पात्रता भी ध्यान रखना, तुम्हारे उपवास की पात्रता नहीं है, और न तुम्हारे त्याग की पात्रता है, क्योंकि उससे तो अहंकार भरता है। वह पात्रता तुम्हारे आंसुओं की पात्रता है, क्योंकि आंसुओं से ही तुम गलते हो, पिघलते हो; आंसुओं में ही एक दिन धीरे-धीरे गल-गलकर अहंकार समाप्त हो जाता है।

जहां अहंकार की समाप्ति है, वहीं परमात्मा से मिलन है।

आज इतना ही।

प्रवचन ९

सब हो रहा है

सूत्र

तद्वाक्यशेषात् प्रादुर्भावेष्वपि सा।। ४६।।
जन्मकर्म्मविदश्चाजन्मशब्दात्।। ४७।।
तच्च दिव्यं स्वशक्तिमात्रोद्भवात्।। ४८।।
मुख्यं तस्य हि कारुण्यम्।। ४९।।
प्राणित्वान्न विभूतिषु।। ५०।।

युक्तौ च सम्परायात्।

प्रकृति और पुरुष दो नहीं हैं। आत्मा और परमात्मा दो नहीं हैं। दृश्य और दृश्या दो नहीं हैं। भक्ति की यह आधारशिला है कि एक होने का उपाय है। एक होने का उपाय तभी हो सकता है, जब वस्तुतः हम एक हों ही। यथार्थ से अन्यथा नहीं हो सकता। भक्त भगवान से मिल सकता है तभी, जब मिला ही हुआ हो। जब पूर्व से ही मिला हो, जब प्रथम से ही विरह न हुआ हो, बिछुड़न न हुई हो।

यह थोड़ी जटिल बात है, इसे खयाल में लेना।

आम का बीज बोते हैं, आम पैदा होता है। आम इसलिए पैदा होता है कि आम छिपा था, आम था ही। नहीं तो कंकड़ बोते तो आम पैदा हो जाता। जो छिपा है, वह प्रकट होता है। इस जगत में वही मिलता है जो मिला ही हुआ है। भेद इतना ही पड़ता है कि छिपा था, अब प्रकट हुआ। तुम भगवान हो, लेकिन अभी बीज की नाईं; जब वृक्ष की नाईं होओगे, तब जानोगे, तब पहचानोगे।

शांडिल्य कहते हैं : दोनों प्रथम से ही एक हैं।

युक्तौ च सम्परायात्।

कभी अलग हुए नहीं। अलग होना भ्रांति है। अलग होना हमारे मन का भ्रम है। और यह भ्रम हम ने इसलिए पैदा किया है कि इसी अलग होने के भ्रम के आधार पर अहंकार पाला-पोसा जा सकता है। यदि तुम परमात्मा हो तो तुम रहे ही नहीं, परमात्मा रहा। बूंद डरती है सागर होने से—बूंद सागर हो जाएगी तो बूंद नहीं रह जाएगी, सागर ही रहेगा। विराट के साथ मिलने में भय लगता है। आकाश के साथ जुड़ना दुस्साहस की बात है।

इसलिए भक्त को दुस्साहसी होना ही होगा। बूंद अपने को खोने चली है। छोटी सी बूंद इतने विराट सागर में। फिर न पता लगेगा, न ओर-छोर मिलेगा; फिर अपने से शायद कभी मिलना भी न हो; इतनी खोने की ज़िसकी हिम्मत है, वही भक्त हो सकता है। और जो भक्त हो सकता है, वही भगवान हो सकता है। भक्त होने का अर्थ है, बीज ने अपने को तोड़ने का निर्णय लिया। तुम जमीन में बीज को बोते हो, जब तक बीज टूटे नहीं, वृक्ष नहीं होता; जब तक बीज मिटे नहीं तब तक अंकुरण नहीं होता; बीज की मृत्यु ही वृक्ष का जन्म है। तुम्हारी मृत्यु ही भगवान का आविर्भाव है। भक्त जहां मरता है, वहीं भगवत्ता उपलब्ध होती है।

इसीलिए तो लोगों ने झूठी भक्ति की व्यवस्थाएं खोज रखी हैं, ताकि अपने को मिटने से बचा सकें। मंदिर जाते हैं, प्रार्थना करते हैं, पूजा करते हैं, यज्ञ-हवन करते हैं, अपने को बचाए रखते हैं। आग में घी डालते हैं; अपने को नहीं डालते। आग में गेहूं डालते हैं, अपने को नहीं डालते। वृक्षों से तोड़कर फूल परमात्मा के चरणों में चढ़ा आते हैं, अपने को नहीं चढ़ाते। और जिसने अपने को नहीं चढ़ाया, उसने पूजा जानी ही नहीं; वह बीज टूटा ही नहीं, अंकुरण से उसकी कोई मुलाकात ही न हुई।

बिना मिटे इस जगत में होने का कोई उपाय नहीं। छोटे तल पर मिटो तो बड़े तल पर प्रकट होते हो। जितने ज्यादा मिटो, उतने प्रकट होते हो। जब परिपूर्ण रूप से मिटते हो, तब भगवत्ता उपलब्ध होती है क्योंकि भगवत्ता पूर्णता है, उसके पार फिर कुछ और नहीं। लेकिन यह हो सकता है इसीलिए, क्योंकि यह हुआ ही हुआ है।

इस उदघोषणा को जगह दो अपने हृदय में।

तुम भगवान हो सकते हो, क्योंकि तुम भगवान हो। भगवान ने तुम्हें एक क्षण को नहीं छोड़ा, तुम भला पीठ करके खड़े हो गए हो। तुमने भला आंखें बंद कर ली हैं, सूरज निकला है और चारों तरफ जगत रोशन है। तुम अंधेरे में खड़े हो, यह तुम्हारा निर्णय है। अंधेरा है नहीं, अंधेरा बनाया हुआ है, कृत्रिम है। इस कृत्रिम बनाए हुए अंधेरे का नाम माया है, जो आदमी खुद बना लेता है।

तुमने एक आश्चर्य से भरने वाली बात देखी कि लोग दुख को बड़ी मुश्किल से छोड़ते हैं? बात एकदम से कहो तो बेबूझ लगती है। मनस्विदों से पूछो। सिग्मंड फ्रायड से पूछो। सिग्मंड फ्रायड खुद भी तीस वर्षों तक इस पहेली से परेशान रहा। सैकड़ों लोगों का मनोविश्लेषण करने के बाद एक बात बार-बार उभरकर सामने आई कि लोग दुख को छोड़ने को राजी नहीं हैं। कहते हैं, मानते भी हैं शायद कि हम दुख छोड़ना चाहते हैं, लेकिन छोड़ने को राजी नहीं हैं। फ्रायड बड़ा किंकर्तव्यविमूढ़ था। क्योंकि हम तो सदा से यही सुनते रहे हैं कि आदमी सुख चाहता है। यह बात तो इतनी प्रचारित की गई है कि हम ने मान लिया है कि आदमी सुखवादी है, सभी सुख चाहते हैं। लेकिन जरा आदमी को गौर से देखो। आदमी दुख को पकड़ता है, दुख को छोड़ता नहीं। आदमी दुखवादी है।

तीस साल के मनोविश्लेषण का परिणाम था कि फ्रायड ने एक नए सत्य का आविर्भाव किया, जो कि फ्रायड के पहले किसी दूसरे मनुष्य ने इस तरह से स्पष्ट रूप

से घोषित नहीं किया था। उसने स्वदुखवाद की धारणा को पकड़ा—मैसोचिज्म। आदमी अपने को सताता है। जिसको तुम तपश्चर्या कहते हो, वह अक्सर मैसोचिज्म होता है। गर्मी है, धूप पड़ रही है आग जैसी और कोई धूनी रमाए बैठा है। तुम कहते हो—महात्यागी। जो जानते हैं, उनसे पूछो। यह महात्यागी नहीं हैं। यह महादुखवादी हैं। सर्दी पड़ रही है, पानी जमकर बर्फ हुआ जा रहा है, और कोई नग्न खड़ा है आकाश के नीचे। तुम कहते हो—तपस्वी। यह तपस्वी नहीं है, यह रुग्णचित्त है। यह दुख को पकड़ रहा है। यह अपनी छाती में घाव कर रहा है। यह सुख से नहीं जीना चाहता। इसने दुख के उपाय कर रखे हैं।

तुम अपने ही भीतर देखोगे तो तुम हैरान होओगे, तुम जानते हो भलीभांति कि दुख के उपाय हैं। जैसे क्रोध सिवाय दुख के और कुछ भी नहीं लाता, लेकिन तुम छोड़ते क्यों नहीं? अहंकार सिवाय दुख के और कुछ भी नहीं लाता, फिर तुम छोड़ते क्यों नहीं? तो तुम्हारी जो सदियों से दोहराई गयी बकवास है कि आदमी सुखवादी है, उस पर शक पैदा होता है। तुम जानते हो कि इस जगत में जो जितनी वासना से चलता है, उतने ही विषाद से भरता है। तुम भी वासना के रास्ते पर चले हो और कांटों के सिवाय कभी कुछ मिला नहीं—फूल खिले कब, हर बार हारे हो, जीत की आकांक्षा ने बहुत बुरी तरह हराया है, लेकिन जीत की आकांक्षा नहीं छोड़ते। उसे जोर से पकड़े हुए हो। जरूर उसमें कुछ न्यस्त स्वार्थ है।

क्या न्यस्त स्वार्थ है?

एक ही न्यस्त स्वार्थ दिखाई पड़ता है कि जब तुम दुख में होते हो, तब तुम होते हो। और जब तुम सुख में होते हो, तब तुम नहीं होते। और यही भय है। सुख से लोग भयाक्रांत हैं। कोई सुखी नहीं होना चाहता। क्योंकि सुख के लिए एक कीमत चुकानी पड़ती है, वह है मैं का टूट जाना। दुख में मैं साबित रहता है, साबित ही नहीं रहता, बड़ा बलिष्ठ और स्वस्थ रहता है; दुख पोषण है मैं के लिए, अहंकार के लिए, अस्मिता के लिए। इसीलिए तो तुम अपने दुख को बढ़ा-चढ़ाकर कहते हो। जांचना अपने को ही। जब तुम अपने दुख की बात करते हो, तो तुम कितना बढ़ा-चढ़ाकर कह रहे हो?

इधर मैं देखता हूं रोज, ऐसा आदमी कभी मुझे दिखाई नहीं पड़ता जो अपने दुख पर शक करता हो, जो कभी मुझ से आकर कहे कि मैं बहुत दुखी हूं, मैं बहुत परेशान हूं, कहीं यह दुख मेरे मन की कल्पना ही तो नहीं है? नहीं, एक आदमी नहीं कहता। लेकिन जब यहां लोग ध्यान में धीरे-धीरे उतरना शुरू करते हैं और सुख की थोड़ी झलकें आती हैं, सुख के थोड़े झोंके आते हैं, कुछ भीतर की कारा टूटती है, कुछ झरोखे खुलते हैं. थोड़ी रोशनी भीतर पड़ती है, कहीं-कहीं कोने में कोई फूल खिलता है और सुगंध से प्राण व्याप्त होते हैं, भागे मेरे पास आते हैं, वे कहते हैं कि बड़ा सुख हो रहा है, यह कहीं मन की कल्पना तो नहीं है? यह वही आदमी, जो जन्मों से दुखी था, कभी शक न उठाया दुख पर, सुख पर शक उठाता है।

अगर तुम दुखी हो तो कोई तुमसे नहीं कहेगा कि कुछ गड़बड़ है। अगर तुम सुखी

हो, लोग कहेंगे कि तुम आत्म-सम्मोहित हो गए, आटो-हिप्नोटाइज्ड हो गए। अगर तुम हंसो, नाचो सड़क पर, तो लोग कहेंगे पागल हो गए हो। अगर तुम मुर्दे की तरह चलो, लाश की तरह अपने को ढोओ, लोग कहेंगे—बिलकुल स्वस्थ सामान्य आदमी है।

मुस्कुराहट स्वीकार नहीं है। इसीलिए तो लोग इतने उदास दिखाई पड़ते हैं, इतने थके-हारे दिखाई पड़ते हैं, इतना बोझ ढोते दिखाई पड़ते हैं—पहाड़ उनकी छाती पर रखे हैं, उनके सिर पर इतना सदियों का बोझ है कि चल भी नहीं सकते लेकिन घसिट रहे हैं। बोझ को उतारकर भी नहीं रखते क्योंकि बोझ को उतारकर रखो तो तुम्हें खुद भी शक होता है कि मैं बचा? क्योंकि तुम्हारा बोझ ही तुम हो, और तुम बोझ को उतारो तो दूसरों को शक पैदा होता है, दूसरे कहते हैं—क्या हुआ है तुम्हें आज बड़े हंस रहे हो, कुछ भांग-गांजा तो नहीं पीने लगे? आज बड़े प्रसन्न मालूम पड़ते हो, किसी धोखे में तो नहीं आ गए? और यही नहीं कि दूसरों को शक होता है, तुम्हें भी भीतर शक होता है कि यह आज मेरे भीतर ताजगी-ताजगी, बात क्या है; कुछ गड़बड़ हुई जाती है, जैसा होना चाहिए वैसा नहीं हो रहा है। एक दिन सुबह उठकर अगर तुम अचानक अपने को समाधिस्थ पाओ, विश्वास करोगे?

यहां कभी-कभी ऐसा हो जाता है। कभी-कभी आकस्मिक, समाधि की एक बाढ़ आ ज़ाती है किसी को, रोआं-रोआं कंप जाता है भय से, क्योंकि उस समाधि की बाढ़ में अगर कोई चीज बह जाती है तो वह तुम हो। तुम खड़े नहीं रह सकते, उस सुख के अंधड़ में। उस आंधी में तुम नहीं बचोगे। जड़-मूल उखाड़कर ले जाएगी। इसलिए आदमी ने निर्णय कर लिया है कि दुख में रहूंगा; लेकिन कम से कम रहूंगा; मैं मिटना नहीं चाहता; अगर दुख की कीमत पर ही बच सकता हूं तो इसी कीमत पर सही, लेकिन मैं मिटना नहीं चाहता। और इसलिए तुम उन्हीं बातों को रोज-रोज करते हो जिन से दुख पैदा होतां है। यह बात तुम्हें दिखाई पड़नी शुरू हो जाए तो शायद क्रांति घटे। सुख पर भरोसा करो, दुख पर संदेह करो। यह कैसी बुद्धिमत्ता है कि तुम सुख पर संदेह करते हो और दुख पर भरोसा करते हो?

अब यह बड़े मजे की बात है, तुम महात्माओं के पास जाओ, तुम्हारे महात्मा तुमसे बहुत ज्यादा भिन्न नहीं है। तुम्हारी ही आकांक्षाओं, तुम्हारी ही मूढ़ताओं तुम्हारी ही धारणाओं के प्रतिफलन हैं। तुम अपने महात्मा के पास जाओ, वे तुमसे कहेंगे, संसार में दुख ही दुख है। अगर तुम उन से कहो संसार में सुख हैं, वे कहते है—सुख सब भ्रम है। और दुख? दुख बिलकुल सच।

यह बड़े आश्चर्य की बात है कि महात्मा कहे चले जाते हैं कि संसार में सुख तो सब धोखा है, दुख बिलकुल सच्चा है। दुख को इशारा कर करके बताते हैं—यहां दुख, यहां दुख, यहां दुख। तुम अपने शास्त्र पढ़ो! वे शास्त्र कहते हैं कि स्त्री में है क्या, कौन सा सुख, कौन सा सौंदर्य?

अब जरा उनका तर्क समझना।

स्त्री मे कोई सौंदर्य नहीं है, ऐसा वे कहते हैं; क्योंकि उसको उघाड़कर देखो, उसको भीतर देखो, मलमूत्र भरा हुआ है। मलमूत्र सत्य है, सौंदर्य असत्य है! अगर

सौंदर्य असत्य है, तो उसी के साथ कुरूपता भी असत्य हो गई, क्योंकि कुरूपता फिर सत्य नहीं हो सकती। जब सौंदर्य ही नहीं है जगत में, तो कुरूपता कैसे हो सकती है? लेकिन कुरूपता तो बिलकुल सच है, उसे तो खोद-खोदकर जाहिर करने में रस लेते हैं, इस तरह के वर्णन करते हैं कि तुम्हें मतली आने लगे। मतली सच है, वह जो कै उठने लगे तुम्हारे भीतर, वह सच है, लेकिन वह जो किन्हीं आंखों में तुम्हें सौंदर्य की झलक मिली, वह झूठ है। जगत में मृत्यु सत्य है, जीवन झूठ है। स्वास्थ्य झूठ है, बीमारी सच है। तुम्हारा महात्मा रस लेता है दुखों की फेहरिशत बनाने में। बड़ा कुशल है। जैसे तुम सुबह लाण्ड्री की लिस्ट बनाते हो, वह रोज सुबह उठकर दुखों की लिस्ट बनाता है। वह फेहरिश्त को बड़ी करता चला जाता है। मामला क्या है? क्यों दुख में इतनी उत्सुकता है? तुम्हारा महात्मा भी दुख पर जीता है, तुम भी दुख पर जीते हो। तुम्हारा महात्मा तुमसे थोड़ा आगे चला गया है, इसलिए तुम उसे महात्मा कहते हो। वह तुमसे ज्यादा दुखवादी है, तुमसे ज्यादा मैसोचिस्ट है।

फ्रायड को कोई महात्मा अध्ययन करने को नहीं मिला, मुझे महात्मा अध्ययन करने को मिले। फ्रायड ने तो केवल साधारण आदमियों के अध्ययन पर यह कहा कि आदमी दुखवादी हैं, मैं सैकड़ों महात्माओं को देखकर तुमसे यह कहता हूं कि आदमी तो कुछ भी नहीं है, अगर असली दुखवादी देखना है तो महात्मा! तुम उनकी पूजा भी इसलिए करते हो क्योंकि तुम्हारा तर्क और उनका तर्क मेल खाता है,. तुम्हारे गणित समान है। तुम जरा छोटा-मोटा धंधा कर रहे हो, वे बड़े व्यापारी हैं। तुम फुटकर काम करते हो, वे थोक करते हैं। तुम्हारी छोटी परचून की दुकान है, उनका बड़ा विस्तार है, बड़ी फैक्टरी है। तुम छोटे दुख पैदा करते हो वे बड़े दुख पैदा करते हैं। मात्रा का भेद है, गुण का भेद नहीं है।

इस जगत में अगर तुम दुख ही तलाश करने निकलोगे तो निश्चित दुख पाओगे। जो आदमी कांटे ही खोजने निकला है, वह कांटे ही खोज लेगा।

जगत में कांटे नहीं हैं, ऐसा मैं नहीं कह रहा; कांटे हैं, मगर फूल भी हैं। तुम पर चुनाव है। जो कांटे ही कांटे चुनेगा, धीरे-धीरे उसे फूल दिखाई पड़ने बंद हो जाते हैं। हो ही जाएंगे। उसकी आंखें कांटों के साथ संगति बिठा लेती है। तुम जो देखते हो, देखते हो, देखते रहते हो, फिर धीरे-धीरे वही देख पाते हो। जो फूलों से सबंध बनाता है, फूलों से मैत्री बनाता है, उसे धीरे-धीरे कांटों में भी फूल दिखाई पड़ने लगते है।

भक्ति दुखवाद नहीं है। भक्ति महा सुखवाद है। इसलिए भक्त में और तुम्हारे त्यागी में फर्क को खयाल रखना। भक्त जीवन में रस लेता है, भक्त जीवन में मग्न है, हालांकि खाने-पीने के रस पर ही नहीं रुक जाता, क्योंकि जीवन मे और बड़े रस हैं। मगर जिसने खाने-पीने का रस भी न लिया, वह और बड़े रस कैसे लेगा? भक्त आगे बढ़ता है। धीरे-धीरे संसार को पीते, संसार को अनुभव करते, उसे परमात्मा का स्वाद भी आने लगता है। इसलिए शांडिल्य कहते हैं—

युक्तौ च सम्परायात्।

यह संसार परमात्मा से पृथक नही है. युक्त है, एक है, दोनो जुडे है, मिलन

कभी टूटा नहीं है, आलिंगन कभी टूटा नहीं है, आलिंगन में खड़े हैं। जैसे दो प्रेमी आलिंगन में खड़े हों, ऐसे ये प्रकृति और पुरुष आलिंगन में हैं। तुम सुख को खोजोगे तो सुख के परमस्रोत परमात्मा को खोज लोगे, सुख को खोजोगे तो स्वर्ग खोज लोगे। मगर मजा है कि तुम सुख के नाम पर भी दुख खोजते हो, कहते हो सुख खोज रहे हैं। एक आदमी कहता है—मैं सुख ही तो खोज रहा हूं, इसीलिए तो धन इकट्ठा कर रहा हूं। धन इकट्ठा करने से क्या सुख का संबंध हो सकता है? मैं यह नहीं कह रहा हूं कि धनी आदमी को अनिवार्य रूप से दुखी होना चाहिए, हालांकि धनी आदमी अनिवार्य रूप से दुखी होता है। तुम जितना दुखी धनी को पाओगे, इतना गरीब को नहीं पाओगे। आज अमरीका की मुसीबत क्या है? यही कि धन है। तुम जो खोज रहे हो, वह अमरीका ने पा लिया, और सब तरफ दुख व्याप्त हो गया है। अमरीका नर्क बन गया है। अब कुछ समझ में नहीं आता अब क्या करें?

मैं तुमसे यह कहना चाहता हूं कि जो लोग धन खोज रहे थे अमरीका में, सुख खोज रहे थे, सोचते थे, लेकिन मिला तो दुख। तुमने सोचा था आम बो रहे हो, बो दी थी नीम। फल सिद्ध करेगा कि क्या बोया था। तुम जरा अमीर आदमियों को देखो, तुम उनकी आंखों में जीवन का आह्लाद पाते हो? और उनके हृदय में प्रेम का गीत उठता है? और उनके पैरों में कोई नृत्य है, अनुग्रह है, परमात्मा के प्रति कोई धन्यवाद है? नहीं, विषाद है, शिकायत है। वे बिलकुल हारे-थके खड़े हैं।

उनकी समझ में नहीं आ रहा है कि अब क्या करें? अब तक सोचते थे धन मिलने से सुख मिलेगा, धन मिल गया और सुख का तो कुछ पता नहीं है, और जीवन हाथ से गया, धन का ढेर लगा है और जीवन हाथ से खो गया है—वह जीवन जो दुबारा वापस नहीं मिल सकता, वह समय जिसे लौटाने का कोई उपाय नहीं। यह ठीकरे का ढेर लग गया। किस कीमत पर?

सिकंदर एक फकीर से मिला और उसने फकीर से पूछा कि मैं संसार को जीतने निकला हूं, मुझे आशीर्वाद दो। उस फकीर ने कहा—आशीर्वाद दूंगा, उसके पहले एक प्रश्न है! तुम संसार को जीत लिए, मानो; मान लो कि संसार जीत लिए और एक महा रेगिस्तान में अकेले पड़ गए हो, प्यास लगी है भयंकर और एक गिलास पानी मिल जाए इसके लिए तड़फ रहे हो; मर जाओगे। और मैं एक गिलास पानी लेकर वहां मौजूद होता हूं। लेकिन ऐसे ही मुफ्त नहीं दे दूंगा एक गिलास पानी। तुम कितना मूल्य चुकाने को राजी होओगे? सिकंदर ने कहा—जो मांगोगे। फकीर ने कहा—आधा राज्य। सिकंदर थोड़ा झिझका—हालांकि अभी देने-लेने की कोई बात नहीं थी, यह केवल कल्पना का सवाल था, लेकिन फिर भी झिझका—आधा राज्य, एक गिलास पानी के लिए। लेकिन फिर पूरी परिस्थिति सोची। भयंकर रेगिस्तान, भरी दोपहरी आग बरसती, कहीं कोई रास्ते का पता नहीं, दूर-दूर तक गांव की कोई खबर नहीं; कब पहुंच पाऊंगा इस रेगिस्तान के बाहर कोई संभावना नहीं, प्यास से मरा जा रहा है। तो अब आधा राज्य भी अगर देना पड़े एक गिलास पानी के लिए सिंकंदर ने थोड़े संकोच से कहा कि ठीक, अगर ऐसी परिस्थिति होगी और मृत्यु सामने खड़ी

होगी, तो फिर आधा राज्य भी दूंगा। फकीर ने कहा—मैं भी कुछ इतनी जल्दी पानी बेच नहीं दूंगा, पूरा राज्य चाहिए। सिकंदर ने कहा—बात क्या करते हो; कुछ सीमा होती है किसी बात के मूल्य की। एक गिलास पानी! पर फकीर ने कहा—परिस्थिति सोचलो, वही एक गिलास पानी तुम्हारा जीवन है, पूरा राज्य दोगे तो ही दे सकूंगा। सिकंदर ने थोड़ा सोचा और कहा—अच्छा, अगर ऐसी स्थिति होगी तो पूरा राज्य भी दूंगा, क्योंकि जीवन बड़ी चीज है।

फकीर हंसने लगा। उसने कहा, बस, इसको तुम याद रखना, आशीर्वाद क्या मांगते हो, जीवन बड़ी चीज है। तुम जीवन को गंवा दोगे, राज्य पा लोगे—और राज्य की इतनी कीमत है कि जरूरत पड़ जाए तो एक गिलास पानी में बिक जाए।

इसका मूल्य कितना है?

तुम धनी आदमी से जरा गौर से पूछो, जांचो; जो पद पर पहुंच गए हैं, उनको जरा परखो, पहचानो; वे सभी यह सोचते थे कि सुख की तलाश में चले हैं; नर्क में पहुंच गए हैं। मानने से थोड़े ही कोई स्वर्ग पहुंचता है। तुम्हारी दिशा कहां है। तो दुनिया में जिनको तुम संसारी कहते हो, वे भी दुख ही खोज रहे हैं। सिर्फ अपने को भरमाने के लिए उन्होंने दुख के डिब्बों पर सुख के लेबिल लगा रखे हैं। और जिसको तुम धार्मिक कहते हो, वह भी दुख खोज रहा है। उसने अपने दुख के डिब्बों पर पुण्य के लेबिल लगा रखे हैं। इतना ही भेद है। लेबिल का भेद है। दोनों दुख खोज रहे हैं। इस जगत में अगर कोई आदमी सुख खोजता मिल जाए, तो वही भक्त है।

फिर सुख का क्या मतलब होगा?

फिर सुख का एक ही मतलब हो सकता है कि दुख मेरे मैं को पुष्ट करता है; सुख की खोज का एक ही अर्थ हो सकता है कि मैं इस मैं को छोड़ दूं जो दुख पर जीता है, जिसके लिए दुख अनिवार्य है, मैं इस दुख को छोड़ दूं। दुख का त्याग इस जगत में सब से बड़ा त्याग है। मैं अपने संन्यासी से वही कहता हूं—दुख का त्याग। तुम्हारे त्यागी कहते हैं—त्याग के नाम पर दुख का वरण। मैं तुमसे कहता हूं—त्याग एक ही है, दुख का त्याग। तुम्हें थोड़ी यह बात अजीब लगेगी, स्वभावतः, क्योंकि दुख तो तुम कहते हो सभी छोड़ना चाहते हैं। मैं तुमसे फिर दोहराता हूं कि कोई नहीं छोड़ना चाहता। दुख को लोग पकड़ते हैं। जहां से दुख आता है, उसी दिशा में दौड़ने लगते हैं।

तुमने कभी देखा, कोई पक्षी कमरे में आ जाता है और फिर बंद खिड़की के कांच से सिर टकराने लगता है, तुम्हें भी कभी लगा होगा कि पक्षी भी कैसे मूढ़ होते हैं; जिस दरवाजे से आया है वह अब भी खुला है, इस बंद खिड़की के कांच से सिर टकराने की जरूरत क्या है? इस पक्षी को इतना होश नहीं है कि जहां से आया हूं, वहीं से वापस चला जाऊं? लेकिन पक्षी सिर टकराता है। कभी तो लहू-लुहान कर लेता है अपने को, पंख टूट जाते हैं। लेकिन जो खुला दरवाजा है, उस तरफ नहीं जाता, बंद दरवाजे की तरफ दौड़ता है। सुख का दरवाजा खुला दरवाजा है। परमात्मा ने दरवाजा बंद नहीं किया, उसका मंदिर का दरवाजा खुला है। शायद इसीलिए तुम उस तरफ नहीं जाते। खुले दरवाजे में क्या रस? आदमी बंद दरवाजों में उत्सुक होता है।

आदमी के इस मनोविज्ञान को समझना।

अगर किसी चीज को आकर्षक बनाना हो, उसे छिपाओ। इसलिए एक बुर्के में जाती मुसलमान औरत जितनी खूबसूरत होती है, उतनी खूबसूरत दूसरी औरत नहीं होती। बुर्का! राह चलता हर आदमी रुककर देखना चाहता है कि बुर्के में क्या है?

बर्ट्रेंड रसल ने लिखा है कि जब वह बच्चा था—विक्टोरिया का जमाना था—तब स्त्री के पैर का अगूंठा भी दिख जाता था तो लोग कामोत्तेजित हो जाते थे। घाघरे पहने जाते थे जो कि जमीन को छुएं, जिस से पैर भी स्त्री का, अंगूठा भी दिखाई न पड़े। सौ साल में दुनिया बदल गई है, पश्चिम में तो निश्चित बदल गई है, स्त्रियां नग्न समुद्र तटों पर लेटी हैं, कोई कामोत्तेजित नहीं हो रहा है।

छिपाओ, आकर्षण पैदा होता है। निषेध करो, निमंत्रण मिलता है लोगों को। किसी दरवाजे पर तख्ती टांग दो कि यहां झांकना मना है, बस, फिर वहां से बिना झांके कोई निकल ही न सकेगा। मेरे गांव में एक वकील हैं, उन्होंने अपनी दीवाल पर लिख छोड़ा है कि यहां पेशाब करना मना है, सारा गांव वहां पेशाब करता है। वे मुझ से बोले के बात क्या है? मैंने कहा—तुम दीवाल से यह अक्षर हटा दो। इनको पढ़कर जिसको नहीं पेशाब लगी है उसको भी लग आती है। जो आदमी अपने काम से चला जा रहा था, जिसे अभी खयाल भी नहीं था, जब वह एकदम से देखता है बड़े-बड़े अक्षर—यहां पेशाब करना मना है, उसे तत्क्षण खयाल आता है, कि अरे चलो! और उसे यह भी खयाल आता है कि यह दीवाल योग्य होगी, तभी तो लिखा गया है! नहीं तो कोई हर कहीं थोड़े ही लिखता है। जैसे ही तुम निषेध करते हो, वैसे ही कुछ आकर्षण पैदा होता है।

फिर तुम बात को समझना।

जहां निषेध है, वहां अहंकार को रस होता है, क्योंकि अहंकार को चुनौती मिलती है। अहंकार बड़े काम करना चाहता है। जो काम सरल है, अहंकार करना ही नहीं चाहता, अहंकार कठिन काम करना चाहता है। क्योंकि कठिन से ही सिद्ध होगा कि मैं कुछ हूं। सरल से कैसे सिद्ध होगा? जैसे तुम कहो कि मैं सांस लेता हूं। इससे क्या फायदा? लोग कहेंगे—सांस तो सभी लेते हैं। पशु-पक्षी भी लेते हैं, जानवर भी लेते हैं, वृक्ष भी लेते हैं, तुम सांस लेते हो इसमें कौन सी खूबी है, इसमें क्यों अकड़े जा रहे हो? राष्ट्रपति होकर दिखाओ! तुम कहते हो—रात में सो जाते हैं। लोग कहेंगे—तुम भी खूब हो, इसमें खूबी की बात क्या है? सो गए तो ठीक है, सभी सो जाते हैं, कुत्ते-बिल्ली भी सो जाते हैं। धनपति होकर दिखाओ! जो कठिन हो वह कर के दिखाओ, सरल से क्या लेना-देना है?

तुमने सुना न झेन फकीर रिंझाई का वचन, किसी ने पूछा कि तुम करते क्या हो, तुम्हारी साधना क्या है? उसने कहा—जब भूख लगती है तब खाना, जब नींद आए तब सो जाना। पर उस आदमी ने कहा—इसमें खूबी की बात क्या है? रिंझाई ने कहा—यही तो खूबी की बात है कि हम सरल से जीते हैं।

दरवाजा खुला है, लेकिन पक्षी भी दरवाजे से नहीं जाता, बंद खिड़की पर सिर

मारता है। बंद खिड़की को तोड़ने में चुनौती है, एक मजा है। सिद्ध करने का एक मौका है कि मैं कुछ हूं। जहां-जहां कठिनाई है, वहां-वहां तुम्हें रस है। लेकिन जहां-जहां कठिनाई है, वहीं-वहीं दुख है। पंख टूट जाएंगे, पक्षी लहू-लुहान हो जाएगा। और अगर किसी तरह कांच को तोड़ने में भी सफल हो जाए तो और भी महंगा पड़ जाएगा सौदा। तब कांच भी छिद जाएगा।

दरवाजा प्रतिपल खुला है। दरवाजा खुला ही था नहीं तो पक्षी भीतर ही कैसे आता! तुम इस संसार में जिस दरवाजे से आए हो, वह दरवाजा अभी भी खुला है, उसी दरवाजे से बाहर हुआ जा सकता है। लेकिन तुम उससे बाहर नहीं होना चाहते। तुम कुछ सिद्ध कर के जाना चाहते हो। तुम नाम छोड़ जाना चाहते हो। तुम यश, प्रतिष्ठा अस्मिता के लिए दीवाने हो रहे हो। और इन सब से दुख आता! परमात्मा सरलतम है, इसीलिए लोग चूकते हैं। मैं दोहराऊं, क्योंकि परमात्मा तुम्हें चारों तरफ से घेरा हुआ है और परमात्मा इतना मुफ्त मिला हुआ है, इसीलिए कोई उसमें उत्सुक नहीं है। मुझ से कभी-कभी कोई आकर पूछता है कि परमात्मा मिलता क्यों नहीं? मैं उसे कहता हूं—क्योंकि वह मिला हुआ है, इसलिए तुम खोजते नहीं।

तुम अपने जीवन को परखोगे तो यह बात समझ में आ जाएगी, जो चीज मिल जाती है, उसी में रस खो जाता है। पति को पत्नी में रस नहीं रह जाता, पत्नी को पति में रस नहीं रह जाता। दूसरे की पत्नी में, दूसरे के पति में रस होता है। तुम्हें अपनी कार में रस नहीं होता, पड़ोसी की कार में रस होता है। तुम्हें अपने मकान में रस नहीं होता है, पड़ोसी के मकान में रस हाता है। कहते हैं न कि पड़ोसी का लान ज्यादा हरा मालूम होता है। दूर के ढोल सुहावने होते हैं।

क्यों तुम्हें अपने में रस नहीं है? क्योंकि जो अपना ही है, वह तो है ही, अब अहंकार को सिद्ध करने का वहां कोई उपाय नहीं है। बात खतम हो गई। सुंदरतम स्त्री भी साधारण हो जाती है मिलते ही। और कुरूप स्त्री भी असाधारण होती है, अगर न मिले। जितनी कीमत तुम्हें चुकानी पड़े उसे पाने को, उतनी ही असाधारण मालूम होती है। जितना मुश्किल हो पाना, जितना एवरेस्ट की चढ़ाई करनी पड़े, उतने ही तुम उद्विग्न हो जाते हो, उतने ही ज्वरग्रस्त हो जाते हो, उतनी ही वासना प्रबल वेग की तरह उठती है।

जो सुगम है, सरल है, उसमें रस नहीं। और परमात्मा सुगमतम है।

युक्तौ च सम्परायात्।

तुम कभी उससे अलग नहीं हुए हो। प्रकृति और पुरुष एक। द्वैत भ्रांति है। द्वैत मन के कारण है, अहंकार के कारण है। अद्वैत सत्य है। और मन के हटते ही अद्वैत साफ हो जाता है। मन यानी अस्मिता, अहंकार, मैं का भाव। यह अद्वैत-अनुभव भक्ति है; न भक्त बचता वहां, न भगवान बचता वहां, बचती है भगवत्ता, बचती है एक ऊर्जा जिसका नाम भक्ति, बचती है एक सुवास जिसका नाम प्रीति। और इसकी प्रतीति भक्त में अनेक ढंगों से होती है। उन अनेक लक्षणों की बात पिछले सूत्रों में शांडिल्य ने कही। उसके आगे के ही अब सूत्र हैं।

तत वाक्य शेषात् प्रादुर्भावेषु अपि सा।

शांडिल्य कहते हैं—जो मैंने कहा, यही बात और जानने वालों ने और जीने वालों ने भी कही है। तत् वाक्य शेषात् प्रादुर्भावेषु अपि सा। यह वाक्य, यह वचन यह सूत्र अनंत काल से लेकर अवतार आदियों ने भी बार-बार कहा है।

इसे समझना।

भक्त के अंतर में क्या हुआ यह तो भक्त ही जानता है, वह तो ऐसी अनुभूति है कि बाहर से कोई न जान सकेगा, लेकिन फिर भी बाहर कुछ किरणें तो पड़ेंगी; जब घर में दीया जलेगा, तो राह चलते लोगों को भी घर की खिड़की से रोशनी दिखाई पड़ेगी, रंध्रों से रोशनी दिखाई पड़ेगी, कपड़े के छेदों से रोशनी दिखाई पड़ेगी। जब किसी के घर में धूप जलेगी, तो पड़ोसियों के नासापुटों तक भी गंध की कुछ खबरें हवा उड़ाकर ले जाएगी। जब किसी के जीवन में भगवत्ता का अवतरण होता है, तो उसके आसपास भी गंध उड़ती है, रोशनी फैलती है; उसके आसपास की हवा में एक शीतलता, उसके आसपास सुख की भनक, उसके पास एक शांति का वातावरण; उसी वातावरण को पीने तो सत्संग के लिए लोग जाते हैं। उसी हवा को अपनी छाती में भर लेने के लिए, सत्संग के लिए लोग जाते हैं।

पश्चिम में सत्संग को प्रकट करने वाला कोई शब्द नहीं है पश्चिम की भाषाओं में, क्योंकि सत्संग की कला ही विकसित नहीं हुई। पूरब ने कुछ अनूठी बातें दुनिया को दी हैं, उनमें एक सत्संग भी है। सत्संग बड़ी अनूठी प्रक्रिया है। यह इस बात की प्रक्रिया है कि जिसको मिला है, उसके पास बैठेंगे। कुछ कहेगा तो सुन लेंगे, नहीं कहेगा तो भी गुनेंगे, उसके पास बैठेंगे, उसकी हवा में सांस लेंगे, कुछ न होगा उसका चरण ही छू लेंगे, उसके सामने सिर झुकाएंगे, झोली फैलाएंगे, उससे आशीष मांगेंगे, चुप सन्नाटे में उसके पास बैठेंगे; उसके भीतर कोई झरना बह रहा है, शायद कुछ बूंदें हमें भी उपलब्ध हो जाएं; उसके भीतर परमात्मा का फूल खिला है, शायद हमारे कानों में भी, बहरे कानों में थोड़ी भनक पड़ जाए; हमारी अंधी आंखों में शायद एकाध किरण प्रवेश कर जाए—और एक किरण काफी है, फिर सूरज की खोज शुरू हो जाती है—शायद उसके पास बैठे-बैठे परमात्मा की प्राप्ति तो न हो, लेकिन परमात्मा की प्यास जग जाए वह भी क्या कम है!

तो जिन्होंने जाना है, जिन्होंने जीया है, उन्होंने कुछ लक्षण कहे हैं जो भक्त में प्रकट होंगे। महाभारत में कहा है—न क्रोद्यों न च मात्सर्यं न लोभो न शुभा मतिः भवन्ति कृतपुण्यानाम् भक्तानाम् पुरुषोत्तमे।' वहां क्रोध नहीं होगा; वहां क्रोध की जगह करुणा होगी। वहां लोभ नहीं होगा, वहां लोभ की जगह दान होगा।

भेद समझना।

जिसको परमात्मा मिला है, उसे अब तुम कुछ दे भी तो नहीं सकते। अब उसके पास लेने का कोई स्थान भी नहीं बचा है, सारी जगह परमात्मा घेर लेता है। अब तो तुम उससे कुछ ले सकते हो, उसे दे नहीं सकते, उसके सामने झोली फैला सकते हो।

एक धनपति ने एक झेन फकीर के पास जाकर हजार स्वर्णमुद्राओं से भरी हुई थैली जोर से पटकी। जोर से पटकी ताकि बैठे हुए सत्संगी भी आवाज सुन लें सोने की आवाज! कौन नहीं पहचानता? जिनके पास नहीं है वे भी पहचानते हैं। चौंक गए सारे लोग। जो सो गए थे और झपकी खा रह थे—अक्सर लोग धर्म सभाओं में वही करते हैं—उन्होंने भी आंखें खोल दीं; सोने की आवाज! लेकिन फकीर ने झोली को बगल में सरका दिया और कहा—कुछ कहना तो नहीं है। वह आदमी तो जैसे सात आसमानों से गिर गया। वह आया है हजार स्वर्णमुद्राएं—पुराने जमाने की कहानी है जब बड़ा मूल्य था स्वर्णमुद्राओं का—जिंदगीभर की कमाई और यह आदमी ऐसे सरका दिया, और पूछता है—कुछ कहना तो नहीं है! इसने धन्यवाद भी नहीं दिया। इसके चेहरे पर कोई भाव भी नहीं आया। उस धनपति ने कहा—हजार स्वर्णमुद्राएं कम नहीं होतीं, जीवनभर की कमाई है! फकीर ने कहा—तो क्या तुम चाहते हो मैं धन्यवाद दूं? सकुचाया होगा वह धनपति। उसने कहा कि नहीं, धन्यवाद चाहे न भी दें, मगर इतनी उपेक्षा भी न दिखाएं। उस फकीर ने कहा—तुम जो देने आए हो, देने के भाव में ही भ्रांति हो गई है। मुझे मिल गया परमधन अब उसके आगे और कोई धन नहीं है, इसलिए जो यहां देने आता है, वह गलत दृष्टि से आया। यहां आओ तो लेने आओ। यहां आओ तो झोली फैला कर आओ। धन्यवाद तुम मुझे दो कि मैंने तुम्हारा यह कचरा बगल में सरकाकर रख दिया कि ठीक है, चलो ले आए, कोई बात नहीं—क्षमा करता हूं—धन्यवाद तुम मुझे दो। मैं तुम्हें धन्यवाद दूं!

भक्त के जीवन में महाभारत कहती है: क्रोध की जगह करुणा, लोभ की जगह दान, उसके पुण्य के फल पकेंगे, उसके पुण्य की बास फैलेगी, उसके कुछ स्थूल लक्षण पकड़े जा सकते हैं। कृष्ण ने पूरी सूची दी है लक्षणों की—

अभयं सत्त्वसंशुद्धिर्ज्ञानयोगव्यवस्थितिः
दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम्।
अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शांतिर्पेशुनम्
दया भूतेष्वलोलुप्त्वं मार्दवं ह्रीरचापलम्
तेजः क्षमा धृतिः शौचमद्रोहो नातिमानिता
भवन्ति संपदः दैवीमभिजातस्य भारत

हे भारत!—अर्जुन को कृष्ण ने कहा—हे भारत, अभय, चित्तशुद्धि, योगानुराग, दान, संयम, यज्ञ, स्वाध्याय, तप, सरलता, अहिंसा, सत्य, अक्रोध, त्याग, शांति, अलोभ, अहंकारशून्यता, ह्री अर्थात असत कार्यों में सहज संकोच, अचंचलता, तेज, क्षमा, धृति अर्थात सुख-दुख में अविचलभाव, अद्रोह ये सब दिव्यपुरुष के लक्षण हैं। ये उस भक्त में प्रकट होते हैं।

शांडिल्य कहते हैं—भीतर की जो घटना है, वह तो भक्त जानेगा; लेकिन जो भीतर है, वह भी बाहर से तो जुड़ा ही है। यहां कोई भी चीज असंयुक्त नहीं है। तुमने श्वास ली, भीतर गई, फिर वही श्वास बाहर गई—बाहर और भीतर प्रतिक्षण लेन-देन चल रहा है। बाहर और भीतर अलग-थलग नहीं हैं। बाहर और भीतर एक ही ऊर्जा के

दो छोर हैं, एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। इसलिए घटना तो भीतर घटेगी, लेकिन घटना की ध्वनियां बाहर भी सुनाई पड़ेंगी। कुछ बातें सहजता से प्रकट होंगी।

फर्क खयाल में लेना, यही तत्व जिसको तुम महात्मा कहते हो, त्यागी कहते हो, वह भी इन्हीं तत्वों की प्रशंसा करता है। जैसे अहिंसा, दया, त्याग, निर-अहंकारिता—उदाहरण के लिए चार ले लें। महात्मा, त्यागी, विरागी भी इनकी महत्ता बताता है। लेकिन भक्त और उसकी महत्ता बताने में क्या भेद है? बड़ा भेद है। शांडिल्य कहते हैं—भगवान को मिलने से ये गुण अपने-आप प्रकट होते हैं। तुम्हारा तथाकथित तपस्वी कहता है—ये गुण प्रकट हों तो भगवान मिलता है।

इस भेद को खयाल में ले लेना। शांडिल्य कहते हैं—ये लक्षण हैं भक्त के, साधना नहीं। ये तो जो भक्त भगवान में लीन होने लगा, उसमें सहज उठी हुई तरंगें हैं। इनके कारण भगवान नहीं मिलता, भगवान के कारण ये तत्व घटित होते हैं। ये बड़ा क्रांतिकारी भेद है।

इसको ऐसा समझें। तुम्हारे घर में अंधेरा है और मैं तुमसे कहूं कि दीया जलाओ, दीये के जलते ही अंधेरा चला जाता है। तुम तार्किक आदमी हो, तुम सोच-विचार वाले आदमी हो, दार्शनिक हो, तुम इसका गणित बिठाओ—तुम कहो कि ठीक है, कहा गया कि जब प्रकाश होता है तो अंधेरा नहीं होता; अर्थात जब अंधेरा नहीं होता तब प्रकाश होता है। तर्क में तो यह बात ठीक है। अगर तुम इसको जीवन व्यवहार में लाने की कोशिश करोगे तो मुश्किल में पड़ जाओगे। तार्किक रूप से यह बात सच है कि जहां अंधेरा है, वहां प्रकाश नहीं है। जहां अंधेरा नहीं है, वहां प्रकाश। अगर तुम अंधेरे को हटाने में लग जाओ, पोटलियां बांधकर अंधेरे को फेंकने जाओ गड्ढों में, या धक्के देकर अंधेरे को निकालना चाहो, या तलवारें ले आओ और अंधेरे को काट-पीट कर के घर से बाहर कर देना चाहो, तो तुम मुश्किल में पड़ जाओगे। अंधेरा ऐसे नहीं निकलता। प्रकाश आ जाए तो निकलता है। अंधेरा निकालकर प्रकाश नहीं आता, प्रकाश के आने से अंधेरा निकलता है।

यही भक्त की उदघोषणा है।

भक्त कहता है—जीवन में बहुत सी बुराइयां हैं; लेकिन परमात्मा के आ जाने पर ही निकलती हैं। तुम चाहते हो बुराइयां पहले निकाल दें, फिर परमात्मा आए; तो तुम अंधेरा निकालने में लगे हो। परमात्मा है रोशनी। भक्त कहता है मैं जैसा बुरा-भला हूं, रो तो सकता हूं उसके लिए, पुकार तो सकता हूं उसके लिए अपात्र हूं, यह मुझे पता है, लेकिन उसके बिना आए पात्र होऊंगा भी कैसे? उसका ही संस्पर्श मिलेगा तो यह लोहा सोना बनेगा। वही पारस आएगा और छुएगा तो यह अंधकार रोशनी में बदलेगा। इसलिए भक्त कहता है—भगवान को मैं पुकारूंगा; अपनी अपात्रता, अपनी दीनता को समझूंगा और भगवान को पुकारूंगा। मेरी अपात्रता मेरी प्रार्थना में बाधा नहीं बनेगी। अपात्र हूं इसीलिए तो प्रार्थना कर रहा हूं। इसलिए देखते हो, जो पात्र हो जाता है वह प्रार्थना क्यों करेगा। वह दावेदार होता है, प्रार्थना क्यों? वह कहता है इतने उपवास किए, इतने तप किए, घर-द्वार छोड़ा, धन छोड़ा, पद

छोड़ा, पहाड़ पर बैठा रहा इतने वर्षों तक, अब प्रार्थना क्या? अब मिलना चाहिए, यह मेरा हक है, अब यह मेरा अधिकार है। अगर कहीं कोई अदालत हो तो वह परमात्मा पर मुकदमा चलाने के लिए आतुर है। वह कहता है—अभी तक मिले क्यों नहीं? प्रार्थना का सवाल ही क्या है?

प्रार्थना तो भक्त करता है। भक्त कहता है—मेरी योग्यता तो कुछ भी नहीं, तुम मिलो ऐसा दावा तो मेरा कुछ भी नहीं; तुम न मिलो, यह बिलकुल समझ में आता है, मैं इस योग्य ही नहीं हूं कि तुम मुझे मिलो, इसलिए इसमें शिकायत जरा भी नहीं है, शिकवा जरा भी नहीं है, तुम नहीं मिल रहे हो, यह बिलकुल तर्कसंगत है, क्योंकि मैं पात्र ही नहीं हूं, तुम मिलोगे, वही विस्मय-विमुग्ध करेगा मुझे, उस पर ही भरोसा करना मुश्किल हो जाएगा कि मुझ अपात्र को मिले। जब भी परमात्मा किसी के जीवन में उतरा है, तब उसने ऐसा ही अनुभव किया है—मुझ अपात्र को मिले! किस करुणावश?

प्रसाद रूप। प्रयास के फल की तरह नहीं। परमात्मा एक भेंट की तरह मिलता है। जब तुम किसी को भेंट देते हो तो पात्रता थोड़े ही सोचते हो। भेंट में पात्रता नहीं सोची जाती है। भेंट तो प्रेम है।

यही गुण तथाकथित त्यागी ने भी पकड़ रखे हैं, मगर उसकी पकड़ उलटी है। वह सोचता है—अहिंसा पहले; सरलता पहले; अलोभ पहले; अभय पहले। भक्त पूरी प्रक्रिया को उल्टा देता है। शांडिल्य कहते हैं—ये पहले नहीं, ये लक्षण हैं। जब आ जाएगा प्रभु तुम्हारे भीतर, जब तुम्हारे भीतर का दीया जलाएगा, तब दूसरों को अनेक लक्षण दिखाई पड़ने शुरू होंगे। उनको इस तरह बांटा जा सकता है। जिसके भीतर परमात्मा बैठा है, उसे पाने को कुछ नहीं रहा, इसलिए अलोभ। उसके पास देने को इतना है कि जितना दे दे और चुकेगा नहीं, इसलिए दान। परमात्मा बिना प्रयास के मिला है, इसलिए सरलता। परमात्मा बाढ़ की तरह आया है और सब बहाकर ले गया, सब कूड़ा-कर्कट गया, इसलिए शांति। ये सब स्वाभाविक परिणतियां हैं। भक्ति का मार्ग सहज मार्ग है। और इसी अर्थ में वैज्ञानिक भी है। तत् वाक्य शेषात् प्रादुर्भाविषु अपि सा।

जन्म कर्म विदः च अजन्म शब्दात्।

भगवान के जन्म-कर्म का रहस्य जानने वाले पुरुष का भी फिर जन्म नहीं होता। यह भक्त की परम गति कि जिसने जान लिया, परमात्मा को पहचान लिया, छिपा जिसके सामने प्रकट हो गया, रहस्य ने जिसके सामने घूंघट उठा दिये, फिर उसका दुबारा जन्म नहीं होता। जन्म का कोई कारण नहीं रह जाता, क्योंकि खोजने को ही कुछ नहीं बचता। अंतिम घड़ी आ गई।

संसार विद्यापीठ है। जिसने परमात्मा को पा लिया, वह उत्तीर्ण हो गया। जिसने परमात्मा को न पाया, उसे बार-बार आना पड़ेगा। उसे आते ही जाना पड़ेगा। जब तक तुम उत्तीर्ण न हो जाओ, वापस हर वर्ष लौट आना पड़ेगा विश्वविद्यालय में। कोई बिना उत्तीर्ण हुए जगत से पार नहीं जा सकता।

उत्तीर्ण होने का क्या लक्षण होगा? जिसने भगवान के जन्म-कर्म का रहस्य जान लिया। क्या रहस्य है भगवान के जन्म और कर्म का? दो रहस्य—एक, कि भगवान अजन्मा है। और तुम भी अजन्मा हो। भगवान अज है और तुम भी अज हो। प्रारंभ कभी हुआ ही नहीं। प्रारंभ में कोई प्रारंभ था ही नहीं। न कोई अंत है। अस्तित्व अनादि और अनंत है। सब सदा से है, और सब सदा रहेगा। रूप बदलते हैं, आकृतियां बदलती हैं, मगर ऊर्जा वही है। तुम न मालूम कितनी देहों में पहले आए और न मालूम कितनी देहों में और आओगे। लेकिन जो आता रहा, जाता रहा, वह एक ही है। तुम्हारा पक्षी न मालूम कितने-कितने पिंजड़ों में बंद हुआ, और न मालूम कितने आकाशों में उड़ा, और न मालूम कितने रूप धरे, लेकिन जो अंतर्तम था, वह वही है। इस जगत में जो भेद है, वे केवल नाम और रूप के भेद हैं।

परमात्मा के जन्म का जो रहस्य समझ लेगा, उसका अर्थ हुआ, उसने समग्र के जन्म का रहस्य समझ लिया। इस समग्र का कभी कोई जन्म नहीं हुआ है। तुम इस समग्र के हिस्से हो, तुम्हारा कोई भी जन्म नहीं हुआ है। और तभी तुम्हें एक बात खयाल में आ जाएगी, जब जन्म नहीं हुआ तो मृत्यु भी नहीं हो सकती।

बुद्ध मर रहे थे, आखिरी घड़ी आ गई थी, शिष्य रो रहे थे, उन्होंने आंख खोली और आनंद से कहा कि तू रोता क्यों है? आनंद ने कहा—इसलिए रोता हूं कि आप जा रहे हैं। बुद्ध ने कहा मैंने जीवनभर एक ही बात समझाई कि न मैं कभी आया और न कभी जाता हूं; न मेरा कोई जन्म है, न मेरी कोई मृत्यु है; और जिसका जन्म है और जिसकी मृत्यु.है, वह मैं नहीं हूं, वह केवल रूप मात्र है, स्वप्न मात्र। स्वप्न ही बनते और बिखरते हैं, सत्य वैसा का वैसा, जस का तस, ज्यों का त्यों। कृष्ण का वचन है—

जन्म कर्म च मे दिव्यमेव यो वित्ति तत्वतः
त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेत्ति सोऽर्जुन

हे अर्जुन, मैं सत, चित, आनंद रूप हूं, मैं अज और नित्य होने पर भी लोक उपकारार्थ देह धारण करता हूं।

परमात्मा अज है, अजन्मा है और अमृत है। अजा ही अमृत हो सकता है। जो जन्मा है, वह तो मरेगा। जो नहीं जन्मा है, वही नहीं मरेगा। परमात्मा से अर्थ समझ लेना, समग्र का नाम है परमात्मा, कोई व्यक्ति का नाम नहीं है। सारे जोड़ का नाम परमात्मा है—वृक्ष और पहाड़, और स्त्रियां और पुरुष, और नदियां, और चांद-तारे, सबका जोड़। उस जोड़ का कोई जन्म नहीं है। उस जोड़ में मैं भी हूं, तुम भी हो, हमारा भी कोई जन्म नहीं। इसलिए भक्त मृत्यु के भय से मुक्त हो जाता है। जन्म ही नहीं तो मृत्यु कैसे होगी? तुमने मान लिया है कि तुम्हारा जन्म है, इसीलिए तुम मृत्यु से परेशान हो। तुमने एक घड़ी दिन तय कर रखा है कि उस दिन मैं जन्मा था, तो फिर पक्का हो गया कि एक घड़ी दिन तुम्हें मरना होगा। फिर चिंता है। फिर तुम कंपे जा रहे हो, फिर तुम भयभीत हो। उसी भय के कारण धन इकट्ठा करते हो, मकान बनाते हो, पत्नी, बच्चे—किसी तरह से अपने को बचा लें! मिट न जाऊं! जहां से जरा सा

मिटने का डर आता है, वहीं सुरक्षा का इंतजाम करते हो। लेकिन तुम्हारी कोई मृत्यु नहीं है। तुम सदा से हो, तुम सदा रहोगे।

भगवान के जन्म का रहस्य जानकर ही व्यक्ति अपने भी जन्म और जीवन का रहस्य जान लेता है। वही मुक्ति है। फिर लौटना नहीं होगा। और भगवान के कर्म का रहस्य। वहां कोई कर्ता नहीं है; फिर भी सब हो रहा है। भगवान बैठकर यहां एक-एक चीज का हिसाब नहीं कर रहा है कि अब इस झाड़ को पानी चाहिए, और अब इस आदमी को रोटी चाहिए, और अब यह पत्ता पीला पड़ गया है इसको गिराना चाहिए, और अब वसंत आया जा रहा है तो बीज डालने चाहिए, और यह चांद कहीं तिरछा न चला जाए, कहीं रास्ते से न चूक जाए तो सब बैलगाड़ी को ठीक-ठीक हांकते रहना चाहिए, ऐसा कोई भगवान नहीं है जो व्यवस्था कर रहा है। यह व्यवस्था बड़ी स्वाभाविक है, कोई करने वाला नहीं है। यहां कोई बैठा हुआ बीच में इस सारे आयोजन को सम्हाल नहीं रहा है। लोगों की भगवान के प्रति धारणाएं इसी तरह की हैं, वे यही सोच रहे हैं कि कोई सत्ताधारी आज्ञा दे रहा है, जगह-जगह फरमान निकाल रहा होगा कि अब ऐसा होने दो, अब ऐसा होने दो, अब रात हो जाने दो, अब दिन हो जाने दो; अब देर हुई जा रही है, अब जल्दी से सुबह करो, सूरज को निकालो। कोई कहीं कर्ता नहीं है, सब हो रहा है। वैसी ही दशा तुम्हारी भी है, तुम्हारे भीतर भी सब हो रहा है, कर्ता कोई भी नहीं है।

छोटे पैमाने पर तुम इस बड़े विराट का छोटा सा लक्षण हो। तुम अपने भीतर ही खोजकर देखो, भूख लगती है तब कोई भूख लगाता है? जब तुम श्वास भीतर लेते हो तो कोई श्वास भीतर लेता है? जब नींद आती है तो कोई नींद लगाता है? कब तुम बच्चे से जवान हो गए और कब जवान से बूढ़े हो गए, कोई कर रहा है? सब हो रहा है।

इस सूत्र को हृदय में सम्हालकर रखना—सब हो रहा है। जैसे ही तुम्हें यह बात समझ में आ जाए कि सब हो रहा है, सारी चिंताएं समाप्त हो जाती हैं। चिंता यही है कि कहीं ऐसा न हो कि मैं कुछ चूक ज़ाऊं, कुछ कर न पाऊं, कहीं वैसा न हो जाए! चिंता कर्ता की छाया है।

मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं हम चिंता से कैसे मुक्त हों? मैं उनसे कहता हूं—तुम प्रश्न ही गलत पूछते हो, पूछो कर्ता से कैसे मुक्त होऊं? कर्ता रहेगा तो चिंता रहेगी। और अब तुम एक नई चिंता ले रहे हो सिर पर मोल कि चिंता से कैसे मुक्त हों? अब यह भी तुम्हें कर के दिखाना है। अब यह और एक नया कर्ता पैदा होगा कि चिंता से मुक्त होना है।

समझो! कर्ता कोई भी नहीं है। यह सारा का सारा जो हो रहा है, स्वाभाविक है, सहज है, अपने से है, स्वयंभू है। जैसे ही यह बात समझ में आती है, एक विश्राम आ जाता है। फिर कोई चिंता नहीं, फिर जो होता है ठीक ही होता है, जो होगा ठीक ही होगा, जो हुआ ठीक ही हुआ। इसलिए भक्त कोई पश्चात्ताप नहीं करता और न भविष्य की चिंता करता है, न योजना बनाता है। और भक्त के मन में कभी यह द्वंद्व नहीं उठता कि ऐसा कर लेते तो अच्छा होता; वैसा क्यों कह दिया; वैसा क्यों कर

लिया। न, भक्त ने तो छोड़ दिया है अपने को विराट के साथ, जहां ले जाओ, जो करवाओ—अब जैसी उसकी मर्जी।

और ध्यान रखना यह सब भाषा की बात है, जब मैं कहता हूं जैसी उसकी मर्जी, वहां कोई है नहीं जिसकी मर्जी है, मर्जी हो तो वह चिंता से मर जाए। कब का भगवान मर गया होता! जरा सोचो, तुम एक छोटा सा घर सम्हालते हो, मरे जा रहे हो, आत्महत्या का विचार कई दफे उठने लगता है—घर तुम्हारा बड़ा छोटा सा है, कुछ खास सम्हालना भी नहीं है; एक पत्नी है, दो बच्चे हैं, इन्हीं को सम्हालना है, यही तुम्हें काफी सताए डाल रहे हैं! आदमी साठ-पैंसठ के पार होते-होते सोचने लगता है—हे प्रभु, अब उठा लो, अब बहुत हो गया, अब नहीं सहा जाता।

यूरोप और अमरीका में, जहां उम्र लंबी हो रही है क्योंकि चिकित्सकों ने नई-नई औषधियां उपलब्ध कर दीं, लोग अस्सी-नब्बे और सौ तक सहज जी रहे हैं, सौ के पार भी जा रहे हैं, वहां एक नया आंदोलन चल रहा है। वह आंदोलन है—आत्महत्या का अधिकार। तुमने सुना कभी—आत्महत्या का अधिकार! खैर, इस देश में तो नहीं चल सकता, यहां तो अभी जीवन का ही अधिकार नहीं, आत्महत्या का अधिकार का तो सवाल ही दूसरा है! यहां किसी तरह जीवन तो जुट जाए! लेकिन अमरीका में आत्महत्या के अधिकार पर बड़ा विचार चलता है। और दस-पंद्रह साल के भीतर अमरीका के विधान में आत्महत्या का मूलभूत अधिकार जुड़कर रहेगा। जोड़ना ही पड़ेगा। क्योंकि जो आदमी एक सौ बीस साल का हो गया और मरना चाहता है—क्या करे, नहीं जीना चाहता अब! बहुत हो गया! हर चीज की सीमा होती है, किसी भी चीज को सीमा के आगे खींच दो, अड़चन शुरू हो जाती है। अब न उसे रस है, जीवन के सब सपने देख लिए सब व्यर्थ हो गए; जीवन के सब खेल खेल लिए और कुछ पाया नहीं; अब खाट पर पड़े-पड़े सड़ने का क्या प्रयोजन है? और चिकित्सक उसे लटकाए रख सकते हैं। आक्सीजन का सिलिंडर लगाया हुआ है, टांग बांधी हुई है, हाथ अटकाया हुआ है, ग्लूकोज लटकाया हुआ है, वह पड़ा है, वह उसको रख सकते हैं इसी हालत में। यह कोई जिंदगी है! वह पूछता है कि यह इसको जिंदगी कहने का क्या अर्थ है? मैं विदा होना चाहता हूं। लेकिन चिकित्सक को अधिकार नहीं है कि वह आक्सीजन बंद कर दे। क्योंकि चिकित्सक का जो नियम है वह पुरानी दुनिया से बना है, जब जीना ही मुश्किल था। नियम तब बना था। और अब जीने से ज्यादा जीना संभव हो गया है; तो नियम बदल देने होंगे।

हर आदमी एक सीमा पर अनुभव करने लगता है—मर ही जाऊं! तुम जरा परमात्मा की तो सोचो! कभी का या तो पागल हो गया होगा, या कभी की आत्महत्या कर ली होगी, या भाग गया होगा, संन्यासी हो गया होगा, दूर निकल गया होगा संसार से कि अब नहीं लौटना है कभी, सब त्याग करके चला गया होगा। नहीं, वहां कोई भी नहीं है। वहां सन्नाटा है। और जिस दिन तुम इस सत्य को समझ लेते हो कि इतना विराट जगत बिना कर्ता के चल रहा है, उस दिन अपनी इस छोटी सी जिंदगी में क्यों यह कर्ता को बनाना, यह भी चलने दो, यह भी होने दो! इन दो बातों को

समझकर कि इस संसार का न कोई प्रारंभ है, न अंत; और इस संसार को न कोई चलाने वाला है, न कोई नियोजन करने वाला है, यह विराट अपनी ही ऊर्जा से बहा जाता है, यह स्वयंभू है, भक्त भी मुक्त हो जाता है।

जन्म कर्म विदःच अजन्म शब्दात्।

इन दो शब्दों का अर्थ समझ में आ जाए, जन्म और कर्म, कि सब समझ में आ गया।

तत् च दिव्यं स्व शक्ति मात्र उदभवात्।

उनका जन्म कर्म आदि सभी दिव्य और असाधारण हैं; उनकी ही शक्ति से वे नाना रूप दिखाई पड़ते हैं। लेकिन हमें उस परमात्मा का तो कुछ पता नहीं है, वह परमात्मा तो बहुत दूर है, शायद हमारे पास उसे पकड़ने की आंख भी नहीं है, हाथ भी नहीं है, समझने की बुद्धि और प्रतिभा भी नहीं है, इसलिए शांडिल्य कहते हैं—भगवान के अवतारों को समझने की कोशिश करो। भगवान तो पकड़ में नहीं आता, लेकिन राम पकड़ में आ जाते हैं, कृष्ण पकड़ में आ जाते हैं, बुद्ध पकड़ में आ जाते हैं, मोहम्मद पकड़ में आ जाते हैं, इनको पकड़ो, इनको समझो। बुद्ध के होने का क्या प्रयोजन है? बुद्ध को कौन चला रहा है? बुद्ध के भीतर ऐसा कोई भाव उठता है कि मैं अब ऐसा करूं, या जो होता है, होता है? इसमें बीच-बीच में बुद्ध कुछ बाधा डालते हैं, या निर्बाध इस जीवन की धारा को बहने देते हैं?

परमात्मा दूर है, उसका अवतार निकट है। जिन्होंने परमात्मा को जान लिया है, उनका जीवन समझो, तो वहां भी तुम यही पाओगे कि समर्पण है, परम समर्पण है। जैसे वृक्ष में पत्ते लगते हैं और वृक्ष में फूल आते हैं, ऐसा कवि गीत को गाता है, बस ऐसे ही; ऐसे कृष्ण चलते हैं, उठते हैं, बैठते हैं; ऐसे ही बुद्ध बोलते हैं, समझाते हैं; ऐसे ही बुद्ध जीते हैं और विदा हो जाते हैं; इसमें कहीं भी कोई अहंकार बैठकर आयोजन-नियोजन नहीं कर रहा है।

उनका जन्म-कर्म आदि सभी दिव्य और असाधारण है। अवतारों को देखो तो बड़ी असाधारणता पाओगे। क्या असाधारणता है? क्या दिव्यता है? करने वाला कोई नहीं और विराट घटता है। करने वाला कोई भी नहीं। वही तो कृष्ण अर्जुन को बार-बार गीता में समझा रहे हैं कि तू करने वाला मत बन, तू होने दे, जो हो रहा है होने दे, तू उपकरण रह, निमित्त मात्र; तेरी कोई जिम्मेवारी नहीं है, तू अपने को बीच में मत ला, तू शुभ-अशुभ का निर्णय मत कर, तू कौन; तू अपने को विदा कर दे और फिर जो हो, जो परिस्थिति करवाए, कर, वही शुभ है। फल की भी आकांक्षा मत कर, क्योंकि फल की आकांक्षा में कर्ता आ जाता है—कर्ता जीता ही फल की आकांक्षा से है। मैं ऐसा करूं तो ऐसा होगा, मैं ऐसा करूं तो ऐसा मुझे मिलेगा, ऐसा करूं तो यह फल हाथ में आएगा। फल की आकांक्षा छोड़ दे। फल की आकांक्षा छोड़ते ही कर्ता का भाव चला जाता है। फिर प्रयोजन क्या है, जब फल की ही कोई आकांक्षा नहीं है तो जो भी होगा ठीक ही है। होगा तो ठीक है, नहीं होगा तो ठीक है।

इधर मैं तुम्हें रोज समझाता हूं। तुम समझे तो ठीक है, तुम नहीं समझे तो ठीक है। तुम सोचते हो मैं इसका हिसाब रखता हूं कि तुमने समझा कि नहीं समझा।

इससे कोई प्रयोजन नहीं है। जैसे वृक्ष में फूल लग जाते हैं, ऐसे ये शब्द मुझ में लग जाते हैं। अगर तुम भी इस तरह जीओ तो तुम्हारे जीवन में असाधारण दिव्यता आ जाए। थोड़ा इस तत्व का रस लेना शुरू करो। उठो, बैठो, मगर न कोई उठने वाला हो, न कोई बैठने वाला हो। काम भी करो, दुकान पर भी जाओ, बाजार में भी, दफ्तर में भी, मगर न कोई करने वाला हो, न कोई जाने वाला हो। घर की देख-रेख भी करो, जो भी दायित्व है सिर पर पूरा भी करो, लेकिन कोई करने वाला न हो।

दुनिया में दो उपाय हैं बोझ से मुक्त होने के—एक तो यह है कि दायित्व छोड़ दो, भगोड़ा संन्यासी वही करता है। वह दायित्व ही छोड़ देता है; वह कहता है कि न रहेगा बांस, न बजेगी बांसुरी; बात खतम; पत्नी-बच्चों को छोड़कर भाग गए जंगल! वह दायित्व छोड़ देता है। यह कोई असली संन्यास न हुआ। असली संन्यास है दायित्व तो होने दो, कर्ता छोड़ दो। तो भी बोझ चला जाता है। वही असली क्रांति है। यह कोई असली क्रांति न हुई, तुम अगर घर-बच्चे छोड़कर भाग गए, ज्यादा देर न लगेगी, पहाड़ की गुफा में भी बच्चे और पत्नी आ जाएंगे। किसी पहाड़ी स्त्री से लगाव बन जाएगा। तुम अपने से कहां जाओगे? शिष्य इकट्ठे हो जाएंगे, उन्हीं से तुम्हारा भाव हो जाएगा, वही जो तुम्हारा अपने बच्चों से था। उन्हीं से मोह लग जाएगा। कल तुम्हारा शिष्य मर जाएगा तो तुम उसी तरह रोओगे जिस तरह तुम्हारे बेटे के मरने से रोते। तो फर्क क्या हुआ? मकान छोड़कर चले गए, गुफा में बैठ गए, कल गुफा में भूकंप आ जाए और गुफा टूट जाए, तो तुम उसी तरफ दुखी होओगे जैसे मकान के आग लग जाने से हो जाते। भेद क्या पड़ा? तुमने स्थिति बदल ली, मनस्थिति तो वही की वही है। सब छोड़कर चले गए, एक भिक्षापात्र ले गए और रात किसी ने गुफा से चुरा लिया, तो तुम्हारे सुबह मन में वही होगा, वही भाव उठेंगे जो किसी ने तुम्हारी तिजोड़ी खोलकर सारा धन निकाल लिया होता तब उठते। कुछ भेद नहीं पड़ेगा।

असली संन्यास कर्ता का त्याग है, दायित्व का नहीं। वही गीता का अपूर्व संदेश है। गीता ने जगत को ठीक संन्यास की पहली परिभाषा दी। गलत संन्यास बहुत पुराना था, गीता ने एक अनूठे संन्यास की परिभाषा दी। गीता ने कहा—रहो यहीं, जीओ यहीं, और फिर भी भीतर से सब शून्य हो जाए। अर्जुन से वे कह रहे हैं—तू लड़ और भीतर से शून्य भाव से लड़। तू परमात्मा के हाथ में अपने को सौंप दे—परमात्मा यानी समग्र के हाथ में अपने को सौंप दे, फिर उसे जो करवाना हो, करवा ले। जीत होगी कि हार, यह भी विचारणीय नहीं है। तू है ही नहीं करने वाला, तो फिर फल विचारणीय नहीं हो सकता। अगर परमात्मा का जन्म और कर्म बहुत दूर की बात मालूम पड़े, बहुत एब्सट्रैक्ट, हवाई बात मालूम पड़े, तो इस पृथ्वी पर जो कभी-कभी परमात्मा की थोड़ी सी झलक मिलती है, उनमें पहचानने को कोशिश करना। उनमें भी तुम वही पाओगे। वही शून्य भाव। भीतर कोई भी नहीं। कर्म का विराट जाल और कर्ता का अभाव।

मुख्यं तस्य हि कारुण्यम्।

उनकी करुणा ही उनके जन्म आदि का प्रधान कारण है। बुद्ध क्यों बोले?

इसलिए नहीं कि बोलने से प्रसिद्ध होना है, इसलिए नहीं कि बोलने से शिष्यों की भीड़ इकट्ठी करनी है, इसलिए नहीं कि बोलने से कुछ लाभ है, इसलिए बोले कि बोलने से किसी को शायद लाभ हो जाए। इसलिए बोले कि जो मुझे मिल गया है, वह बंटे, शायद किसी के भीतर पड़ा हुआ बीज मेरे शब्दों की चोट से उमग आए; शायद किसी के भीतर पड़ा हुआ तार जिसे कभी छेड़ा नहीं गया, जग जाए—करुणा!

जीवन के दो सूत्र हैं—एक वासना और एक करुणा। अज्ञानी वासना से जीता है, ज्ञानी करुणा से। और पृथ्वी और आसमान का फर्क हो जाता है दोनों में। वासना का अर्थ होता है, मैं यह कर रहा हूं ताकि मुझे वह मिले। करुणा का अर्थ होता है, यह मैं कर रहा हूं ताकि यह मैं दे सकूं। करुणा यानी दान। वासना भिखारी बनाती है, करुणा सम्राट।

मुख्यं तस्य हि कारुण्यम्।

उनकी करुणा ही उनकी जीवन क्रिया-कलाप का आधार है।

प्राणित्वात् न विभूतिषु।

विभूतियों के प्रति की हुई भक्ति पराभक्ति नहीं है, क्योंकि वे प्राणधारी जीव हैं।

शांडिल्य कहते हैं—लेकिन एक बात खयाल रखना किसी भी विभूति संपन्न व्यक्ति को तुम कितना ही आदर दो, भक्ति दो, वह श्रद्धा तक जाएगी, पराभक्ति नहीं हो पाएगी।

मैंने तुम्हें शुरुआत में कहा—प्रीति-तत्व के चार रूप हैं। स्नेह; अपने से छोटे के प्रति, बच्चे के प्रति, शिष्य के प्रति। प्रेम; अपने से समान के प्रति, पति के प्रति, पत्नी के प्रति, मित्र के प्रति, भाई-बंधु के प्रति, पड़ोसी के प्रति। श्रद्धा; अपने से श्रेष्ठ के प्रति, मां के प्रति, पिता के प्रति, गुरु के प्रति। और भक्ति; परमात्मा के प्रति, समग्र के प्रति।

विभूतियों के प्रति जो तुम्हारा भाव है, वह श्रद्धा है। शांडिल्य इस बात को इसलिए कह देना चाहते हैं कि अक्सर यह हो जाता है कि अवतारों से तुम इतने अभिभूत हो जाते हो कि तुम भूल ही जाते हो कि अभी एक कदम और लेना है। गुरु से तुम इतने आक्रांत हो जाते हो कि तुम भूल ही जाते हो कि अभी एक कदम और लेना है। गुरु पर रुकना नहीं है, गुरु पर शुरुआत है। गुरु संसार और परमात्मा की बीच की कड़ी है। गुरु सेतु है, मगर सेतु पर घर नहीं बनाना होता, सेतु से आगे जाना है। सेतु का यही प्रयोजन है। इसलिए सदगुरु तुम्हें रुकने भी नहीं देगा। सदगुरु तुम्हें धक्के देगा। बुद्ध ने कहा है—अगर मैं रास्ते में मिल जाऊं, तो तलवार उठाकर मेरे दो टुकड़े कर देना। अगर मैं भी बाधा आऊं परमात्मा और तुम्हारे मिलने में, बीच में खड़ा हो जाऊं, तो मुझे हटा देना।

रामकृष्ण के गुरु तोतापुरी ने रामकृष्ण से कहा कि एक ही चीज बाधा बन रही है तेरे अनुभव में, तेरी काली। रामकृष्ण तो बहुत रोने लगे, जार-जार होकर रोने लगे, काली को छोड़ने की तो बात ही समझ में नहीं आती, काली यानी परमात्मा! लेकिन तोतापुरी कहता है कि काली ठीक सेतु की तरह; लेकिन अभी एक कदम और लेना

है। और रामकृष्ण के मन में तो काली के प्रति ऐसा प्रेम था कि मजनू का लैला के प्रति नहीं रहा होगा, कि शीरी का फरिहाद के प्रति नहीं रहा होगा, अपूर्व प्रेम था। शायद किसी बेटे ने कभी किसी मां को इतना नहीं चाहा होगा, जैसा रामकृष्ण ने काली को चाहा था। सारी श्रद्धा समर्पित कर दी थी। और उसी को भक्ति मान लिया था, यह इसी बात को शांडिल्य समझाने के लिए, सचेत करने के लिए यह सूत्र दे रहे हैं।

तोतापुरी ने कहा—तुझे यह तो छोड़ना ही पड़ेगा, तू आंख बंद कर...वह जो बुद्ध ने कहा कि मैं राह में मिल जाऊं तो तलवार उठाकर दो टुकड़े कर देना...तोतापुरी ने कहा कि तू आंख बंद कर, उठाकर तलवार काली के दो टुकड़े कर। रामकृष्ण कहने लगे—तलवार वहां कहां से लाऊं! तोतापुरी हंसे और उन्होंने कहा—तू काली को कहां से लाया?

मैंने सुना, एक आदमी नाविक होना चाहता था, नौ-सेना में भर्ती होना चाहता था, उसका परीक्षण चल रहा था, सेनापति ने उससे पूछा कि तुम जहाज पर हो और मान लो तूफान आ जाए, तो क्या करोगे? तो उसने कहा—एक लंगर लटकाऊंगा। सेनापति ने कहा—अगर दूसरा तूफान आ जाए? तो उसने कहा—और एक लंगर लटकाऊंगा। और तीसरा तूफान आ जाए, और चौथा आ जाए, और पांचवां, और छठवां, और सातवां...। और वह आदमी कहता गया, एक लंगर और लटकाऊंगा। उसके सेनापति ने कहा—इतने लंगर लाएगा कहां से? तो उसने कहा—और ये तूफान कहां से लाए जा रहे हैं? जहां से तूफान लाए जा रहे हैं, वहीं से लंगर भी ले आऊंगा। ये तूफान चले आ रहे हैं इतने बड़े-बड़े!

रामकृष्ण ने कहा कि तलवार कहां से लाऊं? तोतापुरी ने कहा कि काली को कहां से लाया? जिस कल्पना से काली को आरोपित किया है भीतर, जिस भावना से काली को आरोपित किया है भीतर...रामकृष्ण तो आंख बंद करते कि सामने काली खड़ी हो जाती! वह मधुर रूप, वह लावण्य, वह ऊर्जा, वह ज्योति, वह तो अभिभूत हो जाते, आंसुओं की धार बहने लगती।

बहुत दिन तोतापुरी ने बिठाया, लेकिन रामकृष्ण भीतर जाते, भूल ही जाते; घंटा, आधा घंटे बाद जब लौटते तो तोतापुरी कहता—किया? वह कहते—मैं तो भूल ही गया। इतनी सुंदर है मां कि कैसे काटूं, आप बात क्या करते हैं! आपकी बात मान भी लेता हूं तो भी मेरा मन तो राजी नहीं होता। तोतापुरी ने कहा तो फिर मैं जाता हूं—तोतापुरी आदमी अदभुत था, पहुंचे हुए परमहंसों में एक था—फिर मैं जाता हूं, फिर तू अटका रह। रामकृष्ण समझते तो थे यह बात, यह बात कहीं समझ में भी आती थी कि यह कल्पना तो मेरी ही है, अभी मैंने उसे नहीं जाना है जो है, अभी तो मैंने उसे जाना है जिसे माना है, अभी परमात्मा का रूप मेरे सामने प्रकट नहीं हुआ, अभी तो आकृति है यह, अभी अरूप और निराकार का अनुभव नहीं हुआ है, तोतापुरी चला गया तो यह आखिरी संभावना गई, तो रामकृष्ण ने पैर पकड़ लिए कि नहीं जाए न, आखिरी मौका दें!

तोतापुरी ने कहा—बस यह आखिरी, और मैं भी आखिरी उपाय करता हूं।

वह बाहर गया और बोतल का एक टूटा हुआ टुकड़ा ले आया और उसने कहा कि जब तुम आंख बंद करोगे और जब मैं देखूंगा आंसू बहने लगे, काली आ गई, तो मैं तुम्हारे माथे पर जहां तीसरा नेत्र होता है वहां इस कांच के टुकड़े से काटूंगा, लहू की धार बह जाएगी बाहर, तुम्हें भीतर पीड़ा होगी, जैसे ही तुम्हें पीड़ा अनुभव हो, तो याद रखना कि यह आखिरी उपाय है, फिर मैं चला जाऊंगा, जैसे ही भीतर तुम्हें अनुभव में हो कि तोतापुरी मेरा माथा काट रहा है, तब चूकना मत, उठाकर तलवार और दो टुकड़े कर देना; जैसे मैं तुम्हारा माथा काटूं, ऐसे ही तुम काली को भी काट देना।

काली की प्रतिमा खड़ी भी वहीं तीसरे नेत्र में होती है। तुम जो भी कल्पना करते हो, वह तीसरे नेत्र में ही होती है। तीसरे नेत्र को योग ने आज्ञाचक्र कहा है। वहां तुम जो आज्ञा करोगे, वही हो जाएगा। वहां कल्पनाएं साकार हो जाती हैं। वहां हर कल्पना साकार हो जाती है। वहीं तुम रात सपना देखते हो, तीसरे नेत्र में, ये दो नेत्र बंद होते हैं, सपना तीसरे नेत्र में देखा जाता है; और इसीलिए चूंकि आज्ञाचक्र में सपना देखा जाता है, सपने पर तुम्हें भरोसा आ जाता है। रात सपने को देखते हो तब तुम मानते हो कि सपना सच है। सपने में याद ही नहीं पड़ता कि सपना झूठ है। आज्ञाचक्र इसीलिए उस चक्र को कहा है कि वहां तुमने जो देखा वही सत्य हो जाता है, वहां तुम्हारी आज्ञा काम करती है। कल्पनाजीवी लोग वहीं कल्पना के रूप-प्रतिबिंब देखते हैं। वहीं चित्रकार अपने चित्र देखता है, कवि अपनी कविताएं देखता है, वहीं संगीतज्ञ संगीत के नये भाव, अर्थ, भंगिमाएं देखता है, वहीं वैज्ञानिक अपने आविष्कार करता है। वहीं रामकृष्ण अपने प्रतिमा को खड़ा करते थे।

तोतापुरी ने ठीक जगह चुनी। तीसरे नेत्र को काटा। उस पीड़ा में रामकृष्ण ने भी हिम्मत की और तलवार उठाकर काली के दो टुकड़े कर दिये। काली के दो टुकड़े होकर गिरना कि विराट खुल गया। आज्ञाचक्र से छलांग लग गयी। आज्ञाचक्र कट गया। काली नहीं कटी, आज्ञाचक्र दो टुकड़ों में कट गया, आज्ञाचक्र से ऊपर छलांग लग गयी, सातवें चक्र में छलांग लग गयी—सहस्रार में। वहां खिल गया कमल सहस्रदल।

छह दिन तक रामकृष्ण बेहोश रहे। सहस्रार से उतरना मुश्किल हुआ। अनुभव इतना आनंद का है कि कौन उतरना चाहे! फिर लौटना कौन चाहे! जब लौटे तो जो पहला शब्द उनके मुंह से निकला—वह धन्यवाद का था तोतापुरी के लिए। चरणों में गिर पड़े और कहा, मेरी आखिरी बाधा तुमने छीन ली। आखिरी बाधा।

गुरु आखिरी बाधा है, अगर रुको तो; नहीं तो आखिरी साधन है, बढ़ो तो। तुम पर निर्भर है। अगर बढ़ो, तो गुरु आखिरी साधना है, आखिरी सीढ़ी, आखिरी सोपान, उसके बाद परमात्मा है। इसलिए तो गुरु को ब्रह्मा कहा है—गुरुर्ब्रह्मा—बिलकुल आखिरी है, बस उसके बाद एक कदम और कि परमात्मा है; गुरु और ब्रह्मा, बस पास-पास खड़े हैं, पड़ोसी हैं। लेकिन गुरु पर मत रुक जाना, नहीं तो ऐसा न हो जाए कि गुरु ब्रह्म को आड़ में दे दे, आड़ में कर दे।

असदगुरु वही है जो तुम्हारे और तुम्हारे परमात्मा के बीच में खड़ा हो जाए और रुकावट डालने लगे। सदगुरु वही है जो ले जाए आज्ञाचक्र तक और फिर हट

जाए। काली तो स्वयं नहीं हट सकती थी, क्योंकि काली तो सिर्फ रामकृष्ण की कल्पना थी। लेकिन सदगुरु स्वयं हट सकता है। फिर भी सदगुरु अपने आप नहीं हट सकता है, जब तक शिष्य साथ न दे। अगर शिष्य जिद करे कि मैं पकड़े ही रहूंगा, तो सदगुरु के भी बाहर है बात। इसलिए सदगुरु प्रारंभ से ही शिष्य को इस भांति तैयार करता है—एक तरफ लगाव भी लगाता है, एक तरफ प्रेम भी करता है, एक तरफ पास भी बुलाता है, दूसरे हाथ से हटाता भी है। दोनों तरह से तैयार रखता है कि जब आखिरी घड़ी आए तो ऐसा न हो कि एकदम हटाने में कठिनाई हो जाए, तुम हटने को राजी न होओ; तुम कहो—अब तक इतने प्रेम से बुलाया है, इतने प्रेम से सम्हाला, आज अचानक इनकार करने लगे, वह भाषा ही समझ में न आए!

इसलिए सदगुरु एक हाथ से निमंत्रण देता है, एक हाथ से चोट करता है। कबीर ने कहा है—जैसे कि कुम्हार घड़े को बनाता है, भीतर से सम्हालता है, बाहर से थपकी मारता है; एक तरफ से सम्हालता है कि भाग जाओ, दूसरी तरफ से चोट भी करता है; और जैसे-जैसे तुम करीब आने लगते हो, वैसे-वैसे गहरी चोटें करता है, क्योंकि आखिरी चोट का दिन भी करीब आएगा। जल्दी ही, जब उसे बिलकुल हट जाना होगा। उसके हटने में ही द्वार खुलेगा। इसलिए—

'प्राणित्वात न विभूतिषू।'

विभूतियों से, उस परमात्मा की विभूतियों से इतने मत जुड़ जाना, ऐसा मत समझ लेना कि यही पराभक्ति है। श्रद्धा है, लेकिन अभी एक कदम और उठाना है, श्रद्धा के भी पार जाना है। और तुम पार जा सकते हो, क्योंकि तुम पार हो। सिर्फ याद, सिर्फ स्मृति दिलानी है तुम्हें।

मैं शोला था—मगर यों राख के तूदे ने सर कुचला
कि इक सीले-से पेचो-खम में ढल जाना पड़ा मुझको
मैं बिजली था—मगर वह बर्फ-आगीं बदलियां छायीं
कि दबकर उन चट्टानों में पिघल जाना पड़ा मुझको
मैं तूफां था—मगर क्या कहिये उस तिश्ना समंदर को
कि सर टकरा के साहिल ही से रुक जाना पड़ा मुझको
मैं आंधी था—मगर वह ख्वाब-आलूदा फजा पायी
कि खुद अपनी ही ठोकर खाकर झुक जाना पड़ा मुझको
मगर अब इसका रोना क्या है, क्या था देखिये क्या हूं
मैं इक ठहरा हुआ शोला हूं, इक सिकुड़ी हुई बिजली
असर नश्वो-नुमा पर डाल ही देता है गहवारा
मैं एक सिमटा हुआ तूफां हूं, इक सहमी हुई आंधी
मगर माबूदे-बेदारी! कहीं फितरत बदलती है
धुएं को गर्म होने दे, भड़कना अब भी आता है
मेरी जानिब से इतमीनान रख, आतिशनवा रहबर
जरा बादल तो टकराएं कड़कना अब भी आता है

थपेड़े हां, यूं ही पैहम थपेड़े, मौजे-आजादी
बहा दूंगा मताए-किश्ते-महकूमी, बहा दूंगा
झकोले, हां यही बरहम झकोले सरसरे-हस्ती
हिला दूंगा तजाहे-जीस्त की चूलें, हिला दूंगा

मैं शोला था—मगर यों राख के तूदे ने सर कुचला। मैं तो अंगारा था, लेकिन राख का ढेर इस तरह मेरे ऊपर सवार हो गया कि मैं भूल ही गया कि मैं कौन हूं। ऐसी तुम्हारी दशा है।

मैं शोला था—मगर यों राख के तूदे ने सर कुचला
कि इक सीले-से पेचो-खम में ढल जाना पड़ा मुझको
मैं बिजली था—मगर यह बर्फ-आगीं बदलियां छायीं
ये बर्फीली बदलियां आ गयीं, मैं तो बिजली था।
मगर यह बर्फ-आगीं बदलियां छायीं
कि दबकर उन चट्टानों में पिघल जाना पड़ा मुझको
मैं तूफां था—मगर क्या कहिये उस तिश्ना समंदर को
—प्यासे समंदर को क्या कहें!
मैं तूफां था—मगर क्या कहिये उस तिश्ना समंदर को
कि सर टकराके साहिल ही से रुक जाना पड़ा मुझको
मैं आंधी था—मगर वह ख्वाब-आलूदा फजा पायी
ऐसी गहरी नींद आ गयी, ऐसी गहरी नींद की संभावना पायी थी—
मैं आंधी था—मगर वह ख्वाब-आलूदा फजा पायी
कि खुद अपनी ही ठोकर खाकर झुक जाना पड़ा मुझको
मगर अब इसका रोना क्या है, क्या था, देखिए क्या हूं
मैं इक ठहरा हुआ शोला हूं, इक सिकुड़ी हुई बिजली
असर नश्वो-नुमा पर डाल ही देता है गहवारा
मैं इक सिमटा हुआ तूफां हूं, इक सहमी हुई आंधी यही तुम हो, यही सब हैं।
मैं इक सिमटा हुआ तूफां हूं, इक सहमी हुई आंधी
मगर माबूदे-बेदारी!...
मगर हे परमात्मा!
...कहीं फितरत बदलती है
कहीं स्वभाव बदलता है!
मगर माबूदे-बेदारी! कहीं फितरत बदलती है

तूफान तूफान रहता है, कितना ही सिकुड़ जाए। और अंगारा अंगारा रहता है, कितना ही राख में दब जाए। और आंधी आंधी रहती है, कितनी ही नींद में खो जाए।

मगर माबूदे-बेदारी! कहीं फितरत बदलती है
धुएं को गर्म होने दे, भड़कना अब भी आता है
मेरी जानिब से इतमीनान रख, आतिशनवा रहबर

जरा बादल तो टकराएं, कड़कना अब भी आता है

जरा मौके की तलाश है, ठीक समय ठीक अवसर, ठीक भूमि मिल जाए, ठीक सत्संग मिल जाए, तो अभी राख गिर जाए और अंगारा फिर प्रकट हो जाए। ठीक साथ मिल जाए, ठीक हाथ मिल जाए, तो जो बिलकुल भूल गया है, जो बिलकुल विस्मृत हो गया है, वह पुनः याद आ जाए; फिर दीया जल जाए।

मेरी जानिब से इतमीनान रख आतिशनवा रहबर
जरा बादल तो टकराएं, कड़कना अब भी आता है
मगर माबूदे-बेदारी! कहीं फितरत बदलती है
धुएं को गर्म होने दे, भड़कना अब भी आता है
थपेड़े, हां, यूं ही पैहम थपेड़े, मौजे-आजादी
थपेड़े आते रहें, आने दे; स्वतंत्रता की लहरें आती रहें, आने दे—
थपेड़े, हां, यूं ही पैहम थपेड़े, मौजे-आजादी
बहा दूंगा मताए-किश्ती-महकूमी बहा दूंगा

आने दे स्वतंत्रता की लहरों को, इन थपेड़ों को आते रहने दे लगातार, तो यह जो दासता की संपदा है, यह जो कूड़ा-कर्कट गुलामी का इकट्ठा हो गया है—

बहा दूंगा मताए-किश्ती-महकूमी, बहा दूंगा
झकोले, हां यही बरहम झकोले, सरसरे-हस्ती
जीवन की यह गर्म हवा आने दे।
हिला दूंगा तजाहे-जीस्त की चूलें, हिला दूंगा
जीवन की असंगतियों की जो बुनियाद है, उसे हिला दूंगा।
हिला दूंगा तजाहे-जीस्त की चूलें, हिला दूंगा

कुछ बदला नहीं है; एक सपने में भला खो गये हो, लेकिन सत्य से वंचित नहीं हो गये हो। नींद भला आ गयी है, आंख खुल सकती है। नशा भला छा गया है, नशा टूट सकता है। राख घिर गयी है, राख उड़ सकती है। सत्संग चाहिए; किसी अंगारे का साथ चाहिए जिसकी राख उड़ गयी हो।

इसलिए शांडिल्य ने सत्संग की बड़ी महिमा गायी है। जहां चार प्रेमी इकट्ठे होते हो और परमात्मा की बात करते हों, सब छोड़कर वहां बैठ जाना। जहां चार आदमी परमात्मा की प्रशंसा के गीत गाते हों, अपने अनुभव की बात करते हों, रोते हों, रोमांचित होते हों, वहां दूर-दूर खड़े मत रह जाना, वहां दर्शक बनकर मत बैठे रह जाना, वहां डुबकी लगा लेना, वहां उनके साथ जुड़ जाना, नाचना, गाना, रोमांचित होना। तुम्हारे भीतर जो छिपा है, वह भी प्रकट हो सकता है।

आज इतना ही।

प्रवचन 10

अद्वैत प्रीति की परमदशा है

प्रश्नसार

भक्ति सहज, इसलिए वैज्ञानिक।
सहज को वैज्ञानिक कहने का आपका आशय क्या है?

प्रीति अद्वैत है
तो अद्वैत के नाम पर जो कहा जाता रहा है, वह क्या है?

भगवान बुद्ध और भगवान कृष्ण के दो परस्पर विरोधी लगने वाले वचनों पर
प्रकाश डालने के लिए भगवान से अनुरोध।

प्रवचन के बाद आपको जाते हुए देखती हूं तो
एक निःश्वास निकल जाती है कि एक दिन और व्यर्थ गया।
कि एक दिन यह दिव्यपुरुष ऐसे ही आंखों से ओझल हो जाएगा
और ऐसे ही खड़ी-खड़ी देखती रह जाऊंगी।

मैं अपना प्रेम प्रकट नहीं कर पाया।
न मालूम कौन से भय ने पंगु बना रखा है।
यह अविकसित प्रेम कैसे भक्ति बनेगा?

अब हम करें क्या?

पहला प्रश्नः कल आपने कहा—भक्ति सहज है, इसलिए वैज्ञानिक है। सहज को वैज्ञानिक कहने का आपका आशय क्या है? कृपा करके कहिये।

विज्ञान के बहुत अर्थ हैं। जो सर्वाधिक आधारभूत अर्थ है, वह है स्वभाव की खोज; सहज की खोज। जीवन के भीतर जो छिपा हुआ ऋत, ताओ, महानियम है, उसकी खोज। अंततः पदार्थ में ही जो छिपा है उसकी खोज नहीं, अंततः उसकी भी खोज जो चेतना में छिपा है। पदार्थ पर विज्ञान का प्रारंभ है, अंत नहीं। और जिस विज्ञान का अंत पदार्थ पर हो जाए, वह अधूरा विज्ञान। और अधूरे सत्य असत्यों से भी ज्यादा खतरनाक होते हैं। क्योंकि वे सत्य जैसे प्रतीत होते है और सत्य नहीं होते।

असत्य को तो पहचाना जा सकता है, आज नहीं कल समझ में आ जाएगा असत्य है, और समझ में आते ही छुटकारा हो जाएगा, आधा सत्य बड़ा खतरनाक होता है। उस में सत्य की भ्रांति बनी ही रहती है, बनी ही रहती है। और आधा सत्य सत्य होता नहीं, क्योंकि सत्य को खंडों में नहीं बांटा जा सकता। सत्य अविभाज्य है, अखंड है। होगा तो पूरा होगा, नहीं होगा तो बिलकुल नहीं होगा।

विज्ञान पदार्थ से शुरू होता है, लेकिन पदार्थ पर समाप्त नहीं हो सकता, नहीं होना चाहिए। जब पदार्थ के आधारभूत नियम जान लिये जाएंगे, तो उसी जानने से चेतना की तरफ यात्रा अपने आप होती है। इसलिए विज्ञान का जो सर्वाधिक नया कदम है, वह मनोविज्ञान है। सब से पुराना कदम है—भौतिकशास्त्र, सब से नया कदम है—मनोविज्ञान।

इसका अर्थ समझो।

शुरू हुआ भूत से, पदार्थ से, अब यात्रा मन की हो गयी शुरू। मन मध्य है,

अंत नहीं। जिस दिन विज्ञान आत्मा की खोज में तल्लीन हो जाएगा, उस दिन विज्ञान ने अपना शिखर छुआ, अपनी मंजिल पायी। अंततः पृथ्वी पर धर्म और विज्ञान जैसी दो चीजें नहीं रहेंगी, नहीं रहनी चाहिए। धर्म भी अधूरा है। धर्म की देह नहीं है। धर्म प्रेत है, आत्मा-आत्मा। आत्मा कहीं देखी है? आत्मा कहीं अलग होती है? और कहीं आत्मा अलग मिल जाए तो प्राण कंप जाएंगे, भूत का अनुभव होगा, प्रेत का अनुभव होगा। धर्म चूंकि आधा है, इसलिए प्रेत जैसा है। रक्त-मांस-मज्जा की देह नहीं है। और विज्ञान भी आधा है, वह मरी हुई लाश जैसा है, उस में आत्मा नहीं है। एक तरफ मरी हुई लाश है, एक तरफ प्रेतात्मा है। इन दोनों का जिस दिन मिलन होगा, उस दिन जीवन फलेगा। अंतिम रूप से दुनिया में विज्ञान ही होगा, या उसे धर्म कहो, फिर तो नाम का ही भेद रह जाता है। विज्ञान शब्द भी बुरा नहीं है। ज्ञान से ही बनता है। विशेष ज्ञान अर्थात विज्ञान। जब ज्ञान गहराई ले लेता है तो विज्ञान हो जाता है। जब ज्ञान असली गहराई लेगा तो आत्मा और पदार्थ, प्रकृति और पुरुष, देह और आत्मा, दोनों का संस्पर्श होगा। इसलिए मैं विज्ञान की परिभाषा करता हूं—स्वभाव की खोज, सहज की खोज, आधारभूत ऋत, नियम की खोज।

इसी अर्थ में मैंने कहा भक्ति सहज है, इसलिए वैज्ञानिक है।

जिस को तुम वैराग्य कहते हो, इतना सहज नहीं है। क्योंकि वैराग्य में संसार का विरोध है। भक्ति में अविरोध है। जहां विरोध है, वहां जटिलता होगी। जहां विरोध है, वहां द्वेष होगा। जहां द्वेष है, वहां अड़चन है, वहां संघर्ष है, वहां सरलता नहीं हो सकती; वहां सतत भीतर युद्ध छिड़ा रहेगा, वहां शांति नहीं हो सकती। विरागी, त्यागी शांत होने की चेष्टा करता है, हो नहीं पाएगा। क्योंकि जिनसे वह लड़ रहा है, जिन तत्वों को समाहित नहीं कर रहा है, वे तत्व उस से बदला लेंगे। वे तत्व उसे ऐसे ही छोड़ नहीं देंगे, वे उस का पीछा करेंगे। भागो गुफाओं में, जिनसे तुम भागे हो, उन्हें तुम गुफाओं में मौजूद पाओगे। जिससे भागोगे, वह तुम्हारा पीछा करेगा। जिससे बचोगे, बार-बार सामने आ जाएगा।

क्रोध से भागो और तुम्हारी पूरी जीवन ऊर्जा क्रोध से विकृत हो जाएगी। काम से भागो और तुम काम ही काम से भर जाओगे। तुम्हारा चित्त काम की ही मवाद से भर जाएगा। भागो मत, जागो। भागो मत, जीओ। संसार को उसकी समग्रता में जीओ।

भक्ति भगोड़ापन नहीं सिखाती। भक्ति कहती है, यह परमात्मा का संसार है, भागना क्यों? इसीमें कहीं छिपा होगा, छीया-छी खेल रहा है; जरा पर्दे उठाओ, यहीं कहीं उसे छिपा पाओगे। छिपा है वृक्षों में, पहाड़ों में, पर्वतों में, लोगों में—हर पर्दे के पीछे वही है। पर्दा उठाना आना चाहिए। प्रेम पर्दे को उठाने की कला है। जबर्दस्ती की जरूरत नहीं है। तुम्हारा किसी से प्रेम होता है, उसका घूंघट तुम उठा सकते हो—जबर्दस्ती की जरूरत नहीं है। प्रेम न हो, तो घूंघट उठाना हिंसा होगी। प्रेम हो तो सम्मान होगा।

जो लोग अस्तित्व को बिना प्रेम किये इसका घूंघट उठाना चाहते हैं, वे बलात्कार करना चाहते हैं। इसलिए मैंने बहुत बार कहा है कि तुम्हारा तथाकथित वैज्ञानिक अधूरा है और बलात्कारी है। वह प्रकृति को जबर्दस्ती जानना चाहता है। वह प्रकृति के रहस्यों को

संगीन की धार पर खोल लेना चाहता है। भक्त भी खोलता है रहस्यों को, तलवार लेकर नहीं हाथ में, वीणा लेकर। भक्त के लिए भी प्रकृति अपना पर्दा उठाती है, लेकिन उसके नृत्य के कारण, उसके गीत के कारण, उसकी प्रीति के कारण।

विज्ञान अधूरा रहेगा, अगर तर्क ही उसका एकमात्र शास्त्र होगा। जिस दिन प्रीति भी उसके शास्त्र का अंग होगी, उसी दिन विज्ञान पूर्ण होगा। उस दिन दुनिया के जीवन में बड़ा सूर्योदय होगा। उस दिन पूरब-पश्चिम मिलेंगे। अभी नहीं मिल सकते। अभी पूरब आधे सत्य को पकड़े बैठा है—धर्म, पश्चिम आधे सत्य को पकड़े बैठा है—विज्ञान। अभी पूरब और पश्चिम का मिलन नहीं हो सकता। पूरब और पश्चिम उसी दिन मिलेंगे, जिस दिन ये आधे सत्य हाथ से हट जाएंगे और पूरे सत्य को अंगीकार करने की क्षमता हम में होगी। पूरे सत्य को अंगीकार करने लिए बड़ा दुस्साहस चाहिए।

आधा सत्य ज्यादा साहस नहीं मांगता। क्यों? क्योंकि पूरा सत्य विरोधाभासी होता है। वहीं अड़चन है। परमात्मा दिन भी है और रात भी, बस यहीं अड़चन है। और परमात्मा संसार भी है और निर्वाण भी, यहीं अड़चन है।

जो कायर हैं, उनमें से कुछ कहते हैं—परमात्मा संसार ही है, और कोई परमात्मा नहीं। यही तो नास्तिक कहता है, कम्यूनिस्ट कहता है। उस का कहना क्या है? वह कहता है, बस यही जीवन सब कुछ है, और कोई जीवन नहीं। तुम्हारा तथाकथित विरागी और ज्ञानी क्या कहता है? वह कहता है—यह संसार माया है, झूठा है, परमात्मा सच है। नास्तिक कहता है—परमात्मा झूठा है, संसार सच है। आस्तिक कहता है—संसार झूठा है, परमात्मा सच है। दोनों की छाती बड़ी नहीं है। यह कहने की दोनों हिम्मत नहीं जुड़ा पाते कि दोनों सच हैं, सच तो यह है कि दोनों एक ही सत्य के दो पहलू हैं।

इस के लिए विशाल हृदय चाहिए, जो विरोधाभास को समा ले। छोटी-छोटी बुद्धियां इसे नहीं समा सकतीं। छोटी बुद्धि कह सकती है—संभोग सच है, कि समाधि सच है। विराट हृदय ही कह सकता है—संभोग, समाधि दोनों सच हैं। वासना, करुणा दोनों सच हैं। काम और राम, दोनों सच हैं। एक ही सीढ़ी के पहलू हैं। काम की ही यात्रा राम तक होती है। पदार्थ ही शुद्ध होते-होते, होते-होते परमात्मा हो जाता है। परमात्मा ही अशुद्ध होते-होते, होते-होते पदार्थ हो जाता है। संसार परमात्मा का अशुद्ध रूप है, बस। परमात्मा संसार का शुद्ध रूप है, बस।

लेकिन परमात्मा जीवन है, यह स्वीकार करना आसान मालूम पड़ता है। जब तुम कहते हो—परमात्मा जीवन और मृत्यु दोनों है, तो बड़ी अड़चन होती है। तर्क कहता है, जीवन और मृत्यु, दोनों? दोनों कैसे होगा? दोनों नहीं हो सकता। तर्क की भाषा है—यह या वह। तर्क हमेशा बांटता है। तर्क कहता है—परमात्मा या तो पुरुष होगा, या स्त्री होगा। जो परमात्मा को पुरुष मानते हैं, वे उसको स्त्री नहीं मान सकते। जो उसको स्त्री मानते हैं, वह पुरुष नहीं मान सकते। क्योंकि तर्क कहता है—दोनों कैसे होगा?

तुमने अर्द्धनारीश्वर की प्रतिमा देखी? वह भक्तों ने खोजी। वह प्रेमियों ने खोजी। जिन्होंने कहा परमात्मा दोनों है—आधा स्त्री, आधा पुरुष। तुमने प्रतिमा देखी

भी हो तो भी तुमने अंगीकार नहीं की है। भीतर से तो होता ही रहता है—यह कैसे होगा! आधा पुरुष, आधा स्त्री! एक अंग स्त्री का, एक अंग पुरुष का! यह कैसे होगा! यह तो बड़ा बेबूझ मालूम पड़ती है बात, यह तो पहेली हो गयी। या तो पुरुष, या तो स्त्री। इदर-आर तर्क की भाषा है। यह या वह। चुन लो।

चुनाव तर्क की भाषा है। प्रीति की भाषा अचुनाव है। उस अचुनाव को ही मैं परम विज्ञान कहता हूं।

दूसरा प्रश्नः शांडिल्य कहते हैं—प्रीति, भक्ति अद्वैत है। तो अद्वैत के नाम पर जो कहा जाता रहा है, वह क्या है?

अधिकतर शब्द ही हैं वे। क्योंकि जिस ने प्रीति नहीं जानी, वह अद्वैत नहीं जानेगा। अद्वैत प्रीति की परम दशा है। जिस ने प्रीति नहीं जानी, उस का अद्वैत तार्किक निष्पत्ति है। गणित उसने हल किया है! उस के अद्वैत में प्राण नहीं हैं। उस का अद्वैत रूखा-सूखा, निष्प्राण है। उस के अद्वैत में फूल नहीं लगेंगे। और उस के अद्वैत में कोई स्वर पैदा नहीं होगा। उस का अद्वैत मरघट का अद्वैत है। जिस ने प्रीति जानी, उस ने ही असली अद्वैत जाना।

असली अद्वैत का क्या अर्थ?

असली अद्वैत का अर्थ होता है, दो में से एक को छोड़ नहीं देना है, फिर तो अद्वैत हुआ ही नहीं। तुम्हारा अद्वैतवादी कहता है—संसार माया है, झूठ है, है ही नहीं। यह क्या अद्वैत हुआ! एक को काट दिया। फिर तो मार्क्सवादी भी अद्वैतवादी है। वह कहता है कोई परमात्मा नहीं, कोई आत्मा नहीं, बस जड़ है, पदार्थ है, कोई चेतना नहीं। यह भी अद्वैत है। आस्तिक, नास्तिक दोनों अद्वैतवादी हैं। और मैं मानता हूं कि दोनों केवल तर्क से चल रहे हैं, अनुभव नहीं है। भक्त को अनुभव है। भक्त कहता है—अद्वैत है और ऐसा अद्वैत है कि दोनों उस में समाये हैं, और दोनों उस में जी सकते हैं।

यह अनुभूति प्रेम में ही होती है। प्रेम बड़ी विचित्र अनुभूति है। प्रेमी और प्रेमिका दो होते हैं और फिर भी अनुभव करते हैं कि एक हैं। उनका अनुभव बड़ा समृद्ध अनुभव है। अगर प्रेमी अपनी हत्या कर ले और कहे कि बस प्रेयसी है मैं नहीं हूं, तो प्रेम समाप्त हो जाएगा। या प्रेयसी की हत्या कर दे और कहे कि मैं ही हूं, प्रेयसी कहां है, तो भी प्रेम समाप्त हो जाएगा। दो के बीच एक जीए, तो ही श्वास लेता है, नहीं तो श्वास नहीं ले सकेगा।

और यही प्रेमी करते हैं जीवनभर। तुम्हारे तथाकथित प्रेमी इसी कोशिश में लगे रहते हैं। पति कोशिश में रहता है—पत्नी मिट जाए; पत्नी की कोई आवाज न हो, उस का कोई स्वर न हो, वह मेरी अनुगामिनी हो, मेरी छाया हो, मैं जहां जाऊं वहां छाया की तरह मेरे पीछे जाए। पति चाहता है पत्नी की कोई स्वतंत्रता न हो, पत्नी दासी हो; मैं स्वामी, पत्नी दासी। यह प्रेम की हत्या शुरू हो गयी। प्रेम तो दोनों के जीते जी ही हो सकता है—दोनों परिपूर्ण स्वतंत्रता में हों और फिर भी दोनों के हृदय अनुभव करते हों

कि हम एक हैं। एकता अनुभव हो। पत्नी भी यही कोशिश करती है कि पति को मिटा डाले। दोनों की कोशिश अलग-अलग ढंग की होती हैं, क्योंकि दोनों के मनोविज्ञान अलग होते हैं। पति के ढंग जरा स्थूल होते हैं—मारपीट कर देगा। पत्नी के ढंग जरा सूक्ष्म होते हैं—जरूरत पड़ेगी तो अपने को ही मारपीट लेगी। मगर चेष्टा दोनों की एक ही है। पत्नी जरा परोक्ष ढंग से पति को अपने कब्जे में लेना चाहती है।

अक्सर यह होता है कि तुमने विवाह किया कि पत्नी तो नहीं मिलती है एक गुरु मिल गया, जो तुम्हें सुधारने में लग जाते हैं कि अब सिगरेट न पीओ, अब पान न खाओ, अब दस बजे के बाद जगो मत, अब ब्रह्ममुहूर्त में उठो, और अब ऐसा करो और अब वैसा करो। पत्नियां अक्सर अपना जीवन इसी में नष्ट करती हैं कि पति को कैसे सुधार लें। लेकिन सुधारने के पीछे जो आकांक्षा है, वह मालकियत की है। सुधारना तो बहाना है। सुधारने का तो केवल मतलब इतना है कि शुभ के मार्ग से मैं मालकियत सिद्ध करती हूं।

और मजा यह है कि न पति सुधरता, न पत्नी सुधार पाती। क्योंकि पत्नी जब सुधारने की कोशिश करती है—और यह उसका ढंग होता है मालकियत का—तो पति भी पूरी चेष्टा करता है अपनी स्वतंत्रता बचाने की, चाहे गलत ढंग से ही सही। अब सिगरेट पीना कोई बड़ी स्वतंत्रता नहीं है, मूढ़तापूर्ण है बात, मगर अगर पत्नी पीछे पड़ी है कि सिगरेट मत पीओ, तो पति फिर सिगरेट नही छोड़ सकेगा। उसे पीना ही पड़ेगा। पीते ही रहना पड़ेगा। क्यों? क्योंकि अब यही उसका एकमात्र मार्ग है घोषणा करने का कि मेरी भी आत्मा है, मैं स्वतंत्र हूं, मैं गुलाम नहीं हूं।

पति-पत्नी एक-दूसरे को मिटाने में लग जाते हैं। इसलिए पति-पत्नी का जीवन एक दुखद जीवन हो गया है। दोनों अद्वैतवादी हैं। दोनों की चेष्टा यह है—एक बचे। दूसरे को नकार कर दो; छाया कर दो, माया कर दो। दूसरे का होना न-होने के बराबर कर दो। दूसरे का मूल्य शून्य कर दो। यही ज्ञानी कर रहा है, वह कहता है—ब्रह्म सत्य है, जगत मिथ्या। यही तुम्हारा अनीश्वरवादी कर रहा है, वह कहता है। जगत सत्य, ब्रह्म मिथ्या। एक को बचाएंगे, दूसरे को नष्ट कर देंगे।

भक्त की कीमिया बड़ी अदभुत है। भक्त यह कहता है—दोनों को मिटाने की जरूरत ही नहीं है। दोनों जुड़ जाएं, आलिंगन में बंध जाएं, दोनों के हृदय एक साथ धड़क सकते हैं, मालकियत का सवाल क्या है? दोनों की धड़कन इतनी एकसाथ हो सकती है कि एक का अनुभव होने लगे, दो के बीच में एक का अनुभव होने लगे। दोनों की स्वतंत्रता अछूती रहे और फिर भी दोनों एक में जुड़ जाएं, एक सेतु से जुड़ जाएं। नदी के दो किनारे एक सेतु से जैसे जुड़ जाते हैं, ऐसे ही असली प्रेमी दो रहते हैं, फिर भी जुड़ जाते हैं; अलग-अलग रहते हैं, और फिर भी एक हो जाते हैं।

इसलिए भक्ति में वैविध्य है और भक्ति में समृद्धि है। एक को मारकर जो एकता बचती है, वह एकता कुछ बड़ी एकता नहीं क्योंकि वह दूसरे से डरी हुई एकता है। दूसरे की मौजूदगी में नहीं हो सकती थी। भक्त कहता है—संसार भी सत्य है, परमात्मा भी सत्य है; स्रष्टा भी सत्य, उसकी सृष्टि भी सत्य, दोनों सत्य हैं। यही

शांडिल्य ने कहा—मिथ्या मत कहो संसार को। उस परम सत्य से मिथ्या का आविर्भाव कैसे होगा? उस सत्य से जो जन्मा है, वह भी सत्य ही होगा। सागर से जो लहर जन्मती है, वह उतनी ही सत्य है जितना सागर। सागर की ही लहर है, असत्य कैसे होगी? भक्त की छाती बड़ी है। भक्त कहता है—दोनों को सम्हालेंगे; दोनों में से किसी को मिटाने की जरूरत नहीं, मिटाते ही जीवन एकरस हो जाएगा।

इसलिए तुम तथाकथित अद्वैतवादी और ज्ञानी के चेहरे पर आनंद का भाव नहीं देखोगे। भक्त के चेहरे पर एक कौमल्य, एक प्रसाद एक आनंद, एक अनुग्रह का भाव मिलेगा। भक्त नाचता मिलेगा। ज्ञानी सिकुड़ा हुआ, भक्त फैला हुआ मिलेगा। भक्त को कोई अड़चन ही नहीं है। भक्त को सर्व स्वीकार है। भक्त ज्ञान की बातचीत में नहीं पड़ता, अनुभव में उतरता है।

इस भेद को ठीक से समझ लेना।

तुम बैठकर विचार करो, तर्क करो, कुछ निष्पत्तियां ले लो, दर्शनशास्त्र निर्मित कर लो, यह एक बात। और तुम जीवन में उतरो, छलांग लगाओ, डुबकी मारो और वहां जानो—कबीर ने कहा है, ढाई आखर प्रेम का पढ़े सो पंडित होय—यह अलग ही पाठशाला है। यह जीवन की, अस्तित्व की असली पाठशाला है।

डूबा हुआ हूं सर से कदम तक बहार में
न छेड़ उनके तसव्वुर में ऐ बहार मुझे
कि बू-ए-गुल भी इस वक्त नागवार मुझे

जो डुब जाता हैं उसके आनंद में उसके चारों तरफ बहार ही बहार हो जाती है, बसंत ही बसंत हो जाता है, पतझड़ में भी उसे बसंत दिखायी पड़ता है।

डूबा हुआ हूं सर से कदम तक बहार में
न छेड़ उनके तसव्वुर में ऐ बहार मुझे

बहार की भी चिंता नहीं है अब—बहार आए कि न आए, बहार बाहर न भी आए तो चलेगा, बहार भीतर आ गयी है, अब तो भक्त जहां रहता है वहां बहार है। तुमने सुना होगा कि भक्त स्वर्ग जाता है। गलत सुना। भक्त जहां जाता है, वहां स्वर्ग होता है। नर्क में फेंक दो भक्त को, तुम उसे नर्क नहीं पहुंचा पाओगे—तुम भेजोगे नर्क, वह पहुंच जाएगा स्वर्ग। नर्क में भी स्वर्ग बसा लेगा। ज्ञानी को तुम स्वर्ग भी भेज दो तो शायद ही स्वर्ग पहुंचे। सुना नहीं कभी कि कोई पंडित, कई ज्ञानी स्वर्ग में पहुंचा हो! वह जहां जाएगा, वहीं अपना तर्कजाल ले जाएगा। वह जहां जाएगा वहीं अपने शब्दों से दबा हुआ पहुंचेगा। वह जहां जाएगा, अपनी पोथियां ले जाएगा। उस के पास वही शब्दों की मुर्दा दुनिया बसी रहेगी। पापी भी पहुंच जाते हैं, पंडित नहीं पहुंचते। पापी विनम्र होते हैं, पंडित अहंकारी होते हैं। अगर पंडित और पापी में चुनना हो, तो पापी हो जाना बेहतर है; पंडित तो भूलकर मत होना। क्योंकि पंडित का मतलब है, जिस ने नहीं जाना और जो सोचता है—मैंने जान लिया। जानता तो प्रेमी है; पंडित कैसे जानेगा?

प्रेमी होना; तो ही अनुभव करोगे अद्वैत क्या है। धन्य हो जाओगे अनुभव से। विचार से कोई धन्य नहीं होता। तुम जानते हो जीवन के सामान्य क्रम में, कितना ही

सोचो मिष्ठान्न, सुस्वादु भोजन, उस से पेट नहीं भरता। प्यास लगी हो और तुम्हें जल का पूरा शास्त्र आता हो, तुम्हें जल का पूरा विज्ञान आता हो, तुम्हें मालूम हो कि जल यानी एच. टू. ओ. कि ऑक्सीजन और उदजन से मिलकर बनता है कि उदजन के दो हिस्से और आक्सीजन का एक हिस्सा और जल बनता है, लिखते रहो किताबों पर...

मैं एक घर में मेहमान था। पूरा घर पोथियों से भरा था। मैंने पूछा—बड़ी लाइब्रेरी है, क्या-क्या इस लाइब्रेरी में है? घर के मालिक ने कहा—यह लाइब्रेरी नहीं है, इस में कापियों पर राम-राम, राम-राम लिखता हूं। जिंदगीभर हो गयी लिखते, मेरे पिता भी यह करते थे, बड़े धार्मिक पुरुष थे, तो घर में सारी किताबें इकट्ठी हो गयी हैं, बस काम ही यही है, राम-राम लिखते रहते। मैंने कहा यह ऐसे ही फिजूल है जैसे किसी को प्यास लगी हो, वह किताब पर लिखे—एच. टू. ओ., एच. टू. ओ., जल का सूत्र लिखता रहे, लिखता रहे, लिखता रहे, इस से प्यास नहीं बुझेगी—न तुम्हारे पिता धार्मिक थे, न तुम धार्मिक हो। धर्म का किताब में राम-राम लिखने से क्या संबंध होगा? हृदय में अनुगूंज होनी चाहिए। प्राणों के प्राण में उसकी आभा प्रकट होनी चाहिए। मैंने उन से पूछा—तुम्हें राम का अनुभव हुआ? उन्होंने कहा—अनुभव ही हो जाता तो मैं ये पोथियां क्यों लिखता? अनुभव करने के लिए लिख रहा हूं। इस के लिखने से कैसे अनुभव होगा? इतना समय गंवाया, अब और न गंवाओ, इन पोथियों को आग लगाओ। इतना लिख चुके, इस से नहीं हुआ, इतना ही और लिख डालोगे तब भी नहीं होगा। लिखने से क्या संबंध हो सकता है? जीवन में अनुभव होते हैं अनुभव से।

भक्त धन्य हो जाता है। वह घड़ी जल्दी आ जाती है भक्त के जीवन में जब वह कहता है, गुंजार करता है—धन्योऽहं। मैं धन्य हूं। बहार ही बहार उसे घेर लेती है।

परसों राधा मुझे मिलने आयी। उस से मैंने पूछा—कैसी है राधा? वह कहती है—बहार ही बहार है! अच्छा लगा मुझे उसका वचन। प्रेम जगे तो बहार ही बहार है।

तीसरा प्रश्न: आपने भक्ति-साधना के प्रसंग में अवतारी पुरुषों की चर्चा की उस प्रसंग में आप ने भगवान बुद्ध का वचन उद्धृत किया कि मुझे भी राह से हटाकर आगे जाना। लेकिन शायद इसी प्रसंग में कहा गया भगवान कृष्ण का प्रसिद्ध वचन है—'सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज,' सब धर्म इत्यादि छोड़कर मेरी शरण आ। क्या इन परस्पर विरोधी वचनों पर कुछ प्रकाश डालने की कृपा करेंगे?

जरा भी विरोध नहीं है। कृष्ण जो कह रहे हैं, वह यात्रा की शुरुआत है। बुद्ध जो कह रहे हैं, वह यात्रा का अंत है। कृष्ण जो कह रहे हैं, वह अर्जुन से कह रहे हैं जो नाव पर बैठा नहीं, जो झिझक रहा है नाव पर बैठने में कृष्ण कहते हैं—तू फिकर छोड़, यह नाव तेरे पास आकर लगी; 'सर्वधर्मान् परित्यज्य', छोड़-छाड़ सब बातचीत, सब बकवास, आ बैठ, मेरी शरण आ; मैं तेरा माझी, मैं तेरा सारथी, मैं तुझे उस पार ले चलूं, यह नाव तुझे ले जाएगी। सब छोड़कर निर्भय होकर इस नाव में बैठ।

जब बुद्ध ने कहा है कि अगर मैं भी तुम्हारी राह में आ जाऊं, तो मेरी गर्दन काट देना, यह उस किनारे की बात है जब नाव दूसरी तरफ लग गयी और अर्जुन कहने लगा कि अब मैं उतरूंगा नहीं नाव से। इस नाव ने कितनी कृपा की है, मुझे संसार के सागर से ले आयी परमात्मा के किनारे तक, नहीं, इसे अब मैं छोड़ूंगा नहीं; और कृष्ण के पैर पकड़ ले और कहे कि तुमने ही तो कहा था—'मामेकं शरणं व्रज,' अब कहां जाते हैं? अब नहीं छोड़ूंगा, अब चाहे प्राण रहें कि जाएं, तुम्हारे चरण पकड़े ही रहूंगा। तब उस दूसरी घड़ी में कृष्ण को भी कहना पड़ेगा, जो बुद्ध ने कहा, कि पागल, अब नदी से उतर आया, अब नाव छोड़। अब मुझे भी छोड़। अब तो दूसरा किनारा आ गया, अब तो परमात्मा आ गया! नाव का उपयोग था, संसार से परमात्मा तक, शरीर से आत्मा तक, अंधकार से प्रकाश तक, मृत्यु से जीवन तक, लेकिन अब तो परमात्मा के द्वार पर आकर खड़ा हो गया है, अब इसे भी छोड़, अब इस नाव को थोड़े ही ढोएगा!

बुद्ध बार-बार कहते थे कि जब उतर जाओ दूसरे किनारे, तो नाव को सिर पर मत रख लेना। वह मूढ़ता होगी, अनुग्रह और कृतज्ञता नहीं। नाव को धन्यवाद देकर आगे बढ़ जाना।

कृष्ण का वचन पाठशाला में भर्ती होने के दिन विद्यार्थी को दिया गया सूत्र है। बुद्ध का वचन, दीक्षांत समारोह समाप्त हो गया, विश्वविद्यालय से लौटते हुए विद्यार्थी को दिया गया अंतिम संबोधन है। विरोध जरा भी नहीं। चूंकि दोनों अलग-अलग समय में दिये गये और अलग-अलग लोगों को दिये गये, इसलिए तुम्हें चिंता हो सकती है।

कृष्ण ने कहा था अर्जुन से, जो एक सामान्य व्यक्ति है। बुद्ध ने कहा था बोधिसत्वों से, जो आखिरी घड़ी में पहुंच गये हैं।

बुद्ध मर रहे हैं, आखिरी घड़ी आ गयी, उनके बोधिसत्व उन्हीं घेरे हुए हैं, उनके परम शिष्य उन्हें घेरे हुए हैं, आनंद रोने लगता है, बुद्ध आंख खोलते हैं, पूछते हैं—क्यों रोता है? तो आनंद कहता है—आप चले, अब हमारा क्या होगा? तब बुद्ध ने कहा है—अप्प दीपो भव, अपने दीये बनो। मेरे साथ जहां तक आ सकते थे, आ गये।

बुद्ध का वचन और कृष्ण का वचन एक ही यात्रा के दो छोर हैं। विरोध जरा भी नहीं। जैसे तुम सीढ़ी चढ़ते हो और मैं तुमसे कहूं—बिना सीढ़ी पर चढ़े तुम छत तक न पहुंचोगे। और फिर तुम सीढ़ी के अंतिम सोपान पर जाकर अटक जाओ और तुम कहो—अब मैं सीढ़ी नहीं छोड़ूंगा, क्योंकि इसी सीढ़ी ने मुझे इस ऊंचाई तक लाया, तो मैं तुमसे कहूंगा कि अब सीढ़ी छोड़ो, नहीं तो छत पर न पहुंच सकोगे। क्या मेरी बातों में विरोध होगा? दोनों में कुछ विरोधाभास है? सीढ़ी चढ़ाने के लिए कहा था—चढ़ो, छत पर नहीं पहुंचोगे; अब कहता हूं—सीढ़ी छोड़ो नहीं तो छत पर नहीं पहुंचोगे। विधियां पकड़नी होती हैं, एक दिन छोड़ देनी होती हैं। रास्तों पर चलना होता है, एक दिन रास्तों को नमस्कार कर लेनी होती है।

परमात्मा में प्रवेश के पहले तुमने जो भी किया था जो भी सोचा था, जो भी

साधन, विधि-विद्यान, अनुशासन अपने जीवन में आरोपित किये थे, सब को तिलांजलि दे देनी होती है। परमात्मा में प्रवेश के क्षण में न तो कोई विधि पास होनी चाहिए न कोई मंत्र, न कोई तंत्र, परमात्मा में प्रवेश के समय सारी सीढ़ियां समाप्त हो जानी चाहिए। सारी नाव विदा हो जानी चाहिए। तो ही तुम प्रवेश कर सकोगे।

वचनों में भेद है, क्योंकि अर्जुन और आनंद में भेद है। अर्जुन अभी चलने को ही तैयार नहीं है, अभी वह ठिठक ही रहा है, आनंद चल चुका है अंत तक, आखिरी घड़ी आ गयी...और तुम्हें पता है, बुद्ध के मरने के चौबीस घंटे के भीतर आनंद परम ज्ञान को उपलब्ध हो गया था; तो आखिरी घड़ी में था, बिलकुल आखिरी घड़ी में था, उतनी सी बाधा बची थी, बस थोड़ी सी बाधा बची थी, कि बुद्ध से जो लगाव था, जो आसक्ति थी, वही अटका रही थी। सब आसक्तियां टूट गयी थीं—न धन से कुछ रस था, न पद से कुछ रस था, न मित्रों में कोई रस था, सारे रस जा चुके थे, सारे रसों में एक ही रस व्याप्त हो गया था, यह सदगुरु का रस, यह सदगुरु के चरणों को पकड़ लेने की आसक्ति गहन हो गयी थी। यह मोह प्रबल हो गया था। बुद्ध ने आनंद को कहा है—तू मुझे भी छोड़, तू अपना दीपक अब खुद बन,अब तू इस योग्य है, अपने पैर पर खड़ा हो सकेगा। मेरे कंधे पर कब तक बैठकर चलेगा? अब जरूरत भी नहीं है।

मां चलाती है बच्चे को हाथ पकड़कर, एक दिन हाथ पकड़कर चलाना होता है। फिर अगर बच्चा सदा के लिए यह हाथ पकड़ ले तो मां हाथ छुड़ाएगी, एक दिन हाथ छुड़ाना भी होता है, नहीं तो बच्चा जवान कब होगा, प्रौढ़ कब होगा? अगर मां अपने बीस साल के जवान लड़के को भी हाथ पकड़कर चलाए, तो तुम भी कहोगे कि मां भी पागल है और यह लड़का भी पागल है। और अगर मां पहले से ही अपने आठ महीने के बच्चे को हाथ का सहारा न दे, तो भी तुम पागल कहोगे। विरोधाभास कहां है?

अर्जुन छोटा सा बच्चा है, दुधमुंहा। आनंद युवा हो गया, लेकिन अब भी मां का आंचल छोड़ना नहीं चाहता। अभी भी चाहता है मां को पकड़े रखे। ये दोनों वचन सत्य हैं, और दोनों वचन तुम्हारे लिए भी सत्य हैं—पहले दिन कृष्ण का वचन, अंतिम दिन बुद्ध का वचन। इस में विरोधाभास मत देखना।

अक्सर धार्मिक महावचन विरोधाभासी दिखायी पड़ सकते हैं; क्योंकि धर्म एक बड़ा रहस्यपूर्ण जगत है—तर्कातीत।

उल्टी ही चाल चलते हैं दीवानगाने इश्क
करते हैं बंद आंखों को दीदार के लिए

जब देखना हो परमात्मा को तो आंख बंद करनी होती है। तुम कहोगे, यह क्या उल्टी बात? आदमी आंख खोलकर देखता है। आंख बंद करके देखने का क्या मतलब? मगर यही है हाल। असली को देखना हो तो आंख बंद करनी पड़ती है। छुद्र को ही देखते रहना हो तो आंख खुले भी चल जाता है। आंख खोलकर भी देखा जाता है और आंख से बंद करके भी देखा जाता है। जो खुली आंख से दिखता है, वह सपना है और जो बंद आंख दिखता है, वही सत्य है।

कबीर का प्रसिद्ध वचन है—भला हुआ हरि बिसरियो सर से टली बलाय, जैसे थे वैसे भये अब कछु कहा न जाय। बड़ा अदभुत वचन है। ठीक बुद्ध का वचन है। भला हुआ हरि बिसरियो, झंझट मिटी, यह हरि भी मिटे और भूले, यह झंझट भी मिटी। भला हुआ हरि बिसरियो, सर से टली बलाय। तुम चौंकोगे थोड़ा कि हरि और सर की बलाय! शांडिल्य तो कह रहे हैं कि भजो, हरिनाम संकीर्तन, डूबो; और कबीर का दिमाग खराब हुआ है कि कहते हैं—भला हुआ हरि बिसरियो, सर से टली बलाय। बलाय! हरि का नाम! यही तो, हरि का नाम ही तो साधन है; इसको बला कहते हो!

एक दिन बला हो जाती है।

जो विधि एक दिन सहयोगी होती है, वही विधि एक दिन बाधक हो जाती है। तुम बीमार हो, तुम्हें औषधि देते हैं। फिर बीमारी चली गयी, फिर औषधि लेते रहोगे तो बलाय हो जाएगी। जिस दिन बीमारी गयी, उसी दिन बोतल फेंक देना और नहीं तो लाइंस क्लब में जाकर भेंट कर आना, मगर छुटकारा पा लेना उस से। फिर बोतल को लिए मत घूमना। और यह मत कहना कि इससे इतना लाभ हुआ, अब कैसे छोड़ूं? ऐसा कृतघ्न कैसे हो जाऊं? इसी बोतल ने तो सब दिया, स्वास्थ्य दिया, बीमारी गयी, अब तो पीता ही रहूंगा, अब छोड़ने वाला नहीं हूं। अब तो इस पर मेरी श्रद्धा बड़ी सघन हो गयी। शांडिल्य कह रहे हैं—डूबो हरि भक्ति में; यह कृष्ण की शुरुआत। और कबीर बुद्ध के तल से कह रहे हैं—भला हुआ हरि बिसरियो सर से टली बलाय, जैसे थे वैसे भये अब कछु कहा न जाए। अब क्या कहना है? कैसा राम-भजन किस का भजन कौन करे! किसलिए करे! अब शब्द का कोई संबंध न रहा। अब तो मौन है, सन्नाटा है।

हद टप्पै सो औलिया, बेहद टप्पै सो पीर
हद बेहद दोनों टपै, ताका नाम फकीर

हद टप्पै सो औलिया जो हद के बाहर चला जाए उस को कहते हैं—औलिया। बेहद टप्पै सो पीर जो बेहद के भी आगे चला जाए—सीमा के पार जाए, औलिया; असीम के भी पार चला जाए, उस का नाम पीर। हद बेहद दोनों टप्पै सब के पार चला जाए, वही फकीर है। उसे ही मैं संन्यासी कहता हूं।

पकड़ना छोड़ने के लिए। विधियों का उपयोग कर लेना, ले लेना जितना रस उनमें हो, फिर जब रस उन का पी चुके तो उस थोथी विधि का ढोते मत रहना, फिर वह बला हो जाएगी।

गुरु के सहारे दूसरे किनारे तक पहुंच जाओगे, फिर गुरु को भी विदा दे देनी होगी। संसार से गुरु छुड़ा लेता, फिर गुरु अपने से छुड़ाता है, तभी परमात्मा का मिलन है।

चौथा प्रश्नः पिछले कुछ दिनों से रोज प्रवचन के बाद जब आपको जाते हुए देखती हूं, तो भीतर से एक निःश्वास निकल जाता है और लगता है कि एक दिन और व्यर्थ गया। और फिर एक गहरा भाव रह जाता है कि एक दिन यह दिव्यपुरुष ऐसे ही आंखों से ओझल हो जाएगा और मैं खड़ी-खड़ी ऐसे ही देखती रह जाऊंगी। पूछा है मुक्ति ने।

दृष्टि की बात है। मुक्ति के मन में कहीं भारी लोभ होगा। उस लोभ से ही सारा उपद्रव पैदा हो रहा है। आध्यात्मिक लोभ को हम साधारणतः लोभ नहीं कहते, है तो वह लोभ ही।

तुम मुझे सुनते हो, दो ढंग से सुन सकते हो। एक तो सुनने का मजा सुनने में। जैसे कोई संगीत को सुनता है। कोई संगीत को सुनने से धन की वर्षा नहीं हो जाएगी। संगीत को सुनकर घर जाकर अचानक तुम धनी नहीं हो जाओगे। संगीत को सुनने में ही संगीत का धन है। संगीत के सुनने में ही छिपा हुआ आनंद है। लेकिन अगर कोई संगीत सुनने गया इस हिसाब से कि इस से कुछ लाभ होगा, तो बेचैनी होगी। जब संगीत बंद होगा और आखिरी ध्वनि प्रध्वनित होकर बिदा हो जाएगी, तब तुम्हें लगेगा कि आज का दिन और व्यर्थ गया; आज भी नहीं हुआ; आज भी जो धन मिलना था, नहीं मिला। लेकिन जो संगीत के ही आनंद के लिए संगीत को सुन रहा है, उसे मिल गया है। उसके पार पाने को कुछ था भी नहीं।

यहां मुझे सुनने वाले भी दो तरह के लोग हैं। एक, जिन्हें यहां होने में रस है। जो मेरे पास बैठे, यह थोड़ी गुफ्तगू चली जिनसे, थोड़ी बातचीत हुई, थोड़ा लेन-देन हुआ, थोड़ा आदान-प्रदान हुआ, यह सत्संग रहा, यह संगीत जमा, मेरे-उनके बीच ऊर्जा नाची, मेरे-उनके बीच तरंगें बहीं। मेरे-उनके हृदय थोड़ी देर के लिए साथ-साथ धड़के, मेरी श्वास उनकी श्वास से मिली, उनकी श्वास मेरी श्वास से मिली उन्होंने थोड़ी देर मुझे पीआ, मेरा रस पीआ, उन्होंने थोड़ी देर मुझे अपने हृदय में जगह दी, अपनी आत्मा में समाया, बस यह उनका आनंद है। उन के मन में यह भाव होगा—तो आज फिर घटा। वे धन्यभाव से भरकर जाएंगे।

दूसरा व्यक्ति है जो यहां बैठा है, सोच रहा है कि कब समाधि लग जाए, कब परमात्मा मिल जाए, कब मोक्ष मिल जाए; वह सुन नहीं रहा है, उसकी नजर मोक्ष पर अटकी है, वह सोच रहा है समाधि आती है कि नहीं, इधर-उधर देख रहा है कि अभी तक आयी नहीं, मेरी समाधि नहीं आयी; ये दूसरे आदमी की आंख से आंसू बह रहे हैं, शायद इसकी आ गयी, मेरी अभी नहीं आयी। वह बार-बार टटोल रहा है कि कब आती, कब आती, कहीं कोई पगध्वनि नहीं सुनायी पड़ती। और इस समाधि की चिंता में वह मुझे चूका जा रहा है। इस लोभ में, वह ध्यानस्थ हो सकता था मेरे साथ, वह अवसर चूका जा रहा है। तो जब मैं उठूंगा और चला जाऊंगा, तो स्वभावतः लगेगा कि आज का दिन और बेकार गया। तुम पर निर्भर है, मुझ पर निर्भर नहीं है। चाहो तो आज के दिन को सार्थक जाने दो, चाहो तो व्यर्थ।

लोभ छोड़ो। लोभ की दृष्टि सदा उपद्रव ले आती है। लोभ के कारण तुम्हारी जो व्याख्या होती है, वह व्याख्या दुख से भर जाती है। और हमारी व्याख्याएं बड़ी महत्वपूर्ण हैं।

एक कम्युनिस्ट कवि का मैं गीत पढ़ रहा था कल। उस का मित्र उसे ताजमहल देखने ले गया है। पूर्णिमा की, शरद पूर्णिमा की रात होगी। लेकिन ताजमहल देखकर कम्युनिस्ट कवि को जो विचार उठे, वे सुनने जैसे हैं—

दोस्त, मैं देख चुका ताजमहल
वापस चल
मरमरीं-मरमरीं फूलों से उबरता हीरा
चांद की आंच में दहके हुए सीमीं मीनार
जेहने शायर से यह करता हुआ चश्मक पैहम
एक मलिका का जियापोशो-फजाताब मजार
खुद-बखुद फिर गये नजरों में ब-अंदाजे-सवाल
वह जो रस्तों पे पड़े रहते हैं लाशों की तरह
खुश्क होकर जो सिमट जाते हैं बे-रस आसाब
धूप में खोपड़ियां बजती हैं ताशों की तरह
दोस्त, मैं देख चुका ताजमहल
वापस चल
यह धड़कता हुआ गुंबद में दिले-शाहजहां
यह दरो-बाम पे हंसता हुआ मलिका का शबाव
जगमगाता है हर इक तह से मजाके-तफरीक
और तारीख उढ़ाती है मुहब्बत की नकाब
चांदनी और यह महल आलमे-हैरत की कसम
दूध की नहर में जैसे उबाल आ जाये
ऐसे सैयाह की नजरों में छुपे क्या यह समां
जिसको फरहाद की किस्मत का खयाल आ जाये
दोस्त में, देख चुका ताजमहल
वापस चल
यह दमकती हुई चौखट यह तिलापोश कलस
इन्हीं जल्वों ने दिया कब्र-परस्ती को रिवाज
माहो-अंजुम भी हुए जाते हैं मजबूरे-सजूद
वाह आरामगहे-मालिकए-माबूद मिजाज
दीदनी कस्त नहीं दीदनी तक्सीन है यह
रूए-हस्ती पे धुआं, कब्र पे रक्से-अनवार
फैल जाये इसी रौजे का जो सिमटा दामन
कितने जानदार जनाजों को भी मिल जाये मजार
दोस्त, मैं देख चुका ताजमहल
वापस चल

ताजमहल भी देखोगे तो उतना ही देख पाओगे जितनी तुम्हारी व्याख्या होगी गुर्जिएफ का शिष्य आस्पेंस्की ताजमहल देखने आया और उसने जो वचन लिखे उस रात अपनी डायरी में, वे अदभुत हैं। उसने लिखा कि ताजमहल ऐसे है जैसे पत्थर में उपनिषद। ऐसा सौंदर्य इस के पहले न उतारा गया था कभी और न फिर उतारा जा

सका। और कभी उतारा जा सकेगा, इस में भी संदेह है। ताजमहल में उसे उपनिषद के सूत्रों का सौंदर्य दिखायी पड़ा। जैसे ताजमहल कुछ है जो आकाश से उतारी गयी घटना है इस पृथ्वी पर। कुछ है जो अरूप की तरफ इशारा करती है।

ताजमहल बनाया सूफियों ने। बनवाया शाहजहां ने, बनाया सूफियों ने। ताजमहल सूफी कृति है। जैसे अजंता-एलोरा बौद्ध भिक्षुओं की कृतियां हैं, और जैसे खजुराहो और कोणार्क तांत्रिकों की कृतियां हैं, वैसे ताजमहल सूफियों की कृति है। लेकिन गुर्जिएफ का शिष्य था आस्पेंस्की, इसलिए देख सका सूफियों का यह कृत्य। गुर्जिएफ खुद सूफी था, सूफी संतों से ही उसने सब सीखा था। इसलिए आस्पेंस्की को दिखायी पड़ सका कि ताजमहल में क्या खोदा गया है। ताजमहल तुम्हें याद दिलाता है तुम्हारे परम सौंदर्य की—देह में ही समाप्त मत हो जाना, पत्थर में भी इतना सौंदर्य छिपा है तो तुम में तो कितना छिपा होगा! उघाड़ने की बात है। नक्काशी की बात है। प्रकट करने की बात है।

आस्पेंस्की को सूफी मत की सारी सार-अभिव्यक्ति ताजमहल में मिली। एक कम्युनिस्ट कवि को दिखायी पड़ता है कि ताजमहल ठीक, मगर रास्तों पर लोग पड़े हैं भूखे, उनका क्या? यह ताजमहल उनका मजाक है। लोगों को भोजन नहीं है और यहां एक मरी-मरायी मलिका के लिए इतना धन खर्च किया गया है। लोगों को दवा नहीं है, उनके बच्चों को दूध नहीं है, रहने के लिए छप्पर नहीं है—जिंदों को छप्पर नहीं है और मुर्दों के लिए इतनी सुंदर कब्र! यह अति अन्याय है। यह कम्युनिस्ट की परिभाषा है। सब तुम पर निर्भर है।

अगर तुम मौज में हो, तो ताजमहल में तुम्हें बड़ा आनंद दिखायी पड़ेगा, नाच होता हुआ दिखायी पड़ेगा, ताजमहल रक्स में मिलेगा। अगर तुम उदास गये हो, तुम्हारी प्रेयसी खो गयी है, कि तुम्हारी मां मर गयी है, कि तुम्हारा मित्र चल बसा है, और तुम ताजमहल देखोगे तो ताजमहल बड़ा उदास मालूम होगा। तुम्हारी आंखें जो लेकर जाती हैं, वही देख लेंगी।

तुम यहां सुनते किस तरह से हो मुझे, इस पर निर्भर है बहुत कुछ। कोई यहां हिंदू की तरह सुनने आता है, कोई यहां मुसलमान की तरह सुनते आता है, कोई ईसाई की तरह, वह मुझ से वंचित रह जाएगा। जो यहां न हिंदू, न मुसलमान, न ईसाई, जो सिर्फ मनुष्य की तरह सुनने आता है, वही मुझ से संबंध जोड़ पाएगा। कोई यहां बड़े लोभ से भरकर आता है—पारलौकिक लोभ, मगर लोभ लोभ है कहीं पारलौकिक कोई लोभ होता है, लोभ ही तो संसार है!

अब यह मुक्ति के मन में बड़ा लोभ है। यह चाहती है जल्दी से निर्वाण उपलब्ध हो, समाधि उपलब्ध हो, आज का दिन और बेकार गया। जैसे कि मुझे सुनकर तुम्हें समाधि उपलब्ध हो सकती है। और मैं यह नहीं कह रहा हूं कि सुनते-सुनते नहीं उपलब्ध हो सकती; मगर सुनकर उपलब्ध नहीं हो सकती है। सुनते-सुनते उपलब्ध हो सकती है, उपलब्ध करने की आकांक्षा हो तो नहीं उपलब्ध होगी। क्योंकि तब तुम सुन ही न पाओगे।

उपलब्धि इत्यादि की व्यर्थ बातें छोड़ो। जितनी देर मेरे साथ हो, मेरे साथ हो लो। तल्लीनता से, परिपूर्णता से। इस थोड़ी देर के लिए तो लोभ इत्यादि को फेंक दो। लोभ के कारण संबंध नहीं जुड़ पाते। लोभ बीच में बाधा बन जाता है लोभ और प्रेम विपरीत चीजें हैं। जहां प्रेम है, वहां लोभ नहीं और जहां लोभ है, वहां प्रेम नहीं। और यह सत्संग तो उनके लिए है जिनके हृदय में प्रेम है। तो संबंध नहीं जुड़ पाता। मुक्ति बैठी-बैठी सोचती रहती होगी कि आधा घंटा गया, घंटा गया, ये नब्बे मिनट पूरे हो गये, आज भी नहीं हुआ, एक दिन और गया। ऐसे रोज-रोज दिन जाते हैं, फिर धीरे-धीरे हताशा गहन हो जाएगी कि ऐसे तो कितने दिन चले गये, ऐसे ही और दिन भी जाएंगे। और यहां रोज संभावना थी। यहां प्रतिपल संभावना थी।

मैं यदि समाधि हूं, तो मुझे सुनते, मुझे देखते, मेरे पास बैठते समाधि फलित हो सकती है। समाधि का मतलब क्या होता है? समाधान। समाधि का मतलब क्या होता है? कुछ आकाश से कुछ उतरेगा तुम्हारे भीतर? नहीं, जब तुम्हारी जीवन-चेतना संगीतपूर्ण हो जाती है, तभी समाधि। जहां तुम तल्लीन हो गये, वहीं समाधि। लेकिन लोभ तल्लीन न होने देगा। लोभ भविष्य में भटकाये रखता है। लोभ कहता है, होने वाला है, होने वाला है, जबकि यहां हो रहा है। तुम्हारा मन वर्तमान में नहीं रहता, तो चूक होगी। तुम्हारा मन भविष्य में भटकेगा—तो मुक्ति ठीक ही कहती है—ऐसा रोज ही रोज होता रहेगा। यह तुम पर निर्भर है।

इस प्रश्न को गौर से समझना, क्योंकि यह मुक्ति का ही नहीं औरों का भी होगा। मुक्ति को मैंने नाम ही मुक्ति इसीलिए दिया है कि उसके भीतर मोक्ष की बड़ी भयंकर अभीप्सा है। और वही अभीप्सा बाधा बन रही है। पिछले कुछ दिनों से रोज प्रवचन के बाद जब आप को जाते हुए देखती हूं तो भीतर से एक निःश्वास निकल जाती है। यह निःश्वास आनंद की भी हो सकती है, कि एक दिन और साथ रहने को मिला कि एक दिन साथ जुड़ा, कि एक दिन और आनंद बरसा, कि एक दिन और शांति घनी हुई, —धन्योऽहं। यह निःश्वास विषाद का भी हो सकता है कि अरे, आज फिर नहीं हुआ!

ऐसा समझो कि कोई तुमसे कहता है मैं नदी पर तैरने जाता हूं...मुझे तैरने का शौक था। दो-चार घंटे अगर रोज मैं नदी में न जाऊं तो मुझे चैन नहीं पड़ती थी। मुझे नदी ने इतना आनंद दिया कि जो मुझे मिल जाता, उसी को मैं कहता कि आओ! लोग मुझे इतने प्रफुल्लित, इतने आनंदित देखते तो वे भी लोभ में चले जाते कि शायद कुछ न कुछ होता होगा! मेरी बातों में आकर चार बजे सुबह उठ आते, कि चलो देखें, एक दफा तो देखें! लेकिन वहां उन्हें कुछ भी न मिलता। और नींद हराम हुई सो अलग। सुबह मजे से सोते, वह भी गया, और तैरने में क्या रखा है! और ठंडी सुबह और नदी का ठंडा जल, और वे ठिठुरते, और वे कहते कि आनंद तो कुछ मालूम नहीं पड़ रहा है, और आप कहते थे बड़ा आनंद मिलता है!

तब धीरे-धीरे मुझे समझ में आया कि भूल कहां हो रही है। मुझे आनंद मिलता है क्योंकि मैं आनंद की तलाश नहीं कर रहा हूं। वे आ गये हैं सिर्फ इसी

आशा में कि आनंद मिलेगा। ठंडे पानी में उतर रहे हैं, दिखायी तो यह पड़ रहा है कि ठंड लग रही है और सोच वह यह रहे हैं कि अभी तक आनंद नहीं मिला है; उदास हुए जा रहे हैं कि अब तक नहीं आया, कब आएगा, कहां से आएगा? दो-चार दिन मेरे साथ जाते, फिर वे कहते कि भई, हमें नहीं आना है! दिनभर नींद आती है, और आनंद मिलता नहीं। मैं बहुत हैरान होता था कि तैरने जैसी घटना और इन्हें आनंद नहीं मिलता। जल के साथ घड़ी-दो घड़ी रह लेना परम जीवनदायी है, क्योंकि अस्सी प्रतिशत तुम्हारे भीतर जल है।

और जैसे तुम्हारे भीतर अस्सी प्रतिशत जल है, जब जल के साथ तुम्हारे भीतर का जल मिलता है तो बड़ी तरंगें उठती हैं। मगर मिलना चाहिए, मिलन होना चाहिए। तो तैरना ध्यान बन सकता है अगर तुम परिपूर्ण डूब गये तैरने में। अगर कोई धूप में लेट गया है जाकर सागर के तट पर और धूप की वर्षा में डूब सकता है, तो वहां ध्यान है। कोई नाचने में डूब सकता है, वहां ध्यान है। तुम जिस में डूब जाओ, वहां ध्यान। यहां मैं जो तुमसे बोल रहा हूं रोज-रोज, वह किन्हीं सिद्धांतों को समझाने के लिए नहीं—सिद्धांतों में रखा क्या है, दो कौड़ी के हैं—सिद्धांत तो बहाने हैं, प्रयोजन कुछ और है। प्रयोजन यह है कि तुम मेरे साथ थोड़ी देर को डूब जाओ। मगर अगर भीतर तुम्हारे यह आकांक्षा बैठी है कि कुछ मिलना चाहिए, तो बड़ी कठिनाई हो जाएगी।

शायद तुमने सुना हो, यूकलिड बहुत बड़ा गणितज्ञ हुआ, ज्यामिति का आविष्कारक। उसके पास एक धनपति ने अपने बेटे को ज्यामिति सीखने भेजा। धनपति का बेटा था, धन उसकी एकमात्र भाषा थी। यूकलिड ने उसे समझाना शुरू किया कि रेखा क्या है, बिंदु क्या है, त्रिकोण क्या है। उसने थोड़ी देर सुना और उसने कहा—इससे मिलेगा क्या? इससे फायदा क्या? बिंदु क्या है, रेखा क्या है, इससे फायदा क्या? इससे लाभ क्या होगा? धनपति का बेटा था! युकलिड ने उसकी तरफ देखा और अपनी पत्नी को कहा कि ऐसा कर, रोज ज्यामिति पढ़ने के बाद जब यह युवक जाने लगे, तो इसे पांच सिक्के दे दिया कर। युवक बड़ा खुश हुआ कि यह तो बड़ा मजा है! बिंदु क्या, रेखा क्या, इसको पढ़ने-सीखने में पांच सिक्के भी मिलते हैं। लेकिन उसने इस बात को न देखा कि भयंकर मजाक किया है यूकलिड ने। जब उसके बाप को धनपति को पता चला तो उसने सिर ठोंक लिया। उसने अपने बेटे को कहा—नासमझ, यूकलिड जैसा गणितज्ञ समझाने को मिला हो और तू उससे गणित तो नहीं समझ रहा है और उलटे पांच रूपए उससे लेकर घर आ जाता है! तू मूढ़ है।

लाभ की भाषा मूढ़ता की भाषा है। लेकिन तुम्हारा कसूर नहीं है। तुम्हारे तथाकथित महात्मा, पंडित, पुजारी यही तुम्हें समझा रहे हैं कि संसार में भी लाभ होता है, यह भी लाभ है, और परमात्मा में भी लाभ होता है—ध्यान-लाभ करो, पुण्य-लाभ करो, मोक्ष-लाभ करो। मगर लाभ की भाषा नहीं छूटती

मैं तुमसे कह दूं इस बात को फिर से कि जब तक लाभ की भाषा है, तब तक समाधि अनुभव नहीं होगी। लाभ ही तनाव है। जहां लाभ गया, लोभ गया, उसी चित्तदशा का नाम समाधि है। जब लाभ-लोभ उड़ गये और तुम्हारे भीतर कोई

लाभ-लोभ की भाषा न रह गयी, तुम इसी क्षण में परम तल्लीन हो गये, वही समाधि है। समाधि यानी तल्लीनता। समाधि यानी तन्मयता।

तो मुक्ति कहती है—निःश्वास निकल जाता है और लगता है एक दिन और व्यर्थ गया। और फिर एक गहरा भाव रह जाता है कि एक दिन यह दिव्यपुरुष ऐसे ही आंखों से ओझल हो जाएगा और मैं खड़ी-खड़ी ऐसे ही देखती रह जाऊंगी। अगर लाभ रहा, लोभ रहा, तो यह होने वाला है! आज नहीं कल, मुझे विदा लेनी ही होगी। और तब तुम सोचोगे कि जिंदगी व्यर्थ गयी। पूरा जीवन व्यर्थ गया। जब कि हर पल समाधि घट सकती थी। और शायद तुम्हारा लोभ से भरा हुआ मन मुझ पर नाराजगी जाहिर भी करेगा कि शायद मैंने ही तुम्हें समाधि नहीं दी। क्योंकि तुम इस आशा में बैठे हो कि मैं तुम्हें समाधि दूंगा।

समाधि ली जाती है, दी नहीं जाती। मैं देना भी चाहूं तो नहीं दे सकता। हां, तुम लेना चाहो तो ले सकते हो। और तुम लेना चाहो तो मुझ से ही नहीं, वृक्षों से भी ले सकते हो, पहाड़ों से भी ले सकते हो, चांद-तारों से भी ले सकते हो। समाधि का अर्थ यही होता है कि हम किसी क्षण में परिपूर्ण रूप से डूब जाएं। न कोई भविष्य रहे, न कोई अतीत, यही क्षण सब तरफ से घेर ले, यही क्षण सारा समय बन जाए यही क्षण अनंत हो जाए।

तो यहां मैं देखता हूं। पश्चिम से जो लोग आते हैं, उन्हें ध्यान ज्यादा सरलता से घटता है। पूर्वीय को ज्यादा मुश्किल से घटता है। होना चाहिए उलटा—पूर्वीय व्यक्ति को, कम से कम भारतीयों को ध्यान जल्दी घटना चाहिए—हजारों साल से ध्यान की चर्चा यहां चलती रही है। लेकिन उसी से अड़चन हो रही है। पश्चिम से जो आदमी आता है, उसे ध्यान के संबंध में कुछ हिसाब-किताब नहीं है; उसे पता ही नहीं है कि ध्यान क्या है, इसलिए लोभ नहीं है, पाने की कोई प्रबल आकांक्षा भी नहीं है; अगर मैं उस से नाचने को कहता हूं तो वह नाचने में डूब जाता है, क्योंकि आंख के किनारे से देखता ही नहीं रहता अभी ध्यान घटा कि नहीं घटा। भारतीय आता है, वह कहता है—दो दिन गये नाचते, अभी तक ध्यान नहीं घटा। तीन दिन हो गये ध्यान करते, अभी तक ध्यान नहीं घटा। पश्चिम से आया व्यक्ति नाचने में रस लेने लगता है, वह मुझ से आकर कहने लगता है, नाचने में बड़ा मजा आ रहा है—ध्यान इत्यादि का उसे पता भी नहीं है कि घटना है कि नहीं घटना है—नाचने में बड़ा मजा आ रहा है! एक दिन अचानक ध्यान घट जाता है। ध्यान अनायास घटता है।

भारत का मन बहुत लोभग्रस्त हो गया है। तुमने बुद्धों से बस इतना ही लाभ लिया। तुमने बुद्धों से बस यह लोभ सीखा। तुम सरल नहीं रह गये चित्त में, तुम जटिल हो गये। धर्म तुम्हारे लिए एक तरह का हिसाब-किताब हो गया—इतना पुण्य करेंगे तो इतना लाभ मिलेगा। यहां इतना देंगे तो वहां उतना मिलेगा। तुमने हर चीज में गणित फैला दिया। तुम भाव की दशाओं में वंचित होने शुरू हो गये। इसलिए बड़ी आश्चर्य की बात है, मगर यह हो रहा है, नहीं होना चाहिए मगर हो रहा है, तुम सजग होओ तो शायद होना बंद हो जाए।

पहले तो भारतीय ध्यान में उतरना नहीं चाहता, क्योंकि उसे यह खयाल है वह जानता ही है ध्यान क्या है। दूसरा अगर उतरने को भी राजी होता है, तो दिन-दो दिन में ही आकर खड़ा हो जाता है कि अभी तक नहीं हुआ। और उसे बेचैनी होती है कि पश्चिम से आए लोगों को हो रहा है मालूम होता है, क्योंकि वे इतने प्रसन्न और इतने आनंदित! उनके प्रसन्न और आनंदित होने का कारण है कि उनके मन में लोभ नहीं है ध्यान का। धन का लोभ था, धन पा लिया पश्चिम ने और वह लोभ टूट गया और देख लिया कि उस लोभ में कोई सार नहीं था। अभी ध्यान का लोभ पैदा नहीं हुआ है—जल्दी पैदा हो जाएगा, भारतीय साधु-संत सारे अमरीका और पश्चिम में तैर रहे हैं, यहां से लेकर वहां तक; वह जल्दी ही लोभ पैदा करवा देंगे। क्योंकि उनकी भाषा लोभ की है। महर्षि महेश योगी लोगों से कहते हैं—ध्यान करने से पारलौकिक लाभ तो होता ही है, सांसारिक लाभ भी होता है। धन भी बढ़ेगा, पद भी बढ़ेगा, परमात्मा भी मिलेगा।

एक बहुत आश्चर्यजनक घटना है। विवेकानंद ने भारतीय साधु-संतों के लिए अमरीका का दरवाजा खोला। विवेकानंद से लेकर अब तक, सिर्फ कृष्णमूर्ति को छोड़कर, जितने लोग भारत से अमरीका गये हैं, उन्होंने अमरीका को नहीं बदला, अमरीका ने उन्हें बदल दिया। वे अमरीका की ही भाषा बोलने लगते हैं। क्योंकि उन्हें दिखायी पड़ता है कि अगर अमरीकन लोगों को प्रभावित करना है, तो वही भाषा बोलो जो वे समझते हैं। अमरीका धन की भाषा समझता है। अमरीका पूछता है—धन इससे कैसे मिलेगा? तो भारतीय तुम्हारा महात्मा भी धन की भाषा बोलने लगता है। वह कहता है—ध्यान से मन की शक्ति बढ़ेगी, सिद्धि मिलेगी। ध्यान करने से क्या नहीं हो सकता! फिर तुम जो चाहोगे वही पा सकोगे, तुम्हारे विचार इतने शक्तिशाली हो जाएंगे। मैंने ऐसी किताबें देखी हैं जो कहती हैं कि अगर तुमने ठीक से ध्यान किया और कहा कि कैडिलक कार मिलनी चाहिए, तो मिलेगी। ध्यान की किताबें!—कैडिलक कार मिलनी चाहिए, इसको अगर ध्यानपूर्वक सोचा, तो जरूर मिलेगी! और तुमने कहा यह जो स्त्री जा रही है, यह मुझे मिलनी चाहिए, अगर तुमने पूरे संकल्प से, पूरी एकाग्रता से विचार किया, तो यह घटना घटकर रहेगी। क्योंकि विचार में शक्ति है। और एकाग्र विचार में बड़ी शक्ति है।

ये अगर तुम्हारे ऋषि-मुनि कब्रों से निकल आएं, तो सिर ठोंक लें, कि ये हमारे महात्मा अमरीका में जाकर क्या समझा रहे हैं! मगर अमरीका को समझाना हो तो अमरीका की भाषा बोलनी पड़ती है। उसी भाषा के बोलने में सब व्यर्थ हो जाता है। इसलिए मैंने तय किया कि मैं पश्चिम नहीं जाऊंगा; जिसको आना है, यहां आए। मैं अपनी भाषा बोलूंगा, जिसको समझ पड़नी हो, समझ सकता हो, वह मेरी भाषा समझे और यहां आए, मुझे कहीं जाना नहीं है। मैं कोई समझौते के लिए राजी नहीं हूं।

भारतीय मन सदियों से सुनते-सुनते ध्यान की बात लोभी हो गया है। धन का जो लोभ है उसी लोभ को भारतीय मन ने आत्मा के लोभ पर निरूपित कर दिया, आरोपित कर दिया। पद का जो लोभ है, वही उसने धार्मिक दिशा में संक्रमित कर दिया है, भेद नहीं है। कोई यहां पद पाना चाहता है, वह वहां पद पाना चाहता है। फिर

अड़चन होगी। फिर तुम मुझे न समझ पाओगे। और फिर मुक्ति खड़ी ही खड़ी रह जाओगी। यह तुम्हारे हाथ में है। यह समय चूक भी सकती हो। चूकने का मतलब सिर्फ इतना ही कि इस समय में डूबो नहीं तो चूक जाओगी। मैं रोज यहां मौजूद हूं, मेरे द्वार खुले हैं, तुम डुबकी लो; तो मेरे जाने के पहले घटना घट जाएगी। आज घट सकती है, कल का भी कोई सवाल नहीं है, कभी भी घट सकती है, क्योंकि परमात्मा सदा मौजूद है। जिस क्षण तुम्हारा लोभ-लाभ गया, उसी क्षण मिलन हो जाता है।

किसे यह होश सुराही कहां है जाम कहां
निगाहे पीरे-मुगां से बरस रही है शराब

जब चारों तरफ से शराब बरस रही हो, तो तुम सुराही खोज रही हो! जाम खोज रही हो! नहाओ इस में! सुराही में भरकर क्या करना है? पी लो इसे! शराब में डूबकर शराब हो जाओ।

किसे यह होश सुराही कहां है जाम कहां
निगाहे पीरे-मुगां से बरस रही है शराब

तुम डुबो।

मीरा ने कहा है—मीरा पी गयी बिन तौले। मीरा मगन भई अब क्या बोले? बिना तौले पी जाओ, लाभ-लोभ छोड़ो। वह लाभ-लोभ सब तौलना है। तराजू लिए बैठी है मुक्ति, वह अपना तौल रही है, कितना मिला, कितना नहीं मिला; इसलिए उदास है। दुर्भाग्य की बात है, लेकिन इस आश्रम में जितने भारतीय है, अधिकतम उदास हैं। जो गैर-भारतीय हैं, वे प्रसन्न हैं, आनंदित हैं।

तेरा मैखार तेरी मस्त निगाहों की कसम
साकिये बिन पिये मसरूर हुआ जाता है

यह ऐसी शराब है कि बिना पीये नशा चढ़ा सकता है। सिर्फ द्वार तुम्हारा खुला हो; खिड़की-दरवाजे खोलो।

शकील-दूरिये-मंजिल से नाउम्मीद न हो
अब आयी जाती है मंजिल अब आयी जाती है

उदास होने की कोई भी जरूरत नहीं है। न निराश होने की कोई जरूरत है। मैं तुमसे यह कह ही नहीं रहा हूं कि मंजिल असंभव है, या बहुत दुर्गम है; मंजिल बहुत सुगम है और सरल है और सहज है। यही तो भक्ति का सारा सार-निचोड़ है। प्रेम भर चाहिए। लोभ के कारण प्रेम नहीं हो पाता और मंजिल दूर से दूर हो जाती है।

लोभ को जाने दो। लोभ की जगह प्रेम का आह्लाद-भाव। फिर हुआ ही है। फिर हो ही गया। फिर क्षणभर की देर नहीं है।

पांचवां प्रश्नः मैं अपना प्रेम कभी प्रकट नहीं कर पाया। साधारण लौकिक प्रेम ही नहीं, आपके प्रति भी जो प्रेम है वह भी छिपाये बैठा हूं। न मालूम कौन सा भय है जिसने मुझे पंगु बना रखा है! यह अविकसित प्रेम कैसे भक्ति बनेगा?

मनुष्य का दुर्भाग्य है कि अब तक जो संस्कृति और जो सभ्यता पनपी है

पृथ्वी पर वह प्रेम विरोधी है। वह युद्ध की पक्षपाती है और प्रेम की विरोधी है। यह सभ्यता बहुत सभ्यता नहीं है, बहुत आदिम है। यह युद्ध पर जीती है, प्रेम पर नहीं जीती। यह प्रेम की दुश्मन है। यह प्रेम से बहुत भयभीत है।

तुम देखते हो, प्रेम को प्रकट करने में हजार तरह की बाधाएं खड़ी की जाती हैं। प्रेम हो न जाए, इसके बीच हजार तरह की दीवालें खड़ी की जाती हैं। प्रेम न घटे, इसलिए सदियों तक बाल-विवाह चलता रहा—वह सिर्फ प्रेम से बचने का उपाय था। इसके पहले कि प्रेम की तरंग उठे, विवाह कर दो। न उठेगी प्रेम की तरंग, न होगी कोई झंझट।

स्त्री-पुरुषों को दूर रखा जाता है, उनके बीच में बड़े फासले खड़े किये जाते हैं। लड़कियां और लड़कों को एक साथ कालेज या स्कूल में पढ़ने नहीं दिया जाता अगर पढ़ने भी दिया जाता है तो उनके बैठने के स्थान अलग-अलग होते हैं। सब तरह से बाधाएं खड़ी की जाती हैं। और सब तरह से डराया जाता है कि प्रेम में कुछ खतरा है, प्रेम पाप है। यह बात इतनी गहरी बैठ जाती है प्राणों में कि प्रेम पाप है, कि जब कभी तुम्हारे जीवन में प्रेम का उदय भी होता है, तो भी साहस पैदा नहीं होता। तुम अपने को खींच-खींच लेते हो। तुम रुक-रुक जाते हो। यह सभ्यता संगीनों की सभ्यता है, प्रेम की नहीं। इसका पूरा आयोजन यही है कि कैसे हम मरें और मारें। यह सभ्यता सैनिक बनाती है, प्रेमी नहीं बनाती।

इसलिए तुम चमत्कार की बात देखोगे, अगर फिल्म में कोई किसी की छाती में छुरा भौंक दे, तो इस पर सरकार कोई रोक नहीं लगाती। लेकिन चुंबन पर रोक है। यह बड़े मजे की बात है। कल मैं पढ़ रहा था, मद्रास में तो मुख्यमंत्री फिल्म अभिनेता है, लेकिन फिल्म अभिनेता मुख्यमंत्री भी वक्तव्य देता है कि फिल्मों में चुंबन नहीं होना चाहिए, क्योंकि इससे भारतीय संस्कृति का बड़ा ह्रास हो जाएगा। चुंबन से भारतीय संस्कृति का ह्रास हो जाएगा! खजुराहो की मूर्तियां किसने बनायी थीं? कोई पश्चिम से लोग आए थे बनाने! पश्चिम में एक भी मंदिर नहीं है खजुराहो के मुकाबले। चुंबन से ह्रास हो जाएगा भारतीय संस्कृति का! हां, छाती में छूरे भोंको, जेबें काटो, हत्याएं करो फिल्म में, चोरियां करो, जलाओ लोगों को, मारो, सब चलेगा, इससे संस्कृति का ह्रास नहीं होता! इससे संस्कृति बढ़ती है, इससे विकसित होती है। चुंबन बड़ा खतरनाक है! चुंबन जैसी कोमल चीज मार डालेगी इनकी संस्कृति को!

प्रेम से दुश्मनी है। अगर दो व्यक्ति प्रेम में आलिंगन कर लें, तो अश्लील है, और एक-दूसरे की छाती में छुरा भोंक दें तो अश्लील नहीं है। अश्लील शब्द का हिंसा से संबंध ही नहीं जोड़ते लोग। अश्लील शब्द का सिर्फ हिंसा से ही संबंध होना चाहिए—प्रेम से क्या संबंध होगा अश्लील का?

तो तुम्हारा प्रश्न तुम्हारा ही प्रश्न नहीं है, सारी मनुष्य जाति का प्रश्न है। प्रेम के प्रति तुम्हें अपराध-भाव से भर दिया गया है। और जब तक प्रेम विकसित न हो, तब तक भक्ति का जन्म नहीं हो सकता। जिसने लौकिक प्रेम नहीं किया, वह अलौकिक प्रेम तो कैसे करेगा? क्योंकि लौकिक प्रेम की ही हिम्मत जिसमें नहीं थी,

उसमें अलौकिक प्रेम की हिम्मत तो पैदा ही नहीं हो सकती। अलौकिक प्रेम तो दुस्साहस है। कल मैं एक गीत पढ़ रहा था—

तुम मुहब्बत को छिपाती क्यों हो?
हाय! यह हीर की सूरत जीना
मुंह बिगाड़े हुए अमृत पीना
कांपती रूह धड़कता सीना
जुर्म फितरत को बताती क्यों हो?
तुम मुहब्बत को छिपाती क्यों हो?
हां, वह हंसते हैं जो इंसान नहीं
जिनको कुछ इश्क का इरफान नहीं
संगजदों जरा जान नहीं
आंख ऐसों की बचाती क्यों हो?
तुम मुहब्बत को छिपाती क्यों हो?
जुर्म तुमने कोई ढाया तो नहीं
इब्ने-आदम को सताया तो नहीं
खूं गरीबों का बहाया तो नहीं
यों पसीने में नहाती क्यों हो?
तुम मुहब्बत को छिपाती क्यों हो?
झेंपते तो नहीं मंदिर के मकीं
झेंपते तो नहीं मेहराबनशीं
मक्र पर उनकी चमकती है जबीं
सिद्क पर सर को झुकाती क्यों हो?
तुम मुहब्बत को छिपाती क्यों हो?
पर्दा है दाग छुपाने के लिए
शर्म है किज्ब पे छाने के लिए
इश्क इक गीत है गाने के लिए
इसको ओठों में दबाती क्यों हो?
तुम मुहब्बत को छिपाती क्यों हो?

लेकिन सभी मुहब्बत को छिपा रहे हैं—पुरुष और स्त्रियां, प्रेमी और प्रेमिकाएं, पति और पत्नियां, भाई और बहन, बाप और बेटे, मां और बेटियां, सब मुहब्बत को छिपा रहे हैं, सब प्रेम को छिपा रहे हैं। तुम्हें याद है, तुम कब से अपने बाप की छाती नहीं लगे? कब से? या शायद कभी नहीं। तुम्हें याद है कब से तुम्हारी मां ने तुम्हें अपनी गोद में नहीं लिया? भूल ही गयी है बात! दो मित्र भी तो हाथ में हाथ डालकर नहीं चलते, कि कहीं कोई कुछ गलत न समझ ले। प्रेम के संबंध में इतना छिपाव, इतना दुराव!

क्यों?

क्योंकि प्रेम में कुछ बगावत है, विद्रोह है। अगर लोगों को प्रेम की पूरी छूट दी जाए, तो दुनिया दूसरे ढंग की होगी। उस दुनिया में राजनीति नहीं होगी। युद्ध नहीं होंगे। अगर प्रेम की पूरी छूट हो तो कौन युद्ध के स्थल पर मरने जाना चाहेगा! कौन? कौन मां अपने बेटे को भेजेगी युद्ध पर? कौन पत्नी अपने पति को भेजेगी? कौन बहन अपने भाई को भेजेगी युद्ध पर? अगर दुनिया में प्रेम हो तो लड़ने की इतनी आतुरता ही नहीं होगी, लोग कहेंगे—क्या फिजूल की बात है! लड़ना किसलिए? यह जमीन सब की है, हम सब भोगें, हम सब आनंद से रहें, लड़ने का क्या सवाल?

लेकिन मामला कुछ और है। मामला ऐसा है कि तुम्हें प्रेम का मौका नहीं मिला तो तुम्हारी जो प्रेम की ऊर्जा है, वह सघन हो गयी है भीतर और घृणा बन गयी है। प्रेम सड़ गया है तुम्हारा। वह इस दुनिया से बदला लेना चाहता है। वह किसी की छाती में छुरा भोंका देना चाहता है। तुम्हारा प्रेम सड़ गया है, घाव बन गया है, नासूर हो गया है, कैंसर हो गया है। इसलिए हर दस साल में एक महायुद्ध चाहिए। तब कहीं थोड़ी छाती हल्की होती है, थोड़ी मवाद बह जाती है। और छोटी-मोटी लड़ाई तो चलती ही रहनी चाहिए, कभी वियतनाम में, कभी इजराइल में, कभी कहीं—कश्मीर में, कभी बंगला देश में, छोटी-मोटी लड़ाई तो चलती ही रहनी चाहिए।

तुमने एक मजे की बात देखी, कि जब भी लड़ाई चलती है, लोगों के चेहरों पर रौनक आ जाती है, धूल झड़ जाती है, लोग बड़े ताजे मालूम होने लगते हैं, जैसे कुछ हो रहा है—जिंदगी में कुछ और तो होता ही नहीं, जिंदगी में और तो कुछ है ही नहीं, खाली-खाली है; जब जिंदगी में कुछ होता लगता है, तो माने युद्ध—समाचार का मतलब यह होता है कि कोई खराब समाचार; कि है भाई आज कोई समाचार, सुबह ही से उठकर लोग पूछते हैं; उनका मतलब है—हुई कुछ गड़बड़, कुछ उपद्रव हुआ? लोग कहते हैं, आज तो कुछ नहीं, वही का वही अखबार में सब पुराना ही है। फिर धूल जम गयी। फिर वह शांत हो गये कि चलो ठीक है, कुछ नहीं हुआ आज, तो आज का दिन फिर बेकार गया।

युद्ध हो जाए, लोग कटने-मरने लगें, तो तुमने एक और मजे की बात देखी है, लोग छोटे-छोटे झगड़े भूल जाते हैं जब बड़ा युद्ध होता है। जैसे हिंदुस्तान-पाकिस्तान लड़े, तो फिर गुजराती-मराठी नहीं लड़ते। फिर क्या मतलब? फायदा क्या? अब जब बड़ी लड़ाई चल रही है, तो छोटी की कौन झंझट करे! फिर हिंदी और गैर-हिंदी नहीं लड़ते। मजा ही आ रहा है, अब करने की क्या जरूरत, छोटे-छोटे दंगल गांव-गांव में क्या करना, बड़ा दंगल हो रहा है। राजधानी-दंगल हो रहा है, तो बस अब उसका ही मजा लेंगे। जब राजधानी का दंगल बंद हो जाता है, हिंदुस्तान-पाकिस्तान नहीं लड़ते, तो चैन नहीं पड़ती। तो फिर गुजराती और मराठी लड़ते हैं। फिर हिंदू और मुसलमान लड़ते हैं। फिर कोई न कोई रास्ता खोजते हैं लोग। सिया-सुन्नी लड़ते हैं। ब्राह्मण-हरिजन लड़ते हैं।

लोग सोचते थे कि हिंदुस्तान-पाकिस्तान बंट जाएंगे तो फिर यहां कोई झगड़ा नहीं होगा—झगड़े बढ़ गये। कम नहीं हुए। क्योंकि तब हिंदू-मुसलमान लड़ लेते थे,

अब हिंदू-मुसलमान लड़ने का ज्यादा उपाय नहीं रहा—मुसलमान उधर हो गये, हिंदू इधर हो गये—तो हिंदू आपस में लड़ते हैं। उधर मुसलमान लड़ रहे हैं—यह मत सोचना कि वे नहीं लड़ रहे हैं। वहां भी वही है! तुमने देखा तुम्हारे परिवार में और पड़ोसी के परिवार में झगड़ा हो जाए तो तुम्हारे घर के आपसी झगड़े समाप्त हो जाते हैं, क्योंकि अब बड़ा झगड़ा सामने आ गया, अब ये छोटे-मोटे झगड़े भूलने पड़ते हैं। जब पड़ोसी से झगड़ा समाप्त हो गया, बाप बेटे से लड़ रहा है, पति पत्नी से लड़ रही है, भाई भाई से लड़ रहा है—छोटे-छोटे झगड़े शुरू हुए।

बिना झगड़े के आदमी रह नहीं सकता क्या? क्या झगड़ा अनिवार्य है? यह प्रश्न पूछा जाना चाहिए, बार-बार पूछा जाना चाहिए।

झगड़ा कतई अनिवार्य नहीं है। लेकिन प्रेम को मौका नहीं दिया गया। प्रेम की जो अनंत ऊर्जा है, उस ऊर्जा को जब तक मौका न मिले, वही ऊर्जा विध्वंस बन जाती है। या तो सृजन, या विध्वंस। ठीक मार्ग मिले तो सृजनात्मक हो जाती है। तब गीत पैदा होते हैं, तब नृत्य जगता है, तब संगीत पैदा होता है। जब तुम प्रेम से भरे होते हो, तो तुम्हारे हाथ वीणा को छूना चाहते हैं या नहीं? जब तुम प्रेम से भरे होते हो, तो तुम अपनी बगिया में गुलाब उगाना चाहते हो या नहीं? जब तुम प्रेम से भरे होते हो, तो गीतों में तुम्हें रस आता, नृत्य में तुम्हें अर्थ मालूम होता है।

जब तुम प्रेम से बिलकुल खाली हो जाते हो, मौका ही नहीं प्रेम का, घृणा ही घृणा हो जाती है, तब तुम तलवारों पर धार धरने लगते हो, तब तुम बंदूकें साफ करने लगते हो, तब तुम प्रतीक्षा करने लगते हो कहीं कुछ मौका मिल जाए तो कूद पड़ूं और जूझ जाऊं, मर लूं या मार लूं। जिंदगी इतनी व्यर्थ मालूम हो रही है कि मौत ही सार्थक मालूम होती है।

तो यह प्रश्न तुम्हारा ही नहीं है, यह प्रश्न सभी का है। ऐसी दशा है। इस दशा से बाहर आने के लिए तुम्हें चेष्टा करनी होगी। और समाज तुम्हें साथ नहीं देगा। तुम्हें अपने ही बल से धीरे-धीरे बाहर आना होगा। तुम अपने जीवन को प्रेमपूर्ण बनाओ। तुमसे जितना प्रेम बन सके, दो। और जितना प्रेम ले सको, लो। सब दिशाओं से प्रेमपूर्ण बनाओ—भाई को प्रेम करो , बहन को करो, पत्नी को करो, मां को करो, पड़ोसियों को करो, मित्रों को करो, प्रेम की एक बाढ़ बन जाओ। छोटी सी जिंदगी है, इस छोटी सी जिंदगी में प्रेम का दीया जलाओ और तुम अपूर्व आनंद अनुभव करोगे। और तुम पाओगे कि वही लपट जो यहां प्रेम कहलाती है, जब और जरा ऊपर उठती है, देहों के पार जाती है, पदार्थ के ऊपर उठती है, तो भक्ति बन जाती है। भक्ति प्रेम की ही अंतिम छलांग है। लेकिन प्रीति ही सिकुड़ी-सिकुड़ी पड़ी है, तो भक्ति कैसे होगी? भक्ति तो प्रेम की ही अंतिम उड़ान है। और पक्षी घोंसला ही नहीं छोड़ रहा है, अंतिम उड़ान क्या खाक भरेगा!

शांडिल्य के सूत्र इसीलिए महत्वपूर्ण हैं। शांडिल्य कहते हैं—प्रीति जीवन का असली तत्व है। जिससे अस्तित्व बना है, वह तत्व है प्रीति। उस प्रीति के चार रूप हैं। अपने से छोटों के प्रति हो तो स्नेह। अपने समान के प्रति हो तो प्रेम। अपने से बड़ों के प्रति हो तो श्रद्धा। और समस्त के प्रति हो, सर्वात्मा के प्रति हो तो भक्ति।

एक ही प्रीति के ये चार अलग-अलग रूप हैं। कहो चार सीढ़ियां हैं। लेकिन तीन सीढ़ियां पार करनी होंगी तभी तुम चौथी में उठ सकोगे।

'मैं अपना प्रेम कभी प्रकट नहीं कर पाया।' जाने दो नहीं हुआ कल, आज तो करो। अब कल के लिए बैठे-बैठे क्या रोना। कल तो गया, अब दुबारा लौटेगा भी नहीं, अब कल के लिए बैठे-बैठे क्या समय खराब करना। आज तो हाथ में है न, आज कुछ करो। आज नाचो, आज गाओ। आज हृदय से मिलो।

कहते हैं—मैं अपना प्रेम कभी प्रकट नहीं कर पाया। साधारण लौकिक प्रेम ही नहीं, आपके प्रति भी जो प्रेम है वह भी छिपाये बैठा हूं। उसे तो छिपाने की कोई जरूरत नहीं है। क्योंकि यहां तो मैं एक ही बात सिखा रहा हूं, अगर कुछ सिखा रहा हूं—तो प्रेम को अभिव्यक्ति दो। क्योंकि प्रेम की अभिव्यक्ति में ही तुम्हारी आत्मा का विकास है। निःसंकोच अपने प्रेम को प्रकट होने दो। तुम्हारे प्रेम की अभिव्यक्ति में ही तुम पाओगे, कि तुम्हारा असली जीवन शुरू हुआ। जागरण उसी से आता है। नहीं तो तुम सोये-सोये जी रहे हो।

न मालूम कौन सा भय है, जिसने मुझे पंगु बना रखा है।' संस्कार का भय है। सदा सिखाया गया है प्रेम के संबंध में, सावधान! प्रेम खतरनाक है। प्रेम में जाना ही मत। प्रेम पागलपन है। यह सिखाया गया है, इसलिए तुम रुके हुए हो। मैं तुमसे कहता हूं, प्रेम पागलपन सही तो पागलपन सही, लेकिन प्रेम रहित होकर बुद्धिमान होने से प्रेमपूर्ण होकर बुद्धिहीन होना बेहतर है। क्योंकि जो प्रेम में पड़ता है, वह कभी न कभी परमात्मा तक पहुंच ही जाता है। प्रेम यानी नाव को छोड़ दिया, पाल खोल दिये।

ठीक ही कहते हैं लोग, कहते हैं कि प्रेम पागलपन है। है ही पागलपन। क्योंकि तर्क उसका साथ नहीं देता। गणित में आता नहीं, हिसाब-किताब में बैठता नहीं, फायदा क्या है? गणित पूछता है—फायदा क्या है? क्या मिलेगा प्रेम करने से? और झंझट ही होगी, काम में बाधा पड़ेगी; अभी तो चुनाव आ रहा है, चुनाव लड़ो, प्रेम में कहां पड़ते हो? अब जिस को चुनाव लड़ना है, वह प्रेम कर भी नहीं सकता। जो प्रेम करेगा, वह चुनाव में लड़ने की ऊर्जा नहीं पाएगा। चुनाव में लड़ने के लिए वही युद्ध की दशा चाहिए। अभी तो धन कमाना है, अभी प्रेम में मत पड़ो। अगर प्रेम में पड़ गये, तो धन न कमा पाओगे।

तुमने देखा, प्रेमी अक्सर धनी नहीं हो पाते। हो ही नहीं सकते। क्योंकि धन इकट्ठा करने के लिए बड़े अप्रेम की क्षमता चाहिए। धन इकट्ठा ही अप्रेमी करते हैं। अगर पद पर पहुंचना हो, प्रधानमंत्री बनना हो या राष्ट्रपति बनना हो, तो प्रेम मत करना। क्योंकि प्रेम किया तो कौन फिकर करता है प्रधानमंत्री बनने की? किसलिए? प्रेम करते ही तुम बादशाह हो गये। तुम्हारी छोटी सी जिंदगी में सुवास आ गयी। अब कौन फिकर करता है दिल्ली जाने की? प्रेम न हो जीवन में तो आदमी दिल्ली जाने की कोशिश करता है। प्रेम न हो तो आदमी इस कोशिश में रहता है कि लोगों का ध्यान तो मेरी तरफ आकर्षित हो। प्रेम की कमी ध्यान से पूरी करवा लेना चाहता है—दूसरों का ध्यान आकर्षित हो जाए।

जब कोई तुम्हें प्रेम से भरकर देखता है—एक व्यक्ति भी अगर तुम्हें प्रेम से भरकर देख लेता है, प्राण तृप्त हो जाते हैं। जब यह तृप्ति नहीं होती, तब तुम चाहते हो कि मंच पर खड़ा हो जाऊं, हजारों लोगों की भीड़, लोग ताली बजाएं, फूलमालाएं फेंकें, ये उसी प्रेम की जो दो आंख तुम्हें नहीं मिल पायीं, उसी की पूर्ति तुम कर रहे हो। और करोड़ लोग भी तुम्हारे ऊपर फूल फेंकें तो भी पूर्ति नहीं होती। क्योंकि वे फूल फेंकने वाले प्रेम के कारण फूल नहीं फेंक रहे हैं, वे तुम पर फूल फेंक ही नहीं रहे हैं, वे सिर्फ तुम्हारे पद और प्रतिष्ठा के लिए फूल फेंक रहे हैं, वे भय के कारण फूल फेंक रहे हैं। यही लोग कल तुम पर जूते फेंकेंगे, जरा पद से नीचे उतरो।

एक महिला के संबंध में मुझे पता है, इंदिरा पर किताब लिख रही थी, उनकी प्रशंसा में किताब लिख रही थी। फिर सब पासा पलट गया। तो अब उसने किताब भी बदल दी। अब उसने किताब लिखी है इंदिरा के खिलाफ। शुरू की थी पक्ष में, किताब करीब-करीब पूरी होने को आ गयी थी, बस आखिरी हिस्सा पूरा करना था, लेकिन तभी तक मामला बदल गया। किताब का नाम है—टू फेसेज आफ इंदिरा गांधी। तब मैं बड़ा हैरान हुआ। ये दो चेहरे इंदिरा गांधी के, कि दो चेहरे लेखिका के। ये दो चेहरे लेखिका के हैं। जो फूलमालाएं पहना रहे थे, वे ही गालियां दे रहे हैं। बदला ले रहे हैं अब।

खयाल रखना, अगर राजनीति में जाना हो तो प्रेम में पड़ना मत। अगर धन कमाना हो तो प्रेम में पड़ना मत। अगर इतिहास में नाम छोड़ना हो तो प्रेम करना मत। क्योंकि प्रेम करने वालों को जरा भी फिक्र नहीं होती कि इतिहास में नाम हो कि न हो। और जरा भी फिक्र नहीं होती कि पद मिले या न मिले, धन कमाया जाए या न कमाया जाए। प्रेम इतनी परितृप्ति देता है कि सब मिल गया—पद भी, धन भी, यश भी। प्रेम चूक जाए तो ये सब चीजों की दौड़ पैदा होती है।

इसलिए समाज चाहता है कि तुम्हारा प्रेम चूक जाए। तुम प्रेम में पड़े तो सब गड़बड़ हो जाती है। तुम्हारे पिता चाहते हैं धन कमाओ, और तुम पड़ गये प्रेम में; गये काम से! पिता सिर ठोंक लेते हैं कि खराब हो गयी बात। अब क्या कमाएगा यह। पिता चाहते हैं कि बेटा प्रधानमंत्री हो जाए, तुम प्रेम में पड़ गए। पिता निराश हो जाते हैं कि अब यह क्या प्रधानमंत्री होगा! प्रधानमंत्री होना हो तो ब्रह्मचर्य की कसम ले लो। मोरारजीभाई से पूछो! तब तुम्हारी सारी ऊर्जा कुंठित होती है भीतर, लड़ने-झगड़ने की वृत्ति पैदा होती है। कहीं भी जूझ जाओ, किसी से भी भिड़ जाओ, वही भाव रहता है। फिर तुम जिस दिशा में भी सिर डाल दोगे, उसी दिशा में पहुंच जाओगे; धक्के-मुक्के करते, किसी न किसी दिन जो तुम्हारी मंशा है पूरी हो सकती है। महत्वाकांक्षा सिखाता है समाज, और महत्वाकांक्षा अप्रेमी हृदय में ही हो सकती है।

इस कारण तुम्हारे मन में एक तरफ की पंगुता है। समझो और उस पंगुता को तोड़ दो। उस पंगुता को तोड़ना कठिन नहीं है, समझने भर की जरूरत है। समझ आते ही तोड़ी जा सकती है। और अगर तुम इस जगत के लोगों को प्रेम कर सको, तो वही प्रेम का आनंद तुम्हें प्रार्थना सिखाएगा। उसी प्रेम के आनंद से तुम एक दिन परमात्मा

की तलाश में निकलोगे। तुम सोचोगे कि जब साधारण लोगों को प्रेम करने से इतना आनंद मिला, तो उस परम प्यारे की खोज से कितना आनंद मिलेगा!

आखिरी प्रश्नः अब हम करें क्या?

अथातो भक्तिजिज्ञासा। अब भक्ति की जिज्ञासा करो! अब प्रेम की खोज करो! अब अपने झूठे चेहरों को हटाओ, मुखौटे तोड़ो! अब अपने असली प्राण की ज्योति को प्रज्ज्वलित होने दो।

ऊपर से छूने पर तो मखमल हैं चेहरे,
अंदर से कुंठाओं के मरुथल हैं चेहरे,
दर्पण में खुद को पहचान नहीं पाते,
आत्म-अपरिचय के ऐसे जंगल हैं चेहरे,
सदा झनकते रहे दूसरों के पांवों में,
औरों के पग बंधी हुई पायल हैं चेहरे,
पांव रखो तो धंसते हुए चले जाते हैं,
रिश्तों की मीलों लंबी दलदल हैं चेहरे
भटक रहे हैं सपनों के रेगिस्तानों में
बेचारे, प्यासे मृग से पागल हैं चेहरे

अब चेहरे छोड़ो, मुखौटे छोड़ो, अब ढोंग मिटाओ, अब पाखंड गिराओ, अब आवरणों से मुक्त हो जाओ! अब उसकी तलाश करो जो तुम हो, वस्तुतः तुम हो। जो जन्म के पहले तुम थे और जो मृत्यु के बाद तुम फिर हो जाओगे। अहंकार छोड़ो, तभी भक्ति की जिज्ञासा हो सकेगी। क्योंकि जो स्वयं को खोता है, वही परमात्मा को पाता है।

खयाल, सांस, नजर, सोच, खोल कर दे दो
लबों से बोल उतारो, जबां से आवाजें
हथेलियों से लकीरें उतार कर दे दो
हां दे दो अपनी खुशी भी कि खुद नहीं हो तुम
उतारो रूह से यह जिस्म का हसीं गहना
उठो दुआ से तो आमीन कहके रूह भी दे दो

तुम पूछते हो—अब हम क्या करें? अब अपने को दो। अब तक अपने को बचाया। यही तो प्रेम का राज है—देना। अब तक बचाया—बचाया कि सड़ गये, दो कि खिल जाओगे। जीसस ने कहा है—जो देगा, वह पाएगा; और जो बचाएगा, वह नष्ट हो जाएगा। प्रेम की कीमिया यही है। अब अपने को समर्पित करो। उतारो ये ढोंग जो तुमने ओढ़ रखे हैं—हिंदू का, मुसलमान का, ईसाई का; आस्तिक का नास्तिक का, सिद्धांतों का, शास्त्रों का; उतारो ये सब चेहरे। ये सब खोलें अलग करो। अब अपने नग्न अस्तित्व को पहचानो कि मैं कौन हूं।

और तुम चकित होओगे, जैसे-जैसे भीतर जाओगे, तुम एक ही आवाज पाओगे कि मैं प्रेम हूं। इसीलिए तो प्रेम की इतनी प्रबल आकांक्षा है, इतनी अभीप्सा है। प्रेम ही तुम्हारा अस्तित्व का मूल स्वर है। तुम प्रेम से ही बने हो, तुम प्रेम के ही संघट हो।

नयी-नयी किरन
नयी धरा, नया गगन
केंचुली उतारो रे! केंचुली उतारो!
पोखर की माटी से सिंहासन
जब तक बन जाए नहीं, हीरामन!
जोर से पुकारो रे! केंचुली उतारो!
रेखाएं खींच मत इकाई की
सुबह-शाम पाट उमर खाई की
कालिमा बुहारो रे! केंचुली उतारो!
धरती का गीत है पसीने में
मुट्ठी भर घूल है नगीने में
भूमि के सितारो रे! केंचुली उतारो।

सब केंचुलियां उतार दो। जैसे सांप अपनी पुरानी केंचुली को छोड़कर निकल जाता है, ऐसे तुम अपने तथाकथित व्यक्तित्व को छोड़कर निकल जाओ।

तुम पूछते हो—अब हम क्या करें? अथातो भक्तिजिज्ञासा!

आज इतना ही।

ओशो—एक परिचय

बुद्धत्व की प्रवाहमान धारा में ओशो एक नया प्रारंभ हैं, वे अतीत की किसी भी धार्मिक परंपरा या श्रृंखला की कड़ी नहीं हैं। ओशो से एक नये युग का शुभारंभ होता है और उनके साथ ही समय दो सुस्पष्ट खंडों में विभाजित होता है : ओशो पूर्व तथा ओशो पश्चात।

ओशो के आगमन से एक नये मनुष्य का, एक नये जगत का, एक नये युग का सूत्रपात हुआ है, जिसकी आधारशिला अतीत के किसी धर्म में नहीं है, किसी दार्शनिक विचार-पद्धति में नहीं है। ओशो सद्यःस्नात धार्मिकता के प्रथम पुरुष हैं, सर्वथा अनूठे संबुद्ध रहस्यदर्शी हैं।

मध्यप्रदेश के कुचवाड़ा गांव में 11 दिसंबर 1931 को जन्मे ओशो का बचपन का नाम रजनीश चन्द्रमोहन था। उन्होंने जीवन के प्रारंभिक काल में ही एक निर्भीक स्वतंत्र आत्मा का परिचय दिया। खतरों से खेलना उन्हें प्रीतिकर था। 100 फीट ऊंचे पुल से कूद कर बरसात में उफनती नदी को तैर कर पार करना उनके लिए साधारण खेल था। युवा ओशो ने अपनी अलौकिक बुद्धि तथा दृढ़ता से पंडित-पुरोहितों, मुल्ला-पादरियों, संत-महात्माओं—जो स्वानुभव के बिना ही भीड़ के अगुवा बने बैठे थे—की मूढ़ताओं और पाखंडों का पर्दाफाश किया।

21 मार्च 1953 को इक्कीस वर्ष की आयु में ओशो संबोधि (परम जागरण) को उपलब्ध हुए। संबोधि के संबंध में वे कहते हैं : 'अब मैं किसी भी प्रकार की खोज में नहीं हूं। अस्तित्व ने अपने समस्त द्वार मेरे लिए खोल दिये हैं।'

उन दिनों वे जबलपुर के एक कालेज में दर्शनशास्त्र के विद्यार्थी थे। संबोधि घटित होने के पश्चात भी उन्होंने अपनी शिक्षा जारी रखी और सन 1957 में सागर विश्वविद्यालय से दर्शनशास्त्र में प्रथम श्रेणी में प्रथम (गोल्डमेडलिस्ट) रह कर एम.ए. की उपाधि प्राप्त की। इसके पश्चात वे जबलपुर विश्वविद्यालय में दर्शनशास्त्र के प्राध्यापक पद पर कार्य करने लगे। विद्यार्थियों के बीच वे 'आचार्य रजनीश' के नाम से अतिशय लोकप्रिय थे।

विश्वविद्यालय के अपने नौ सालों के अध्यापन-काल के दौरान वे पूरे भारत में भ्रमण भी करते रहे। प्रायः 60-70 हजार की संख्या में श्रोता उनकी सभाओं में उपस्थित होते। वे आध्यात्मिक जन-जागरण की एक लहर फैला रहे थे। उनकी वाणी में और उनकी उपस्थिति में वह जादू था, वह सुगंध थी, जो किसी पार के लोक से आती है।

सन 1966 में ओशो ने विश्वविद्यालय के प्राध्यापक पद से त्यागपत्र दे दिया ताकि अस्तित्व ने जिस परम भगवत्ता का खजाना उन पर लुटाया है उसे वे पूरी मानवता को बांट सकें और एक नये मनुष्य को जन्म देने की प्रक्रिया में समग्रतः लग सकें।

ओशो का यह नया मनुष्य 'ज़ोरबा दि बुद्धा' एक ऐसा मनुष्य है जो ज़ोरबा की भांति भौतिक जीवन का पूरा आनंद मनाना जानता है और जो गौतम बुद्ध की भांति मौन होकर ध्यान में उतरने में भी सक्षम है—ऐसा मनुष्य जो भौतिक और आध्यात्मिक, दोनों तरह से समृद्ध है। 'ज़ोरबा दि बुद्धा' एक समग्र व अविभाजित मनुष्य है। इस नये मनुष्य के बिना पृथ्वी का कोई भविष्य शेष नहीं है।

सन 1970 में ओशो बंबई में रहने के लिए आ गये। अब पश्चिम से सत्य के खोजी भी जो अकेली भौतिक समृद्धि से ऊब चुके थे और जीवन के किन्हीं और गहरे रहस्यों को जानने और समझने के लिए उत्सुक थे, उन तक पहुंचने लगे। ओशो ने उन्हें देशना दी कि अगला कदम ध्यान है। ध्यान ही जीवन में सार्थकता के फूलों के खिलने में सहयोगी सिद्ध होगा।

इसी वर्ष सितंबर में, मनाली (हिमालय) में आयोजित अपने एक शिविर में ओशो ने नव-संन्यास में दीक्षा देना प्रारंभ किया। इसी समय के आसपास वे आचार्य रजनीश से भगवान श्री रजनीश के रूप में जाने जाने लगे।

सन 1974 में वे अपने बहुत से संन्यासियों के साथ पूना आ गये जहां 'श्री रजनीश आश्रम' की स्थापना हुई। पूना आने के बाद उनके प्रभाव का दायरा विश्वव्यापी होने लगा।

श्री रजनीश आश्रम पूना में प्रतिदिन अपने प्रवचनों में ओशो ने मानव-चेतना के विकास के हर पहलू को उजागर किया। बुद्ध, महावीर, कृष्ण, शिव, शांडिल्य, नारद, जीसस के साथ ही साथ भारतीय अध्यात्म-आकाश के अनेक नक्षत्रों—आदिशंकराचार्य, गोरख, कबीर, नानक, मलूकदास, रैदास, दरियादास, मीरा आदि पर उनके हजारों प्रवचन उपलब्ध हैं। जीवन का ऐसा कोई भी आयाम नहीं है जो उनके प्रवचनों से अस्पर्शित रहा हो। योग, तंत्र, ताओ, झेन, हसीद, सूफी जैसी विभिन्न साधना-परंपराओं के गूढ़ रहस्यों पर उन्होंने सविस्तार प्रकाश डाला है। साथ ही राजनीति, कला, विज्ञान, मनोविज्ञान, दर्शन, शिक्षा, परिवार, समाज, गरीबी, जनसंख्या-विस्फोट, पर्यावरण तथा संभावित परमाणु युद्ध के व उससे भी बढ़कर एड्स महामारी के विश्व-संकट जैसे अनेक विषयों पर भी उनकी क्रांतिकारी जीवन-दृष्टि उपलब्ध है।

शिष्यों और साधकों के बीच दिए गए उनके ये प्रवचन छह सौ पचास से भी अधिक पुस्तकों के रूप में प्रकाशित हो चुके हैं और तीस से अधिक भाषाओं में

अनुवादित हो चुके हैं। वे कहते हैं, "मेरा संदेश कोई सिद्धांत, कोई चिंतन नहीं है। मेरा संदेश तो रूपांतरण की एक कीमिया, एक विज्ञान है।"

ओशो अपने आवास से दिन में केवल दो बार बाहर आते—प्रातः प्रवचन देने के लिए और संध्या समय सत्य की यात्रा पर निकले हुए साधकों को मार्गदर्शन एवं नये प्रेमियों को संन्यास-दीक्षा देने के लिए।

सन 1980 में कट्टरपंथी हिंदू समुदाय के एक सदस्य द्वारा उनकी हत्या का प्रयास भी उनके एक प्रवचन के दौरान किया गया।

अचानक शारीरिक रूप से बीमार हो जाने से 1981 की वसंत ऋतु में वे मौन में चले गये। चिकित्सकों के परामर्श पर उसी वर्ष जून में उन्हें अमरीका ले जाया गया। उनके अमरीकी शिष्यों ने ओरेगॅन राज्य के मध्य भाग में 64,000 एकड़ जमीन खरीदी थी जहां उन्होंने ओशो को रहने के लिए आमंत्रित किया। धीरे-धीरे यह अर्ध-रेगिस्तानी जगह एक फूलते-फलते कम्यून में परिवर्तित होती गई। वहां लगभग 5,000 प्रेमी मित्र मिल-जुल कर अपने सद्गुरु के सान्निध्य में आनंद और उत्सव के वातावरण में एक अनूठे नगर के सृजन को यथार्थ रूप दे रहे थे। शीघ्र ही यह नगर रजनीशपुरम नाम से संयुक्त राज्य अमरीका का एक निगमीकृत (इन्कार्पोरेटेड) शहर बन गया। किंतु कट्टरपंथी ईसाई धर्माधीशों के दबाव में व राजनीतिज्ञों के निहित स्वार्थवश प्रारंभ से ही कम्यून के इस प्रयोग को नष्ट करने के लिए अमरीका की संघीय, राज्य और स्थानीय सरकारें हर संभव प्रयास कर रही थीं।

जैसे अचानक एक दिन ओशो मौन हो गये थे वैसे ही अचानक अक्तूबर 1984 में उन्होंने पुनः प्रवचन देना प्रारंभ कर दिया। जीवन-सत्यों के इतने स्पष्टवादी व मुखर विवेचनों से निहित स्वार्थों की जड़ें और भी चरमराने लगीं।

अक्तूबर 1985 में अमरीकी सरकार ने ओशो पर आप्रवास-नियमों के उल्लंघन के 35 मनगढ़ंत आरोप लगाए। बिना किसी गिरफ्तारी-वारंट के ओशो को बंदूकों की नोक पर हिरासत में ले लिया गया। 12 दिनों तक उनकी जमानत स्वीकार नहीं की गयी और उनके हाथ-पैर में हथकड़ी व बेड़ियां डाल कर उन्हें एक जेल से दूसरी जेल में घुमाते हुए पोर्टलैंड (ओरेगॅन) ले जाया गया। इस प्रकार, जो यात्रा कुल पांच घंटे की है वह आठ दिन में पूरी की गयी। जेल में उनके शरीर के साथ बहुत दुर्व्यवहार किया गया और यहीं संघीय सरकार के अधिकारियों ने उन्हें 'थेलियम' नामक धीमे असर वाला जहर दिया।

14 नवंबर 1985 को अमरीका छोड़ कर ओशो भारत लौट आये। यहां की तत्कालीन सरकार ने भी उन्हें समूचे विश्व से अलग-थलग कर देने का पूरा प्रयास किया। तब ओशो नेपाल चले गये। नेपाल में भी उन्हें अधिक समय तक रुकने की अनुमति नहीं दी गयी।

फरवरी 1986 में ओशो विश्व-भ्रमण के लिए निकले जिसकी शुरुआत उन्होंने ग्रीस से की, लेकिन अमरीका के दबाव के अंतर्गत 21 देशों ने या तो उन्हें देश से निष्कासित किया या फिर देश में प्रवेश की अनुमति ही नहीं दी। इन तथाकथित

स्वतंत्र व लोकतांत्रिक देशों में ग्रीस, इटली, स्विट्जरलैंड, स्वीडन, ग्रेट ब्रिटेन, पश्चिम जर्मनी, हालैंड, कनाडा, जमाइका और स्पेन प्रमुख थे।

ओशो जुलाई 1986 में बम्बई और जनवरी 1987 में पूना के अपने आश्रम में लौट आए, जो अब ओशो कम्यून इंटरनेशनल के नाम से जाना जाता है। यहां वे पुनः अपनी क्रांतिकारी शैली में अपने प्रवचनों से पंडित-पुरोहितों और राजनेताओं के पाखंडों व मानवता के प्रति उनके षड्यंत्रों का पर्दाफाश करने लगे।

इसी बीच भारत सहित सारी दुनिया के बुद्धिजीवी वर्ग व समाचार माध्यमों ने ओशो के प्रति गैर-पक्षपातपूर्ण व विधायक चिंतन का रुख अपनाया। छोटे-बड़े सभी प्रकार के समाचारपत्रों व पत्रिकाओं में अक्सर उनके अमृत-वचन अथवा उनके संबंध में लेख व समाचार प्रकाशित होने लगे। देश के अधिकांश प्रतिष्ठित संगीतज्ञ, नर्तक, साहित्यकार, कवि व शायर ओशो कम्यून इंटरनेशनल में अक्सर आने लगे। मनुष्य की चिर-आकांक्षित उटोपिया का सपना साकार देख कर उन्हें अपनी ही आंखों पर विश्वास न होता।

26 दिसंबर 1988 को ओशो ने अपने नाम के आगे से 'भगवान' संबोधन हटा दिया। 27 फरवरी 1989 को ओशो कम्यून इंटरनेशनल के बुद्ध सभागार में सांध्य-प्रवचन के समय उनके 10,000 शिष्यों व प्रेमियों ने एकमत से अपने प्यारे सद्गुरु को 'ओशो' नाम से पुकारने का निर्णय लिया।

अक्तूबर 1985 में जेल में अमरीका की रीगन सरकार द्वारा ओशो को थेलियम नामक धीमा असर करने वाला जहर दिये जाने एवं उनके शरीर को प्राणघातक रेडिएशन से गुजारे जाने के कारण उनका शरीर तब से निरंतर अस्वस्थ रहने लगा था और भीतर से क्षीण होता चला गया। इसके बावजूद वे ओशो कम्यून इंटरनेशनल, पूना के गौतम दि बुद्धा आडिटोरियम में 10 अप्रैल 1989 तक प्रतिदिन संध्या दस हजार शिष्यों, खोजियों और प्रेमियों की सभा में प्रवचन देते रहे और उन्हें ध्यान में डुबाते रहे। इसके बाद के अगले कई महीने उनका शारीरिक कष्ट बढ़ गया।

17 सितंबर 1989 से पुनः गौतम दि बुद्धा आडिटोरियम में हर शाम केवल आधे घंटे के लिए आकर ओशो मौन दर्शन-सत्संग के संगीत और मौन में सबको डुबाते रहे। इस बैठक को उन्होंने "ओशो व्हाइट रोब ब्रदरहुड" नाम दिया। ओशो 16 जनवरी 1990 तक प्रतिदिन संध्या सात बजे "ओशो व्हाइट रोब ब्रदरहुड" की सभा में आधे घंटे के लिये उपस्थित होते रहे।

17 जनवरी को वे सभा में केवल नमस्कार करके वापस चले गए। 18 जनवरी को "ओशो व्हाइट रोब ब्रदरहुड" की सांध्य-सभा में उनके निजी चिकित्सक स्वामी प्रेम अमृतो ने सूचना दी कि ओशो के शरीर का दर्द इतना बढ़ गया है कि वे हमारे बीच नहीं आ सकते, लेकिन वे अपने कमरे में ही सात बजे से हमारे साथ ध्यान में बैठेंगे। दूसरे दिन 19 जनवरी 1990 को सायं पांच बजे ओशो शरीर छोड़ कर महाप्रयाण कर गये। इसकी घोषणा सांध्य-सभा में की गयी। ओशो की इच्छा के अनुरूप, उसी सांध्य-सभा में उनका शरीर गौतम दि बुद्धा आडिटोरियम में दस मिनट

के लिए लाकर रखा गया। दस हजार शिष्यों और प्रेमियों ने उनकी आखिरी विदाई का उत्सव संगीत-नृत्य, भावातिरेक और मौन में मनाया। फिर उनका शरीर दाहक्रिया के लिए ले जाया गया।

21 जनवरी 1990 के पूर्वाह्न में उनके अस्थि-फूल का कलश महोत्सवपूर्वक कम्यून में लाकर च्वांग्त्सू हॉल में निर्मित संगमरमर के समाधि भवन में स्थापित किया गया।

ओशो की समाधि पर स्वर्ण अक्षरों में अंकित है :

OSHO
Never Born
Never Died
Only Visited this
Planet Earth between
Dec 11 1931 — Jan 19 1990

ध्यान और सृजन का यह अनूठा नव-संन्यास उपवन, ओशो कम्यून, ओशो की विदेह-उपस्थिति में आज पूरी दुनिया के लिए एक ऐसा प्रबल चुंबकीय आकर्षण-केंद्र बना हुआ है कि यहां निरंतर नए-नए लोग आत्म-रूपांतरण के लिए आ रहे हैं तथा ओशो की सघन-जीवंत उपस्थिति में अवगाहन कर रहे हैं।

ओशो का हिंदी साहित्य

उपनिषद
सर्वसार उपनिषद
कैवल्य उपनिषद
अध्यात्म उपनिषद
कठोपनिषद
ईशावास्य उपनिषद
निर्वाण उपनिषद
आत्म-पूजा उपनिषद
केनोपनिषद
मेरा स्वर्णिम भारत
(विविध उपनिषद-सूत्र)

कृष्ण
गीता-दर्शन
(आठ भागों में अठारह अध्याय)
कृष्ण-स्मृति

महावीर
महावीर-वाणी (दो भागों में)
जिन-सूत्र (दो भागों में)
महावीर या महाविनाश
महावीर: मेरी दृष्टि में
ज्यों की त्यों धरि दीन्हीं चदरिया

कबीर
सुनो भई साधो
कहै कबीर दीवाना
कहै कबीर मैं पूरा पाया
न कानों सुना न आंखों देखा
(कबीर व फरीद)

बुद्ध
एस धम्मो सनंतनो (बारह भागों में)

अष्टावक्र
महागीता (छह भागों में)

लाओत्से
ताओ उपनिषद (छह भागों में)

दादू
सबै सयाने एक मत
पिव पिव लागी प्यास

जगजीवन
नाम सुमिर मन बावरे
अरी, मैं तो नाम के रंग छकी

दरिया
कानों सुनी सो झूठ सब
अमी झरत बिगसत कंवल

सुंदरदास
हरि बोलौ हरि बोल
ज्योति से ज्योति जले

पलटू
अजहूं चेत गंवार
सपना यह संसार
काहे होत अधीर

धरमदास
जस पनिहार धरे सिर गागर
का सोवै दिन रैन

मलूकदास
कन थोरे कांकर घने
रामदुवारे जो मरे

शांडिल्य
अथातो भक्ति जिज्ञासा (दो भागों में)

झेन, सूफी और उपनिषद की कहानियां
बिन बाती बिन तेल
सहज समाधि भली
दीया तले अंधेरा

अन्य रहस्यदर्शी
भक्ति-सूत्र (नारद)
शिव-सूत्र (शिव)
भजगोविन्दम् मूढ़मते (आदिशंकराचार्य)
एक ओंकार सतनाम (नानक)
पद घुंघरू बांध (मीरा)
जगत तरैया भोर की (दयाबाई)
बिन घन परत फुहार (सहजोबाई)
नहीं सांझ नहीं भोर (चरणदास)
संतो, मगन भया मन मेरा (रज्जब)
कहै वाजिद पुकार (वाजिद)
मरौ हे जोगी मरौ (गोरख)
सहज-योग (सरहपा-तिलोपा)
बिरहिनी मंदिर दियना बार (यारी)
दरिया कहै सब्द निरबाना (दरियादास बिहारवाले)
प्रेम-रंग-रस ओढ़ चदरिया (दूलन)
हंसा तो मोती चुगैं (लाल)
गुरु-परताप साध की संगति (भीखा)
मन ही पूजा मन ही धूप (रैदास)
झरत दसहुं दिस मोती (गुलाल)
जरथुस्त्र: नाचता-गाता मसीहा (जरथुस्त्र)

प्रश्नोत्तर
नहिं राम बिन ठांव
प्रेम-पंथ ऐसो कठिन
उत्सव आमार जाति, आनंद आमार गोत्र
मृत्योर्मा अमृतं गमय
प्रीतम छवि नैनन बसी
रहिमन धागा प्रेम का
उड़ियो पंख पसार
सुमिरन मेरा हरि करैं
पिय को खोजन मैं चली
साहेब मिल साहेब भये
जो बोलैं तो हरिकथा
बहुरि न ऐसा दांव
ज्यूं था त्यूं ठहराया
ज्यूं मछली बिन नीर
दीपक बारा नाम का
अनहद में बिसराम
लगन महूरत झूठ सब
सहज आसिकी नाहिं
पीवत रामरस लगी खुमारी
रामनाम जान्यो नहीं
सांच सांच सो सांच
आपुई गई हिराय
बहुतेरे हैं घाट
कोंपलें फिर फूट आईं
फिर पत्तों की पांजेब बजी
फिर अमरित की बूंद पड़ी
चेति सकै तो चेति
क्या सोवै तू बावरी
एक एक कदम
चल हंसा उस देस

कहा कहूं उस देस की
पंथ प्रेम को अटपटो
मूलभूत मानवीय अधिकार
नया मनुष्य : भविष्य की एकमात्र आशा
सत्यम् शिवम् सुंदरम्
रसो वै सः
सच्चिदानंद
पंडित-पुरोहित और राजनेता :
मानव आत्मा के शोषक
ॐ मणि पद्मे हुम्
ॐ शांतिः शांतिः शांतिः
हरि ॐ तत्सत्
एक महान चुनौती :
मनुष्य का स्वर्णिम भविष्य
मैं धार्मिकता सिखाता हूं, धर्म नहीं

तंत्र
संभोग से समाधि की ओर
तंत्र-सूत्र (पांच भागों में)

विचार-पत्र
क्रांति-बीज
पथ के प्रदीप

पत्र-संकलन
अंतर्वीणा
प्रेम की झील में अनुग्रह के फूल

बोध-कथा
मिट्टी के दीये

ध्यान, साधना, योग
ध्यानयोग : प्रथम और अंतिम मुक्ति
रजनीश ध्यान योग
हसिबा, खेलिबा, धरिबा ध्यानम्
नेति-नेति
मैं कहता आंखन देखी
पतंजलि : योग-सूत्र (तीन भागों में)

साधना-शिविर
साधना-पथ
ध्यान-सूत्र
जीवन ही है प्रभु
माटी कहै कुम्हार सूं
मैं मृत्यु सिखाता हूं
जिन खोजा तिन पाइयां
समाधि के सप्त द्वार (ब्लावट्स्की)
साधना-सूत्र (मेबिल कॉलिन्स)

राष्ट्रीय और सामाजिक समस्याएं
देख कबीरा रोया
स्वर्ण पाखी था जो कभी और अब है
भिखारी जगत का
शिक्षा में क्रांति
नये समाज की खोज

ओशो के संबंध में
भगवान श्री रजनीश : ईसा मसीह के
पश्चात सर्वाधिक विद्रोही व्यक्ति

ओशो साहित्य के लिए संपर्क-सूत्र :
साधना फाउंडेशन, 17 कोरेगांव पार्क, पूना-1, महाराष्ट्र

नए मनुष्य के लिए एक नया दृष्टिकोण



ओशो टाइम्स इंटरनेशनल

विश्व का एकमात्र शुभ समाचार-पत्र

एक वर्ष में 12 अंक

हिंदी संस्करण	साधारण डाक से	रजि. डाक से
वार्षिक शुल्क	150 रु.	220 रु.
अर्ध-वार्षिक	90 रु.	125 रु.

अंग्रेजी संस्करण वार्षिक सदस्यता शुल्क
480 रु. (रजि. डाक से)

ओशो टाइम्स का विशेष वार्षिकांक

हर साल 19 जनवरी पर उपलब्ध

संपर्क-सूत्र

ताओ पब्लिशिंग प्रा. लि.

50 कोरेगांव पार्क, पुणे-411 001, महाराष्ट्र

फोन : 0212-628562

नए मनुष्य के लिए एक नया दृष्टिकोण

OSHO BOOKS PUBLISHED BY

DIAMOND POCKET BOOKS

- The Great Challenge
- I Am The Gate
- Psychology of the Esoteric
- Rajneesh Upanishad
- Bauls: The Dancing Mystics
- Bauls: The Seekers of the path
- Bauls: The Mystics of Celebration
- Bauls: The singing Mystics
- Ecstasy: The Language of Existence
- Fly without wings
- Be Oceanic
- The Greatest Gamble
- Here & Now
- Towards The Unknown
- Vedanta: The Ultimate Truth
- Vedanta: The First Star in the Evening
- Vedanta: The Supreme - Knowledge
- Vedanta: An Art of Dying
- A Taste of the Divine
- One Earth One Humanity
- Freedom from the Mind
- Life A song, Dance
- Meeting the Ultimate
- The Master is a Mirror
- Rising in Love
- The Forgotten Language of the Heart
- The Alchemy of Enlightenment
- From ignorance to innocence
- Be Silent & Know
- Turning in
- Tantra Vision: An Invitation of Silence
- Tantra Vision: Beyond The Barriers of Wisdom
- Tantra Vision: The Door to Nirvana
- Eternal Celebration
- A Song Without Words
- Inner Harmony
- Sing, Dance, Rejoice
- Secret of Disciplehood
- Laughter is my message
- The Mystery Beyond Mind
- The Centre of the Cyclone
- Meditation: The Ultimate Adventure
- The Cessation of Mind
- The Birth of Being
- A Cup of Tea
- Meditation: The Art of Ecstasy
- Divine Melody
- I Say unto you (Vol-I)
- Sufis: The People of The Path-I
- And the Flowers Showered
- Take it Easy (Vol-I& II)

DIAMOND POCKET BOOKS (P) LTD.
X-30, Okhla Industrial Area, Phase- 2, New Delhi - 110 020

A.H.W. SAMEER SERIES



"ओशो एक रहस्यदर्शी, दार्शनिक और विचारक हैं जो समय के पार हैं। अपनी महान आध्यात्मिक शक्ति द्वारा वे हर विषय की गहराई तक ले जाते हैं–फिर वह पतंजलि का योग हो, झेन या तंत्र हो या मीरा और नानक।"

—पं. शिव कुमार शर्मा

डायमंड पाकेट बुक्स

Rs 100-00